मुक्तिबोध रचनावली

सन् 1957-58 के बाद की
प्रकाशित-अप्रकाशित कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली

2

सम्पादक
नेमिचन्द्र जैन



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : प्रति खण्ड रु 100 00
पूरा सैट रु 600 00

प्रथम संस्करण : 1980
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण : 1986

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002

मुद्रक : रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MUKTIBODH RACHANAVALI
Edited by Nemichandra Jain

শরদিন্দু

मूल्य : प्रति खण्ड रु 100 00
पूरा सैट रु 600 00

प्रथम संस्करण 1980
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण : 1986
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002
मुद्रक : रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
MUKTIBODH RACHANAVALI
Edited by Nemichandra Jain

মম উদ্ভিবিষু

दूसरे संस्करण की भूमिका

इस खण्ड मे अब तक अप्रकाशित ऐसे बहुत-से छोटे और बडे कविता-खण्ड शामिल किये गये हैं जिनमे किसी एक भाव या विचार के सूत्र का या विम्ब का, आकर्षक और प्रभावी रूप दिखायी पडता है। इनमे से कुछ पूरी कविता-जैसे लगते हैं, कुछ स्वतन्त्र अधूरी कविताओ-जैसे और कुछ किसी बडी कविता के अश मात्र। यहाँ पूरी या अधूरी लगनेवाली कविताओ को अन्य कविताओ के साथ और काव्याशो को अन्त मे अन्य काव्याशो के साथ रखा गया है।

इनके कालक्रम का अनुमान बहुत कुछ जीवन के विभिन्न चरणो मे कवि की बदलती हुई चिन्ताओ या शैली को ध्यान मे रखकर अथवा उनकी लिखावट और इस्तेमाल किये गये कागज के आधार पर किया गया है। इसलिए उसके सही न होने की भी पूरी सम्भावना है। फिर भी अधिकाश का स्थान पाठको को वहुत असगत या अटपटा नही लगेगा, ऐसी आशा है।

मुझे यकीन है कि ये नये कविता-खण्ड मुक्तिबोध के पाठको को आकर्पित करेंगे।

नेमिचन्द्र जैन

पहले संस्करण की भूमिका

इस खण्ड मे मुक्तिबोध की 1957 से 1964 तक की कविताएँ हैं। इनमे अधिकाश ऐसी हैं जो पत्र-पत्रिकाओ के अलावा उनके दोनों सग्रहो मे पहले प्रकाशित हो चुकी हैं, कुछ ऐसी हैं जो केवल किसी पत्रिका मे ही प्रकाशित हुई, साथ ही कई ऐसी भी हैं जो यहाँ पहली बार प्रकाश मे आ रही हैं। अधिकाश कविताएँ लम्बी हैं, जिसके कारण पहले खण्ड के मुक़ाबले कविताओ की सख्या

बहुत कम होते हुए भी यह खण्ड आकार मे उससे काफी बडा है।

साथ ही इसी खण्ड मे उनकी अधिकाश वे सुपरिचित कविताएँ हैं जिनसे मुक्तिबोध इतने विख्यात और चर्चित हुए।

इसीलिए यह बात कुछ अटपटी ही लगती है कि इन कविताओ के बारे मे ही प्रामाणिक पाठ की समस्या सबसे तीव्र और कठिन साबित हुई। अधिकाश कविताओ के कई कई प्रारूप पाण्डुलिपियो मे है। ऐसा कही तो इस कारण है कि कविता एक बार मे पूरी नही हुई और उसे दूसरी, तीसरी या चौथी बार नये सिरे से शुरू किया गया। पाण्डुलिपियो मे ऐसी अनक कविताएँ हैं जिनके एक-एक अश को दस-पन्द्रह या इससे भी अधिक बार लिखा गया। 'भविष्यधारा' कविता के कुछ अशो के सिलसिले मे तो कवि ने कई पृष्ठो पर 'प्रयासो' की सख्या तक डाली है। या फिर पूरी कविता ही कवि को सन्तोषप्रद न लगी और इसलिए उसे, भले ही वह चाहे जितनी लम्बी हो, दुबारा या तिबारा लिखा गया। कई कविताओ के किसी पत्रिका मे प्रकाशित होने के बाद उसकी कतरनो मे सशोधन किये गये और कुछ मे प्रस्तावित सकलन के लिए तैयार करते वक्त (जो उनके जीवनकाल मे न निकल सका) कतरन की या मूल प्रारूप की नकल मे भी परिवर्तन हुए।

पाठान्तरो के इस जगल मे सबसे प्रामाणिक पाठ निर्धारित करना आसान काम नही था। यहाँ कोशिश की गयी है कि उसी पाठ को लिया जाय जिसमे कवि के अन्तिम सशोधन हो। यह निर्णय कई जगह बहुत कठिन साबित हुआ। जैसे यहाँ 'चाँद का मुँह टेढा है' और 'अँधेरे मे' के जो पाठ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, वे **चाँद का मुंह टेढ़ा है** सकलन मे प्रकाशित पाठो से भिन्न हैं क्योकि स्वय कवि द्वारा उन पाठो मे किये गये सशोधनो सहित प्रारूप मौजूद थे। 'अँधेरे मे' का जो पाठ यहाँ लिया गया है वह कुछ सशोधनो के साथ **कल्पना** मे छपे पाठ से मिलता है।

एक भिन्न प्रकार की कठिनाई इस कारण पैदा हुई कि मुक्तिबोध अपनी लम्बी कविताओ के अलग-अलग अश अलग-अलग शीर्षक से पत्रिकाओ मे छपने भेज देते थे। फलस्वरूप उन अशो से स्वतन्त्र कविताओ के रूप मे ही पाठक परिचित रहे और इस बात का कोई आभास नही हो सका कि वे एक बडी कविता के अश भर हैं। इसका बेमिसाल उदाहरण है वह कविता जो इस खण्ड मे 'एक प्रदीर्घ कविता' शीर्षक से दी जा रही है। इसके कुछ अश चार स्वतन्त्र कविताओ के रूप मे दोनो सकलनो मे और दो उससे भी पहले पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। ये कविताएँ हैं— एक प्रदीर्घ कविता का प्रास्ताविक', 'इस नगरी मे', 'डूबता चाँद कब डूबेगा', 'कल जो हमने चर्चा की थी'। यहाँ वे स्वतन्त्र रूप से नही, बडी कविता के अशो के रूप मे दी जा रही हैं, यद्यपि इसका पूरा ब्यौरा कविता मे यथास्थान टिप्पणियो म दे दिया गया है।

ऊपर जिन कविताओं का जिक्र किया गया, वे उदाहरण के तौर पर ही हैं। ऐसी समस्याएँ कमोबेश बहुत-सी कविताओ के बारे मे सामने आयी। यथासम्भव इसका ब्यौरा कविता के साथ ही टिप्पणी के रूप मे दिया गया है।

अब तक प्रकाशित दो सकलनो मे शायद ही कोई ऐसी कविता निकले जिसमे किसी न-किसी कारण से पक्तियाँ या शब्द छूटे या गलत छपे हुए न हो। कई अन्य प्रकार की भूलें भीहैं जो प्रेस मे भेजी गयी पाण्डुलिपि मे ही रही हो सकती

है या मुद्रण में असावधानी के कारण हुई हो सकती हैं। यहाँ पाण्डुलिपि से मिलाकर पाठ को यथासम्भव शुद्ध करने की कोशिश की गयी है।

कविताओं के कालक्रम के बारे में विस्तृत टिप्पणी पहले खण्ड की भूमिका में दी गयी है। यहाँ इतना फिर दुहराना उपयोगी जान पड़ता है कि इस खण्ड में ऐसी अनेक कविताएँ हैं जो मूलत 1957 से पहले ही लगभग पूरी लिखी जा चुकी थी, पर उनमें बार-बार संशोधन होते रहे और उनका अन्तिम संशोधित रूप 1960 से 1963 के बीच में तैयार हुआ। ऐसी सभी कविताओं का कालक्रम उनके अन्तिम संशोधित रूप के अनुसार ही तै किया गया है। साथ ही जो कविताएँ कालक्रम से एक ही वर्ष के भीतर समझी गयी, उनमें पहले पत्र पत्रिका अथवा संकलनों में प्रकाशित कविताओं को रखा गया और एकदम अप्रकाशित कविताओं को उनके बाद। जैसा कि पहले खण्ड में कहा जा चुका है आवश्यक लिखित या अन्य साक्ष्य के अभाव में कविताओं की रचना की तारीख तो दूर वर्ष भी पक्के तौर पर निर्धारित करना प्राय असम्भव था। कविताओं के साथ दिया गया रचनाकाल मोटे तौर पर एक सम्भावित कालखण्ड की ओर इशारा भर करता है।

इस खण्ड के अन्त में एक उपखण्ड में कुछ कविताश भी दिये जा रहे हैं। ये कवि की बेशुमार अधूरी रचनाओं में से कुछ के टुकड़े हैं जो अपने आप में एक लगभग सम्पूर्ण भाव स्थिति अथवा प्रभावी बिम्ब को प्रस्तुत करते हैं। बल्कि कुछेक को तो शायद स्वतन्त्र पूर्ण या अपूर्ण कविता मानना भी बहुत असगत न हो। उनसे मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया का एक और अन्दाजा मिलेगा ऐसी आशा है।

नेमिचन्द्र जैन

क्रम

कविताएँ
(1957-1964)

साँझ उतरी रंग लेकर उदासी का

साँझ उतरी रंग लेकर उदासी का
पर्वतों के पास
बिम्बिता झीलें हुईं गम्भीर
साँझ की मानो सखी हो
गगन में है गेरुई कुछ बेरुखी सी
दूरियाँ फैली हुईं
आकाश की अति-नील छायाओं-सरीखी
मैं यहाँ मैदान-पथ पर जा रहा हूँ ! !

अब बरसने पर उतारू हो गया
यह साँवला हलका धुँधलका नील
दार्शनिकता भर रही है व्यर्थता का बोध
दूर छूटे शहर में वह चर्च की मीनार
नील-गहराई-तिमिर में मिल रही है ! !
मैं तिमिर में मिल उदासी का बना अद्वैत
भीतर से सघन—
सत्-चित् नहीं आनन्द ! !
गगन के तारे हुए हैं झलमलाते गणित के शत अंक
वह गणित जो हल न मैं कर पा रहा हूँ
किन्तु वह गिरि-लहर-रेखा-क्षितिज पर धुँधली
कर रही मुझको प्रभावित
अप्रभावित आत्म-स्थिरता से
दूर वह है व्यूह इमली के दरख्तों का
कि वह निःसंग फिर भी सख्त कैसा क्या ! !
आकाश की छाया-सरीखी दूरियों में खूब
इस तिमिर में इस गगन के नीचे
नहीं मैं झूठ बोलूँगा ! !
प्राण की सब गुत्थियों की वेदनाएँ क्यों न खोलूँ मैं
झाड़ियों में बैठ, मैं कुछ सोच भी लूँ ! !

कष्ट देती हैं मुझे ये सब दिशाएँ
एक कहती है इधर आओ
जा नहीं सकता सभी की ओर
सबके साथ
घेर बैठी हैं मुझे गम्भीर-मन सब आत्माएँ
जा नहीं सकता सभी के पास
रग-रगो मे फैल ये सवेदनाएँ
कर रही अनगिन तकाजे
सब तकाजे सुन नहीं सकता हृदय का त्रास
आदर्श की सवेदना के हाथ मे
यह मान-मूल्यो की तुला
मुझको अकिचन कर रही—औ' साथ मे
निज भर्त्सना की लौह-कर अर्गला
उस द्वार पर मेरे लगा
आनन्द आने ही नहीं देती ! !
दोष किसका है ! !
बुद्धि का यह काम
वह मापे जमीन
मँगवाय गिट्टी
रास्ता बन जाय मेहनत से
किन्तु ये सवेदना
सबका तकाजा
चाहती पूरा अभी और एकदम
उनका गणित कैसा अजब
जी, मैं मरूँ तो कुछ नहीं
मर जायें वे सवेदनाएँ
किन्तु ना

इसलिए मुझको हुई ईर्ष्या
चट्टान-टीलो स पहाडो से
तिमिर से
सूने दरख्तो से
कितने आत्मतन्त्री
लीन और तल्लीन अपने मे
काश मैं
निज से बडा
और सख्त हो पाता !

[सम्भावित रचनाकाल 1957 । नागपुर । **चूरी-चूरी खाक-धूल** में सकलित]

एक फोड़ा दुखा

एक फोडा दुखा'
लहर एक दर्द की दौड गयी
लहर ने बुद्धि की किरण को दिया जन्म
किरणो न खूबसूरत सुसगत
रुचिर नमूनेदार फूलदार जाला वनाया एक
रश्मियो के गुन्थन के ढांचे ने
एक वाक्य पैदा किया
वाक्यो के गुन्थन ने सिद्धान्त वनाया
फाडा वह सिद्धान्त के अन्दर बैठा हुआ
एक काम सिद्धान्त का यह था कि
परवरिश करे वह फोडे की
जम गया पपडी का ढक्कन तो
जबर्दस्ती खोल दे ! !
दूसरा काम सिद्धान्त का यह था कि
प्रतिपादित करे वह औचित्य
फोडे को तमगे का रूप देकर घूमने का
औचित्य ! !

फोडे का काम था
रक्षा करे चरित्र की वृत्ति प्रवृत्ति की कि कही,
उसम परिवर्तन न हो जाय
दर्द न जगह-जगह
फिट किये स्क्रू और ढिबरियाँ
पेंच और लोहे की छोटी-बडी
नलियाँ और छोटे-बडे चक्र
और उसने बुद्धि के चक्र से
हृदय के चक्र को
दर्द के पट्टे से जोड दिया
बन गया व्यक्तित्व
उसका एक काम था
व्यक्तित्व के नाम पर
हो सके तो फोडे को वढाये
फोडे को और-और पैदा करे
काल्पनिक क्यो न सही
और इन वास्तविक-काल्पनिक
फोडो के पहरेदार
बना दिये मन्तव्य, विचार, अभिमत।

किन्तु इन सबके बीच
सामजस्य सन्तुलन
रखने के लिए तब
उसने की निर्माण
महत्त्वाकाक्षा
और उसके चारो ओर
लघु-लघु काक्षा के रख दिये मोहरे
काक्षा ने पहन लिये
आदमी के कपडे
कपडो ने करा ली थी इस्तरी
इस्तरी ने धोबी के महत्त्व को बनाया
धोबी गुरु हो गया
गुरु ने हृदय धोया
बुद्धि को स्वच्छ किया
धुले-पुँछे हृदय और बुद्धि ने
न्यायोचित बात की
अच्छी सलाह दी
अच्छा विचार किया।

सबके पीछे किन्तु वह
भूत था फोडे का
और उस भूत का
विकराल प्रतिबिम्ब
पडता था हृदय और बुद्धि
के अभ्यन्तर !!
दीख जाता सबको
सब पहचान जाते !!
और वह केन्द्रीय फोडा भी कहाँ था
उसका अनस्तित्व ही प्रधान था
स्वय की वृत्तियो की
सुख-भोग, और प्रतिष्ठा-भोग
एव न्याय-भोग
और सत्य-सम्भोग
लालसा की ईजाद
फोडा था !!

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

आज जो चमकदार प्रज्ज्वलित

आज जो चमकदार प्रज्ज्वलित
गैस के महाद्वीप
शून्य में बहुत दूर
दीखते हैं
उन्हीं में
शनैं-शनैं
गोल-गोल
अपने ही आस-पास घूमते हुए
बने रहे नक्षत्र
सूर्य
और तारिकाएँ !!
किन्तु इस निःसीम अखण्ड
शून्य में
स्थान-स्थान
कई जगह
मरे हुए ग्रह और
ठण्डे पड़े नभ-पिण्ड
तैरते हैं प्रेत शत आकाशीय द्रव्य के।
एक ओर
कीर्तिमान कष्टों के बीच
नये जन्म का समारोह
अन्य ओर
मृत्यु के पथ पर
बढ़ते हैं दवग बूढ़े हुए सितारे।
जोर-शोर तुम्हारा
व तिकड़में तुम्हारी
बताती हैं सिर्फ चन्द दिनों के
हैं अगारे तुम्हारे
असीम शून्य की सियाह
गुहाओं में
तुम भी एक मटमैला अणु बन
डूब जाओगे।
जोर-शोर तुम्हारे
तिकड़में तुम्हारी
व दाँव-पेंच तुम्हारे
हारे हुए आदमी की पराजय-भावना के
अजस्र प्रमाण हैं !!

मृत्यु का
खुला हुआ स-दन्त मुखद्वार
बढ रहा तुम्हारी ही तरफ है आजकल
टाल नही सकोगे
मुश्किल उसे टालना।

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

मीठा बेर

हजारो फ्लैशलाइट-रेखाएँ
सुदूर मेघो पर
तुम्हारी कविताएँ लिखती है
रगीन अक्षरो मे ।।
हजारो फ्लैशलाइटे,
जो तुमने मँगायी है दूर-स्थित देशो से
जो तुमने बनायी हैं अपने आवेश-
प्रकाशन के लिए
वे निधि तुम्हारी है ।।
किन्तु सच जान लो
कि निधि तुम्हारी यह
कि ये फ्लैशलाइटें
और उनका विश्वव्यापी प्रभाव
यह रौब-दाब
यही रह जायेगा
व अपने ही जीते जी
यही मर जाओगे
व द्युति-अक्षरो मे लिखा हुआ रश्मि-काव्य
यही बुझ जायेगा, गुल हो जायेगा
न तुम रहोगे, न तुम्हारा शोर।
एक भूरा और धूलभरा
गरम व भूलभरा
दुपहर-उभार का दुकूल
फैल जायेगा
मैं भी मर जाऊँगा नामहीन
फिर भी मैं

पुश्त-दर-पुश्त
पीढ़ी-दर-पीढ़ी की देह मे
शिराओ मे
लाल-लाल खून बन
बहता ही रहूँगा—
प्रकाशमान लाल रक्त नामहीन।
कारण कि राह पर
खड़ा एक
जगली
व कँटीला, व्यक्तित्वहीन,
मीठा बेर-झाड हूँ मैं
पत्थर मार-मारकर मुझे खाया गया है
मुझे तोडा गया है क्रूरता से
और मेरे बेरो को
बच्चो ने, राहगीरो ने, बूढो ने, स्त्रियो ने
बहुत-बहुत पसन्द किया!!
और इस तरह मैं उनके खून मे बसा हूँ,
बेरो मे इकट्ठा
सारी ज्ञान-रस-राशि
लाखो की रगो मे बह रही है
वीर्य बन रही है
ओजस बन गयी है!!
मुझे निजत्व-प्रकाशन-हित
फ्लैशलाइटो व मेघो व व्योम की
जरूरत ही नही है!!
स्वय का प्रकाशन नही करता
मैं तो सिर्फ फैलता हूँ बहता हूँ खून मे!!
क्योकि मैं एक बेर का झाड हूँ
जगली और कँटीला
किन्तु मीठा!!

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। भूरी-भूरी खाक धूल मे सकलित]

बारह बजे रात के

बारह बजे रात के
यूरोपीय सर्दी के घुँघराले कुहरे मे लहरदार,

अँधेरे के पहरे मे गिरफ्तार
अनमनी गम्भीर उदास पहाडियाँ
क्षितिज की साँवली लोहे की भीत पर
अपना सिर टेककर
सोचती-सी खडी हैं !!
भावी के कष्टमय स्वप्नो में उद्विग्न
जागती-सी सोचती है
कोई हल खोजती हैं
धडकते विचारो की फडकती नाडियाँ !!
कही तो भी कोई बात
लोहे की लात-सी यो छाती पर पडी है !!
उसी वक्त आसमानी तख्त का सुलतान
दमकते लालटैनी रग के गाल लिये
सोने की गिन्नी-सा चेहरे का चाँद वह
आसमानी सुलतान धरती पर नजर डाल
सोचता-सा समझता-सा मुसकराता देखता
धरती पर खडे हुए वडे-वडे ताबूत
या कि इमारतें
जिनकी कि छाती पर अँधेरे से मिल-जुल
चाँदनी के रेखाचित्र
चाँदनी की साजिशें !!
बलन्द मेहराबो पर
यूरोपीय शैली के वडे राजद्वारो पर
नगर की सडको मे
(अँधेरे के हँसते हुए चमकते दाँतो-सी)
बिजली के दमकते बल्बो की सुनहली पाँतियाँ !!
सफेद गुलाबो से भरी हुई क्यारियो-सी
नारियो का उल्लास
रौनक की खुशबू यह वडी ही रहस्यमय
विलायती टीमटाम लिये हुए चमकते रेस्तराँ मे
कैप्टन के गरवीले बैजो से बटनो से
खेलते हुए सुकुमार रँगे हुए नाखून !
किराये पर मुसकराती
कामिनी स्त्रियो के
यूरोपियन पैण्टो के बटन चमकते-से लगते थे
कामुक इशारो-से।

उसी वक्त, उसी वक्त
समस्या के गोल-गोल
चक्करदार, चक्करदार

व्यूहों की भटकती गलियों में
भागती-सी अकुलाती आत्माएँ
ज्वलन्त स्वदेश की !!
किन्तु, दूर, किसी छोर
ऊँचे-ऊँचे घने-घने
बहुत पुराने कुछ दरख़्तों के साँवले
फैले हुए शिखरों पर, सिरों पर, छोरों पर
छठी और सातवीं मंजिलों से आये हुए
छाये हुए
पीली-पीली रोशनी के लम्बे लम्बे पीले बाल
लम्बे-लम्बे पीले बाल
पीली-पीली रोशनी के !!
खिड़की से चले हुए
धरती पर गिरे हुए
प्रकाश के नक्शे पर गुज़रती हैं छायाएँ
आते-जाते बड़े-बड़े व्यक्तियों की, लोगों की ।
इमारत के पैरों-तले खड़े हुए छायादार
ओक के व बीच के व लिण्डन के,
अँधेरे के गुम्बजों-से वृक्षों पर
बैठे हुए, यूरोपियन पूँजी की आँखों से
दुनिया को निहारकर
घुग्घुओं का जमघट
कहता है एक बात
एक बात कहता है
इमारत में क्या-क्या है !!
भवन के सातवें तल्ले पर कुछ लोग
दुनिया की आत्मा की चीर-फाड़
करने के बाद ही
टेबल पर बहती हुई लोहू की धारा में
उँगलियाँ डुबोकर
खून की लकीरों से
देशों की नयी-नयी खूनी लाल खूनी लाल
सरहदें सीमाएँ बनाते ही जाते हैं
हवाई अड्डों के प्रस्तावित स्थानों पर
खूनी नाप लगाकर
फ़ौजी घेरे मोर्चे
नये-नये रवर के चिह्नों से जाते हैं बनाने ।
कौन हैं ये लोग बोलो,
कौन हैं ये लोग, अजी ।
अँधेरे के घने-घने काले-काले कुओं में

बैठे हुए लोगो के खोलो न, नकाब सब
उन्ही के मकानो के पिछवाडे बनते है
दुनिया को जीतने के नक्शो के ख्वाब सब।
घुग्घू न दे सके इसका जवाब कुछ
किराये की मीठी-सी अँगडाई की लहर-सी
बिजली के दीपो की कमानियाँ रह गयी चुपचाप
सोचती है हमी सब जानती हैं सहती है
सडको पर राहो पर इन्ही के कमरो मे हम ही तो रहती हैं !!
दुनिया की पूँजी के पैण्टो के कोटो के
जेबो मे भरा हुआ पिस्तौल
आँखो मे बर्फ की ज्वलन्त सर्द आग
चेहरो पर चमकती है दमकती है चुपचाप
खूँखार दरिन्दो के चेहरो की ताँक-झाँक
लम्बे-चौडे चूल्हो मे बहुत बडे आदमी का
ठस्सा है महीडोल !!
नभोभेदी कहकहे, नभोभेदी वक्तव्य
विश्वभेदी युद्धो का किस्सा है महीडोल।

युद्ध के लाल-लाल
प्रदीप्त स्फुलिंगो-से लगते है
बिजली के दीप हमे
लन्दन मे वाशिंगटन,
वाशिंगटन मे पैरिस की पूँजी की चिन्ता मे
युद्ध की वार्ताएँ सोने न देती है,
किराये की आज़ादी
चाँटे-सी पडी है, पर रोने न देती है
जर्मनी सगीत
अमरीकी सगीत
जब मानव और मनुष्य हमे
होने न देता है !!

पश्चिमी नगरो की इमारतें ठठाकर
मकानो के ताबूत कहकहे लगाकर
हँस पडे हँस पडे।
फट गया अँधेरा
जनता के शत्रुओ ने अपने ही नाखूनो से
पागल हो

चीर डाला चीर डाला,
अपने ही सीने की हड्डियों का घेरा यह दुहेरा ।।

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। उन्मेष (1965), में प्रकाशित। भूरी-भूरी खाक-धूल में इसी कविता का एक भिन्न रूप संकलित]

गुँथे तुमसे, बिँधे तुमसे

वेदना में हम विचारों की
गुँथे तुमसे,
बिँधे तुमसे,
व आवष्टित परस्पर हो गये
कर्मण्य-क्षिप्रा-तीर पर ।।
कोई नहीं थे हम तुम्हारे किन्तु
सहचर हो गये
चाहे जलधि, पर्वत, हजारों मील की दूरी
हमारे बीच में आ जाय,
फिर भी मानसिक अदृश्य सूत्रों में
हमारी आत्माएँ परस्पर बात करती हैं
विचारों के स्वयं-संवेदनात्मक तन्तु-मूलों ने
गहन मस्तिष्क-कोषों में
हृदय के रुधिर-कोषों में
अनेकों सूक्ष्मतम जाले पसारे हैं
व अन्तर्व्यक्ति की रमणीय
ऊँची वृक्ष-शाखों पर
मनोहर फूल विकसित कर दिये…।
जीवन-जगत् उनकी महक में डूबता ।।
अन्तःकरण के मेह-कुहरे के घन अँधियार में
अब तक छिपा था जो
धवल कैलाश
उद्घाटित हुआ सहसा
किरण, वर्क व रंग-बिरंगे फूल से आवृत
गहन रमणीय वह अस्तित्व
सारी मानवी सम्भावनाओं का स्वयं-चैतन्य
गहरी आन्तरिक सम्पन्नताओं का
धवल कैलाश

सामान्यीकरण का वह असामान्यीकरण
अनुभूत सत्यों का समन्वित सगठित हिम-शिखर
उसके शिला-प्रस्तर से
सहस्रो झर रहे रमणीय
शत-निष्कर्ष !
शत-निर्झर !!

अन्तर-भार नम्रा देवदारु-डगाल के नीचे
झुके हम और अजलि भर
लगे पीने
तुम्हारे साथ,
उस झरते हुए जल रूप
द्युति-निष्कर्ष को
कि इतन मे गहन गम्भीर, नीली घन घटाओ की
नभाभेदी चमकती गडगडाहट-सी हुई
अन्तर्गुहाएँ खोल मुँह चिल्ला उठी
कहने लगी—
पी रहे हो तुम हमारा सत
पी रहे हो गति
पी रहे हो चित्
निष्कर्ष निर्झर लहर
प्राकृत, वन्य और असभ्य है
वह मान्य ड्राइग रूम सम्कृति से तुम्हे हटवायगी
वह कान पकडेगी, उठाकर फेंक देगी
अजनबी मैदान म
घर-बार सब छुडवायेगी ।
तुमको अजान देश म
गिरि-कन्दरा म जगलो मे सब जगह
भटकायेगी ।
अजनबी स्थिति या परिस्थिति भी तुम्हे
सम्पन्न कर देगी
अत आदेश उसके मान
यदि तुम निकल जाओ
वह जहाँ भी जाय
वह जहाँ ले जाय
तो तुम पाओगे अभिप्रेत
सकट-कष्ट की चट्टान के भीतर फँसा हीरा
निकल, दमकायेगा चेहरा तुम्हारा श्याम
किन्तु यदि माना नही आदेश
स्वय निष्कर्ष तुमको रगड देंगे

नष्ट कर देंगे
जहाँ रुक जाओगे।
वे नही आधे किये जाते रास्ते
इस रास्ते पर धरमशाला डाकबँगला भी नही है
सत्य को अनुभूत करना सहज है
मुश्किल बहुत
उसके कठिन निष्कर्ष-मार्गों पर चले चलना
इसलिए इस अमृत निर्झर-लहर-जल को
और भी पी लो।

हाँ, सुनो···
यदि व्यक्ति अथवा स्थिति
की जब-जब बेरुखी दीखे
सहज चलते चलो
सुन लो कि वे वीरान टीले हैं
व टीलों की कभी करना उपेक्षा मत
परस्पर-संवेद्य आवेष्टित दशा में
शब्दशः
सुनते रहे हम गरज भीतर
व उसकी हर धड़क
कुछ हुए आतंकित
अतः कुछ भीत !!
पर, निष्कर्ष-निर्झर-लहर-जल में
काँपता था पूर्ण-मानव-चन्द्र
भर उठी थी पुतलियों में चन्द्र-कनियाँ !!
पी रहे थे उस समय हम चन्द्र-जल-धारा,
अतः थी भीति भी तो हो उठी मीठी
गहन आन्तर हमको बुलाता-सा था !!
विचारों की शिराओं में
स्वयं उद्देश्य-संवेदन (धमन के रक्त-सा) अधुना
हृदय में रक्त-भ्रमण-विश्राम करता था।
गहन परिवर्तनों के सत्य का
मन का जगत् का विश्व का
मानव-प्रदेशों का सफर
सुकुमार अनुसन्धान-पथ हमको दिखाता आयेगा
सम्मोह का दीपक
विवेकी अनुभवों के हाथ में जो किरण-नश्तर है
यह हमें विश्वास था।
लहर-जल पीकर
लगा कुछ यों कि कन्धों पर

स्वय के चढ रहे हम स्वय
यो ऊँचे उठे तो देखते क्या हैं
कि सारा विश्व-दृश्य बदल गया
या अन्तरात्मा ही बदलती जा रही।
बदली हुई उस अन्तरात्मा का
अरे, वह नव-विवाहित भाव-सवेदन
कि गहरी वेदना का सवहन-दायित्व
हमको ले चला निष्कर्ष-पथ पर और
लघु व्यक्तित्व के भीतर
लहरते क्षीण पोखर मे
विराजित हो गया था सूर्य मुखमण्डल
विचारो के चरण मे
सचरण मे
आचरण मे और विचरण मे
गहन तेजस् व ओजस्
और ऊर्जा है
हमेशा खून ताजा है !!

वह ज्यामितिक रेखा
नभस् के पार जाती झलमलाती-सी दिखी
उत्साह के तारुण्य मे
गणितिक हुआ अनुवाद अन्तर का
हमारे शून्य मे ऋण-राशि को नि सीम कर डाला
चलत् ससार के सिद्धान्त हम पर क्रुद्ध थे
ऋण-धन परे गणितिक पथो पर चल पडे
हम प्रथम विद्रोही जमाने से लडे
नक्षत्र-पुष्पो-से दमकने ये लगे
उलझे हुए त्रैराशिको के आँकडे
जब-जब कहा
तब-तब ग्रहण लगने लगा
इस सूर्य को उस चन्द्र को !!

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। ज्ञानोदय, जून 1968, म प्रकाशित। भूरी-भूरी खाक धूल मे सकलित]

दूर यह भूरी पहाड़ी खोदने पर
बहुत भीतर से—
जगमगाते हुए निकले रत्न—
मगज-भूमि के कण,
अनुमानो सूर्य के द्युति-खण्ड तेजस्वी।

बुद्धि-आलस त्याग
भर भी यत्न की हमने चमकती धूप
जिसमें जगमगाते रत्न के नागखण्ड।

मैदानी हवाओं में
        चमकती खिलखिलाती दूर
यह भूरी पहाड़ी, या उपेक्षित तथ्य का टीला
कि सतही जानकारी में अजाना
ज़िन्दगी का स्तर तुम्हारी दृष्टि में…
भूरी पहाड़ी-सा पड़ा वीरान—
तुम मेरे लिए वैसे कठिन बंजर
खड़े भूरे शिखर।

गहन परिचित अपरिचय की
        काट पीली घास,
सतही जानकारी का भयानक
काट बचपन,
लगे हम खोदने दो ओर से
यह टेकड़ी भूरी,
बनाये गहन अन्तर्पथ
अन्तस्तल-गुहा में तब
        मिले ये दीप्त
सौ-सौ रत्न जीवन के।
गहन-गम्भीर सुविचारित
सरल थे सत्य ये मन के!
शिलाओं के पहाड़ी कवच पहने थे
कि रस्ता खोजते अन्वेषकों की जोहते थे बाट…

किन्तु, इसकी पूर्वगाथा और ही कुछ थी,
कि उसकी भूमिका, आकाशिका औ' पवनिका सच थी।
ज़िन्दगी के चिलचिलाते इन पठारों पर

हमेशा तिलमिलाते कष्ट मे हमने
अनेको रास्तो पर घोर श्रम करके
कुएँ खोदे
हृदय के स्वच्छ पानी के,
कि चटियल भूमि तोडी और भीतर से
निकाला शुद्ध ताज़ा जल।
वृथा की भद्रता औ' शिष्टता के नियम सारे तोड
अनुभव ने
स्वय के श्याम काँधे पर
रखी थी काँवडे जल की,
विवेकी हृदय के तल की।
हृदय-जल-पूर्ण पीपे छलछलाते थे
व श्यामल भारवाही झुके काँधे पर भरी काँवड,
लचक्ती, जा रही थी दूर।
बने थे बेल-बूटे
दूरगामी आर्द्र रेखा के।
चमकते चिलचिलाते उन पठारो पर
पिलाया प्राण-जल मीठा
कि कष्टो के
कठिन मानव-प्रसगो म
हृदय-सम्बन्ध
कैसा जगमगाता था!
पिलाया स्वय का रस-मग्न अन्तस्तल।

अरे, हमने पठारो पर सतत
जी तोड मेहनत से
हृदय जोडे,
कि इस पथ को
स्वय की भव्य अन्त शक्ति से अभ्यस्त कर डाला
कि फिर भी वह अधूरा था
अधूरा
क्योकि केवल भावना से
काम चलना खूब था मुश्किल।
हमे था चाहिए कुछ और
जिससे खून मे किरनें वहे रवि की
कि जिससे दिल
अनूठा भव्य अपराजेय टीला हो
कि जिससे वक्ष
हो सिद्धान्त-सा मजबूत
भीतर भाव गीला हो।

हमें था चाहिए कुछ और···

हमें था चाहिए कुछ वह
कि जो ब्रह्माण्ड समझे त्रस्त जीवन को
व उसमें देख पाये
जगमगाती स्नेह-आश्लेषा,
व निर्मल झलमलाती बुद्धि-ज्योतित
मुग्ध चित्रा वह,
चमकती गौर करुणा-भाव की
शुभ्र स्मिता आर्द्रा,
अनवरत मुक्तिकामी विश्व-व्याख्या-रत
धवल सप्तर्षि,
जिनके आखिरी दो तारकों की सीध में
गम्भीर ध्रुवतारा।
हमें था चाहिए कुछ वह
कि जो गम्भीर ज्योति शास्त्र रच डाले।
नया दिक्काल-थियोरम बन,
प्रकट हो भव्य सामान्यीकरण
मन का
कि जो गहरी करे व्याख्या
अनाख्या वास्तविकताओं,
जगत् की प्रक्रियाओं की।
हमें था चाहिए दिन-रात
अनुभव दीप्ति मानव-ब्रह्म की संवेदना का
भव्य अनुशासन,
कि उससे एक गहरा फलसफा
तैयार हो जाये,
कि पूरा सत्य
जीवन के विविध उलझे प्रसंगों में
सहज ही दौड़ता आये—
स्मरण में आय
मार्मिक चोट के गम्भीर दोहे-सा।
कि भीतर से सहारा दे
बना दे प्राण लोहे-सा।
व व्याख्याएँ
बनें सोपान
झिलमिल सत्य-विम्बित रत्न प्रस्तर की
व ऐसी संगठित सीढ़ी-व्यवस्थाएँ
शिखर तक चढ़
वहाँ पर भव्य दीप-स्तम्भ तक पहुँचें

कि जिस उद्दीप्त दीप-स्तम्भ के नीचे
रहे गम्भीर-तन्मय ध्यानमग्ना
पूर्ण-मानव-मूर्ति
जीवन-लक्ष्य की दुर्दान्ति।
यह थी भूमिका हम-तुम मिले थे जब
अत हमने अपरिचय, बेरुखेपन
औ' उपेक्षा की
खडी भूरी पहाडी खोद डाली और
उसमे से निकाले जगमगाते रत्न
मगल-शुक्र के कण
अशुमाली-सूर्य
के द्युति-खण्ड तेजस्वी
(हमारी जिन्दगी के ये)
व इन नक्षत्र-खण्डो को
ललककर ले लिया हमने इसे देने, उसे देने
इन्हे देने, उन्हे देने।

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। **वसुधा**, दिसम्बर 1957, मे प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढा है** मे सकलित]

शब्दों का अर्थ जब

धरती की आँखो के सम्मुख अब
असम्भव कि आगे आय
सूना वह हिस्सा जो पिछला है चन्दा का
अगला न हुआ हिस्सा वह
चाहे वह पूनो हो, मावस हो
तो अन्यो के नैनो से ओझल वह
आत्म-सज्ञ निज-सविद् निज-चेतस्
सूना वह गोल सिफर
बाहर पर, धरती पर फैलाये छिटकाये चाँदनी
तो कृत्रिम-स्मित मुसकाते चन्दा-सा
शब्दो का अर्थ जब;

घनघोर जगल की मध्य-रात्रि सूने मे
बहुत दूर, बहुत दूर, मीलो दूर

दीखता हिलता हुआ, डुलता हुआ
जलता हुआ लाल-लाल
प्रकाश विम्ब अजनबी
सुर्ख एक धब्बा वह ज्वाल का
करता है संकेतित कोई उपदिशा किन्तु वस्तुत
बतलाता कुछ नहीं
शब्दों का अर्थ जब,

वेश्या के देह से
तैरते-उतरते व चढते हुए कम्पभरे
भडकीले वस्त्रों सा
सकुचाता सिहर जाय,
शब्दों का अर्थ जब,
किराये के शृंगार-दागा-सा उभर आय आदतन
शैया की चमकीली
चादर-सा फुसकाता हँस जाये,
बिके हुए कमनीय गौर कपोलो पर
पापों के फूलों सा मुस्काये
शब्दों का अर्थ जब !!

अहं की वृत्तियों के मानसिक
मकडी के जालों-सा सूक्ष्मतम—
श्रद्धा के द्वारों पर लगे हुए
स्वार्थों के तालों-सा
जीने के जीने की
अँधेरी व चक्करदार
सीढियों पर चोरों के
पैरों की बार-बार
प्रतिध्वनि ध्वनियों-सा
शब्दों का अर्थ जब,
गिन्नी सा, रुपयों-सा,
पैसों-सा बोलेगा
पाताली लोकों मे
लोभों के प्रेतों का
डोलेगा सिंहासन,

शब्दों का अर्थ जब—
पोखर मे अन्तर के, व्रणीभूत
दुर्दर की दर्दभरी
टेरों-सा भूखा हो,

मानव की पीडा की रातो मे चिल्लाती
खौंखियाती बिल्ली के रागो-सा रूखा हो,
नर-तन मे पशु-मन के झीगुर की अनर्गल
झिल्ली की झन-झन से
गलियारा गूँजता
ऐसे ही ध्वनिगुंजित मलिन-पक गलियारा
शब्दो का अर्थ जब,
दम भरते दम्भो के
सियारो का जगल मे
मगल का अँधियारा
शब्दो का अर्थ जब;

शब्दो का अर्थ जब
अपने ही दाँतो से
अपने ही घावो को
काटे और चूम जाय,
झुठलाती झूठी-सी
निन्दा के होठो को
चाटे और झूम जाय—
शब्दो का अर्थ जब,
सीधो के गालो पर
टेढो की घृणाभरी
कुत्सामय झापड-सा
आत्मा के आस-पास
द्वेषो की ईर्ष्या की
थूहर-बबूलो की
काँटेदार बागड-सा
शब्दों का अर्थ जब,

लुके छिपे कभी-कभी
सज्जन की आत्मा मे
विकृतिपूर्ण स्वार्थो की
अकस्मात् गडबड या चन्द्र-किरण-स्नात
वन-मजरी-बौरायी नवल आम्र-शाख पर
चिमगादड-वृन्दो की
फड-फड या हुल्लड-सा
शब्दो का अर्थ जब,

सज्जन की गन्ध-मधुर
आत्मा के फूलो पर

आन्तरिक कमजोरी
की हरी-हरी इल्ली-सा
सामूहिक निश्चय के बाड़े में पिछवाड़े
मुँडेरों पर भागे जो देखे जो पीछे को
भीगी-सी बिल्ली-सा
शब्दों का अर्थ जब,

आदर्शों-लक्ष्यों के स्वर्ण-कान्ति शिखर लिये
विचारों के भव्य भवन—
मान सरोवर तट पर प्रतिबिम्बित शोभित हैं
तो कभी-कभी, कभी-कभी
स्फटिक-श्वेत स्निग्ध सगमर्मर बनी मधुर चाँदनी-धुली
भव्य पावन दिवालों पर
अन्धकार-गुहाओं से सरसराते हुए लक्ष्य
स्वप्नों की चमचमाती हुई स्याह रश्मि या दीर्घ लहराता हुआ काल-सर्प
महत्त्वाकांक्षा का सरसराता चढ़ता है काल-नाग
स्फटिक-श्वेत पावन दिवालों पर,
कि जिसकी अकस्मात्
पकड़कर लहराती भुजग-पूँछ
चढ़ता है, चढ़ता है
चोर एक
अकुलाती इच्छा का बिल्वमंगल मोह-अन्ध
शब्दों का अर्थ जब, !

लक्ष्यों की अकुलाती
यशवन्ती कीर्ति-उषा
के खुले हुए वातायन
में से यों चोरी से झाँककर
भीतर द्रुत कूदकर
उस घर का वासी विश्वासी बन
सज्जन कहलाता है
शब्दों का अर्थ जब,

भीतर के दरवाजे पर डालकर आकर्षक
आदर्शों-लक्ष्यों की सुन्दर एक चिलमन
चिलमन के भीतर जब
मोहमयी नारी-सी
अहंबद्ध सामाजिक
उन्नति-प्रतिष्ठा की लालसा
लेती है अँगड़ाई

तो चिलमन मे डोलती उसकी मधु-छाया-सा सम्मोहक आकर्षक
शब्दो का अर्थ जब,

आदर्शों-लक्ष्या के वेला के फूल नव
वेणी मे गूंथकर
नागिन-सी वेणी को
उरस् पर लहराकर
बैठी जो काल-यवन दानव के अक मे
उसकी उस खुली हुई
सास्कृतिक जघा-सा
शब्दो का अर्थ जब,

मानव की उन्नति के
वेगवान चक्रो को
कुचक्रो के अस्त्रो से तोडनेवालो की
स्वय की श्लाघा-सा
शब्दो का अर्थ जब,

आदर्शो-लक्ष्यो के
आत्मजात पुत्रो-से
प्रभावमय विचार-भाव—
जन-जन दूर हट
वैभव व बल पाकर
अह के बेतो से
लक्ष्यो को कि पिताओ को मार-मार
बरसाती रातो मे पैनिक भवन मे से
देते है निकाल ज्यो
कि पापी उन आत्मजात पुत्रो सा
शब्दो का अर्थ जब,

जगल के अँधेरे मे
पीपल-समीप एक
पुरानी किसी सास्कृतिक
हवेली की खण्डिता
ठण्डी-सी गच्ची पर
मरी हुई आत्माओ
भूतो की जिह्वा से गूंज रही तमवन मे
वेदो की वाणी-सा
जन-जन की गर्दन पर
शोषण के फरसे की

भीषण कहानी-सा
शब्दों का अर्थ जब;

जनता को ढोर समझ
ढोरों की पीठभरे
घावों में चोंच मार
रक्त-भोज, मांस-भोज
करते हुए गर्दन मटकाते दर्प-भर कौओं-सा
भूखी अस्थि-पंजर शेष
नित्य मार खाती-सी
रँभाती हुई अकुलाती दर्दभरी
दीन मलिन गौओं-सा
शब्दों का अर्थ जब;

दुनिया को हाट समझ
जन-जन के जीवन का
मांस काट,
रक्त-मांस विक्रय के
प्रदर्शन की प्रतिभा का
नया ठाठ,
शब्दों का अर्थ जब
नोच-खसोट लूट-पाट,

सत्ता के परब्रह्म
ईश्वर के आस-पास
सांस्कृतिक लहँगों में
लफंगों का लास-रास
खुश होकर तालियाँ
देते हुए गोलमटोल
बिके हुए मूर्खों के
होंठों पर हीन हास
शब्दों का अर्थ जब,

सत्ता के लोहे के डण्डे से घबराकर
जनता की दिग्विजयी क्षमता से कतराकर
सज्जन के पंच-प्राण
करते जब अविश्वास
जन-बल में अश्रद्धा,
जन-बल में अश्रद्धा
स्वयं उन्हें देती है

आत्म-विश्वास-हानि
सज्जन की आत्मा तब
विधवा बन जाती है
विधवा के प्राणो से
या विधवा की
कोख से अवैध समझा गया जन्म
जब सत्यो का होता है
तो भय के अँधेरे मे
नपुसक नदी-तीर
आत्मजात शिशुओ की अपने ही हाथो से
मरोडी ही गर्दन जो जाती है
तब आत्मजा निन्दा की भयावनी
मर्मान्तिक शिकायतो
सत्यो के कण्ठ-रोध—
प्रतिभा के शिशुओ की
अन्तिम-दम-चीखो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

नपुसक आत्मा-सा सज्जन की
वचना-स्वप्नो-सा, धोखो-सा
सज्जन के वैचारिक खोखो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

अनुभव-विवेक-हीन
ज्ञान-सवेदन-हीन
अन्धकार-अम्बर मे
जीवन्त-पीडा-हीन कठिन बुद्धि तर्कों की
बिजलियाँ चमकती हैं नाचती असियो-सी,
अहकार-तुष्टि के प्रसाधन—
युक्ति, रिक्त सूत्र, वाद, आत्म-आशसी
गडगडाते दिशाओ मे,
अहकार-तुष्टि के नशे मे नित
तर्कों का चक्रव्यूह-जाल बुना जाता है,
सूरज ठहर जाता है मेघो के गड्ढे मे
जहाँ भी हो चाँद रुक जाता है,
सरित का प्रवाह जम जाता है अकस्मात
सिन्धु की तरगें थम जाती हैं,
मूर्ख और मुखर
मसीहा का तेजस्वी
भाल—सूर्य होता है जगमगाते टीन-सा,

चेहरा—चन्द्र बनता है उपमा के प्रयोग मे,
भाव—नदी बनते हैं आँगन मे पानी की लकीर-से,
हृदय—सिन्धु बनता है दलदल का
अहकार-तुष्टि के नशे में सब अर्थ बदल जाते हैं
दुनिया बदल जाती है,
सियार शेर बनते हैं,
श्मशानो के पीपल के पीत पत्र
और और
वाग्वीर बनते हैं,
राजपथों-गलियो मे
ग्राम-सिह वृन्दो का
धर्म-युद्ध होता है,
जनता की दु खजनित
आस्था का स्वार्थग्रस्त
दुरुपयोग होता है,
जन-मन की सृजनशील प्रतिभा का
अपार निर्लज्ज और नि शक भोग होता है,
तो ऐस ही वाग्वीर
सैद्धान्तिक मुखर मूर्ख
सौ तान्त्रिक जिह्वा के
अहकार-सत्यो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

सामाजिक-आध्यात्मिक
शोषण के जल-प्रलय
पूरो मे, बाढो मे
जन-जन की अनगिनत
बहती हुई लोथों-सा
पूतिहीन जन-सुलभ
काक्षा-स्वप्न—मानो बाल वृन्दो
के तोडे मरोडे गये
कटे-छँटे हाथो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

तब मनुष्य ऊबकर उकताकर
ऐसे सब अर्थों की छाती पर पैर जमा
तोडेगा काराएँ कल्मष की
तोडेगा दुर्ग सब
अर्थों के अनर्थ के।

अनर्थ जब शोषण की दुनिया का
नियम और
जनता का नियम जबकि
संघर्षी दिग्विजय
तो शब्दों का अर्थ भी
अलग-अलग होता है,
माँओं के, बहनों के
आँसुओं-सिंची-हुई गेहूँ की फसलों पर
फैले धूप-आतप का
स्वर्ण अलग होता है,
माँओं-पिताओं की आत्मा में
बहती हुई ममतामय गंगा की
कल्याणी यमुना की तरंगों का
वर्ण अलग होता है,
भारतीय कीर्ति के
सुनील गिरि-शिखरों पर
बैठे हुए स्वर्ण-पंख—
मानवीय प्रतिभा के
राजहंस-मिथुनों की
शोभा अलग होती है
शब्दों के अर्थों में
जन-जन के चेहरे जगमगाते हैं
चमकती हैं आँखें ये
अनुभव दमकते हैं
शब्दों के अर्थों में !

सन्ध्या के उपराम
क्षणों के उपरान्त
भारतीय मैदान
पवनों की चादरों को
लपेटकर सोते हैं
तो कमरे के अँधेरे में
जगती है प्रियतमा
कल्याणी चिन्ता एक
बाहर-गत प्रिय की प्रतीक्षा में
प्रतीक्षातुर प्रहर-पल सरकते हैं कि
इतने में, इतने में
अँधेरे में खटखटायी जाती है बाहर से,
अँधेरे में साँकल यह
अन्तर के द्वारों की—

सुनकर जिसे अकुलाती
तुरन्त उठ पडती,
कल्याणी चेतना सवेदित।
द्वार खोल देने को उठे हुए हाथो से
साँकल पर कम्पनमय कगन की
सवेदित रोमाचित ध्वनियो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

जन-जन के लक्ष्यों के
सघर्षी मार्गो पर
चलने को आतुर उन
श्रद्धानत पुत्रो के
अन्तर मे, मन मे हैं
आलोकित—
(अपने ही झुके हुए मस्तक के नीचे हैं
दीपित शत)
अनुभव-रज-धूसर उन
पिताश्री के, माता के
चरणो के पावन नख-मणियो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

धूलभरी पगडण्डी
पर लाठी ले चलते, उन
कर्मठ पति-चरणो की
सम्पीडित छाया मे
पति-प्राणा दृढता की
चलती है गठ्ठे को सिर पर रख रेखा वह
अनुभव के गठ्ठे को सिर पर रख
कोमल-उर-सगिनि-सा
चलता है लक्ष्यो के
पीछे यो
शब्दो का अर्थ जब,

धूप-तपी राहो की
धूलिमय सफेदी मे
एक जगह श्यामलता,
पेडतले छाया मे बैठे हैं
होरी औ' धनिया,
धनिया है नीलाचल
श्रम-सिक्ता श्याम लता।

अपने ही प्रेरणा-
पुरुष के कन्धे पर
बाँह डाल बैठी है,
स्नेह की दृढ़ता मे
साँवरी चचलता,
तो अपने ही
प्रेरणा-पुरुष
के कन्धे पर
जीवन के अनुभव की ममतामय
बाँहो-सा,
आकुलित अनुभव के माथे पर
लक्ष्यो के लाल-लाल कुकुम सा
शब्दो का अर्थ जब,

ग़रीबी के अनुभव के बीहड हिमनग प्रदेशो म
ममता की शुभ्र अमल गगा के कूलो पर
मानवीय लक्ष्यो के
श्याम खेत सिंचते हैं पठारो पर
सवेदन सत्यो की झीलें प्रतिबिम्बित अरुणायित लहराती।
राजपथो-गलियो में
जीवन के वैज्ञानिक ज्ञान-दीप
प्राणो के हँसते हैं।
सवेदित भावो के आकुलित विचारो के
राजपथो-गलियो से, दूर पर—
प्राणो की गगा का
अकुलाता जल-प्रसार
खूब दीख पडता है।
ग़रीबी की राहो के चौराहो, दुराहो पर
मन्त्रमुग्ध भावो की
शीर्षोन्नित जनता को
पुकारता जगाता है
मनस्वी एक अपना ही,
तो अपने ही प्राणो के भीतर उस
तेजस्वी साथी के दमदमाते क्रान्तिकारी स्वप्नो-सा
शब्दो का अर्थ जब,

जनता के जीवन के सवेदन-सत्यो के
चित्रो से—
तथ्यो के विश्लेषण सश्लेषण-बिम्बो से—
बनाकर धरित्री का मानचित्र

दूर क्षितिज फलक पर कि टाँग जो देता है
वह जीवन का वैज्ञानिक यशस्वी
कार्यकर्ता है
मनस्वी क्रान्तिकारी वह
सहजता से
दृढता से
दिशाएँ कर निर्धारित
उपाएँ कर उद्घाटित
जन-जन को पुकारता जगाता है निशाओ मे
तो उसकी उस कण्ठ-रुँधी बन्धु-भाव
भरी हुई वाणी मे काँप रही
जगमगाती आग और
छलकते हुए पानी-सा
शब्दो का अर्थ जब,

उस सम्प्रेरित बन्धु-भाव
भरी हुई निज चेतस् पीडा की वाणी मे
सघर्षों-विश्वासो विकासमान चेतन-तृषाओ की
जीवन-कहानी की नगरी मे
सवेदन सत्यो की बस्तियाँ अनेकानेक बिखरी है क्षितिज तलक
सुनते ही वाणी के शब्द-स्वर
जन-जन के कोमल मन
सर्जन की पीडा से आकुल हो
आत्म-दान करने को
घूमते-फिरते हैं
सवेदन-सत्यो की वस्ती की गलियो मे
सर्जन की पीडा से आकुल हो,
तो उस क्षण की समुत्तुग
पीडा के शिखर-शीश
बैठा जो विवेकवान
प्रतिभामय
महापुरुष जीवन का
तो उसके नव-क्षितिज-रूप
तेजस् ललाट-सा
शब्दों का अर्थ जब;

जन-जन के धडकते हुए हृदयो की
अपनी भी धडकती हुई छाती की
जीवित त्वचाओ मे
मढ़ी हुई

दुन्दुभियाँ बजती है,
अभियानी वेला मे, सहसा तब
दिशाओ का नीला पट
लोहित *अग्नि-वलयों* मे
मुड-मुड जब जाता है
तब *दिग्विजयी रक्त-ध्वज*
की मुस्करानी फर-फर-सा
शब्दो का अर्थ जब,

जीवन की यात्रा मे
अर्थ-स्वर्ण-मैदान आँखो के सम्मुख नव
नव-नव जब खुलते है कि उनके भी पार पुन
नये-नये अर्थों की
बहती चर्मणवती, गम्भीरा, क्षिप्रा वह
जिसके तट
सोने के किरणो के अक्षर से चिह्नांकित
जीवन के विक्षोभित अर्थों की उज्जयिनी,
प्रश्नो के अर्थों की चम्बल मे
बहते हुए पवनो मे डूबी है
जीवन-अवन्तिका,
उसके भी पार, पुन ,
पूर्व-उत्तर की ओर नये
लक्ष्यो के नीले वन-खण्डो मे
बहती है उद्धत नव अर्थो की
कोमल-मन वेत्रवती
बुदेले उन किसानो के सघर्षी जीवन की
उसके भी पार पुन
जीवन के समतल मे नये-नय प्रश्नो के
लक्ष्यो की
नील-लहर यमुना है
श्रमिका की, कृपको की बाँहो से बन जाता दोआबा
अर्थों की हिम-गिरिजा गगा मे
प्राणो की सरयू यह मिलती है
तुलसी-स्वर-गन्धिता ।

अर्थों के पार नये
क्षितिजो के कुहरे मे खोये है
आगामी असख्य शिखर
अर्थों के हिमनग के ।
जीवन की यात्रा मे
अर्थो को आत्मसात करती हुई

अनुभविनी सवेदित
वैज्ञानिक जिज्ञासा
की निश्छल, इन निष्कलक
भोली इन निष्कलुप
बुद्धिमान आँखो-सा
शब्दो का अर्थ जब ।

[रचनाकाल 1949 से 1957 तक । अन्तिम सशोधन सम्भवत नागपुर में 1957 में किये गये। 'भूरी-भरी खाक धूल' मे सकलित। वहाँ इस कविता में इसके बाद भी एक अश और था। पर पाण्डुलिपियो के परीक्षण से यह लगा कि वह अश किसी अन्य कविता का है, इस कविता का नहीं। इसलिए उसे यहाँ छोड दिया गया है।—सं]

चाहिए मुझे मेरा असंग बबूलपन

[इस कविता की पहली तीन चार पक्तियाँ 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मे सकलित 'मुझे मालूम नहीं' कविता के शुरू म भी मिलती हैं।—स]

मुझे नही मालूम
मेरी प्रतिक्रियाएँ
सही हैं या ग़लत हैं या और कुछ
सच, हूँ मात्र मैं निवेदन-सौन्दर्य

सुबह से शाम तक
मन मे ही
आडी-टेढी लकीरो से करता हूँ
अपनी ही काट-पीट
ग़लत के ख़िलाफ नित सही की तलाश मे कि
इतना उलझ जाता हूँ कि
जहर नही
लिखने की स्याही मैं पीता हूँ कि
नीला मुँह—
दायित्व-भावो की तुलना मे
अपना ही व्यक्ति जब देखता
तो पाता हूँ कि
ख़ुद नही मालूम
सही हूँ या ग़लत हूँ

या और कुछ
सत्य हूँ कि सिर्फ मैं कहन की तारीफ
मनोहर केन्द्र मे
खूबसूरत वज़ेदार
बिजली के खम्भे पर
अँगडाई लेते हुए मेहराबदार चार
तडित्-प्रकाश-दीप—
खम्भे के अलकार !!
सत्य मेरा अलकार यदि, हाय
तो फिर मैं बुरा हूँ।
निजत्व तुम्हारा, प्राण-स्वप्न तुम्हारा और
व्यक्तित्व तडित-अग्नि-भारवाही तार-तार
बिजली के खम्भे की भाति ही
कन्धो पर रख मैं
विभिन्न तुम्हारे मुख-भाव कान्ति-रश्मि-दीप
निज के हृदय-प्राण
वक्ष से प्रकट, आविर्भूत, अभिव्यक्त
यदि करता हूँ तो···
दोष तुम्हारा है

मैंने नही कहा था कि
मेरी इस जिन्दगी के बन्द किवार की
दरार से
रश्मि-सी घुसो और
विभिन्न दीवारो पर लगे हुए शीशो पर
प्रत्यावर्तित होती रहो
मनोज्ञ रश्मि की लीला बन
होती हो प्रत्यावर्तित विभिन्न कोणो से
विभिन्न शीशो पर
आकाशीय मार्ग से रश्मि-प्रवाहो के
कमरे के सूने मे साँवले
निज-चेतस् आलोक

सत्य है कि
बहुत भव्य रम्य विशाल मृदु
कोई चीज
कभी-कभी सिकुडती है इतनी कि
तुच्छ और क्षुद्र ही लगती है ! !
मेरे भीतर आलोचनाशील आँख
बुद्धि की सचाई से

कल्पनाशील दृग फोड़ती ! !
सवेदनशील मैं कि चिन्ताग्रस्त
कभी बहुत क्रुद्ध हो
सोचता हूँ
मैंने नहीं कहा था कि तुम मुझे
अपना सम्बल बना लो
मुझे नहीं चाहिए निज वक्ष कोई सुख
किसी पुष्पलता के विकास-प्रसार-हित
जाली नहीं बनूँगा मैं बाँस की
चाहिए मुझे मैं
चाहिए मुझे मेरा खोया हुआ
रूखा-सूखा व्यक्तित्व
चाहिए मुझे मेरा पाषाण
चाहिए मुझे मेरा असग बबूलपन।
कौन हो कि कहीं की अजीब तुम
बीसवीं सदी की एक
नालायक ट्रैजेडी
जमाने की दु खान्त मूर्खता
फैण्टेसी मन हर
बुदबुदाता हुआ आत्म-सवाद
होठों का बेवकूफ कथ्य और
फफक-फफक ढुला अश्रुजल

अरी तुम षड्यन्त्र-व्यूह-जाल-फँसी हुई
अजान सब पैंतरों से बातों से
भोले विश्वास की सहजता
स्वाभाविक सौंप
यह प्राकृतिक हृदय-दान—
बेसिकली गलत तुम।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। अप्रकाशित]

नहीं चाहिए मुझे हवेली

नहीं चाहिए मुझे हवेली,
नहीं चाहिए मुझे इमारत,

नही चाहिए मुझको मेरी।
अपनी सेवाओ की कीमत,
नही चाहिए मुझे दुश्मनी
करन कहने की बातो की
नही चाहिए वह आईना
बिगाड दे जो सूरत मेरी
वडो-वडो के इस समाज म
शिरा-शिरा कम्पित होती है
अहकार है मुझको भी तो
मेरे भी गौरव की भेरी
यदि न बजे इन राजपथो पर
तो क्या होगा !! मैं न मरूँगा
कन्धे पर पानी की काँवड
बा यह भार अपार सहूँगा !!
मेरे आवे मे कण्डो की गोल पाँत यह धधक रही है
उसम रक्खे लोहे का यह वर्तुल भी तो लाल हो चुका
यह अनुभव-विवेक का लोहा
जलते-जलते
दिल की लकडी के चक्के पर चढता जाता
(जी हाँ दिल लकडी है !!)
बुद्धि, प्राण आत्मा नाम के तीन व्यक्ति य
ठोक रहे हैं तीन ओर स
गोल लौह पट्टिका फँसान उस चक्के पर
ज्वलत लौहपट्टिका पहनता जाता वह चक्का अजीब है
बडी मुसीबत है कि मुसीबत म से मजिल अनकरीब है
मुश्किल यह भी है कि साँवली धूमल मैली सूरत होती
जिसे देख भद्रता समझती भूत और वह
तुरत भागती !!
और, भद्रता के हाथो मे तुला-दण्ड है
और हवेली के हाथो मे मान-मूल्य है
और इमारत के हाथो मे चित्र छापना
और भद्रता के आँगन मे हमे बदा है
लिये बाल बच्चे कन्धे पर, सिर्फ काँपना
अथवा निज औघड बोली म बात प्रकटकर
असभ्य कहलाना !!

यही दु ख है,
सेवाओ की क़ीमत किनसे लूँ मैं
उनसे नही कि जिनकी मैंने सेवा की है
अरे, मूल्य देने लायक वे कभी नही थे।

उनसे यदि कीमत लूँ जिनका एक कार्य यह
मात्र मान्यता देना, मूल्य चुकाना बड़ी कृपा कर !!
उनसे कुछ लेने की बिलकुल नहीं तबीयत
क्योंकि उन्होंने सेवा करनेवाले के वे आँसू
कभी नहीं देखे थे,
जो सेवा करने के पहले भर आते हैं।
जबकि हृदय यों पिघल-पिघल जाता है जैसे व्यर्थ हो गयी
पूरी हाय, जिन्दगी यदि न हुआ कुछ अपने हाथों !!

[सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। अप्रकाशित]

घर की तुलसी

घर की तुलसी मुझसे इतनी दूर
ज्यों मरु-क्षेत्रों से नदियों का पूर

पड़ी पटरियाँ हैं लोहे की दीर्घ
चल उन पर है पूर्व-नियन्त्रित दिक्
दौड़ रहा है पूर्व-नियन्त्रित काल
लोहे के चक्रों की गहरी चाल
मन की गहरी प्रतिक्रिया-उद्वेग
भाग रहा है सफल कीर्ति का जोर
दौड़ रहा है भाफ धुएँ का शोर
पूर्व-नियन्त्रित आकांक्षा का वेग
बाह्य-नियन्त्रित लौह-मार्ग-निश्चय
निर्वासित अजनबी देश में हूँ
मैं घनिष्ठ प्रिय शब्द धातु प्रत्यय,
यहाँ भिन्न व्याकरण नियम का ज़ोर
भिन्न समासी सन्धि वेश में हूँ

किसी शिकंजे में जकड़ा यह मर्म
कड़ी किसी वर्दी में जकड़ा मन
कभी-कभी तो पुकार उठता है
यह परधर्म-भयावह-ग्रस्त स्वधर्म

दूर देश में मैं निर्वासित हूँ
किसी विदेशी दण्ड-विधानाबद्ध

कॉंटेदार अहातो के उस पार
भाग-भाग जाता है मन सन्नद्ध

चेहरे पर अरूप कुहरे का मेघ
जहाँ खडी कि यो गिरती रहती हैं
दुहरी छायाएँ निजता की एक
गुप्त सघन-छाया-व्यक्तित्व विमन
हाय हो गया दुहरा-तिहरा मन

जो कुछ हूँ—निगूढ सपनो का अर्थ
सपनो के अर्थो की वैचनी
अन्त स्पर्शों की लाक्षणिक कहानी यह
मुझे स्वय न समझ मे आती है
असली अर्थ समझना मुश्किल है !!

सात समुन्दर पार लहरती आती है
घर की तुलसी की अकुलाती गन्ध
गृह-पथ पाना कितना मुश्किल है
हाय, विदेशी पठार-तट-सम्बन्ध

मधु-आम्र मजरित कूएँ के तट का वासी
वह पारिजात वन मोहक कुसुम-गन्ध-श्वासी
यदि उगें यहाँ मेरे रगिस्तानो म
मेरे प्राणो के स्वदेश की बातें हो !

पर हाय विदेशो के वृक्षो स नही हुआ
जब गहरा सामजस्य हृदय का प्राणो का
तो उन वृक्षो के व्यक्तित्वो का दोप नही
मुझको मुझसे ही कभी रहा सन्तोप नही

यह असन्तोष की वह्नि स्वार्थ के परे रही,
वह धूम्रकशिनी दीप्तनेत्र आलोचन-धी
मुझको भटकाती चली समुद्र पठारो पर
ध्रुवतारा नक्षत्रो के ऊँचे द्वारो पर।
पर, वह्नि हाय, घर-द्वार स्वय के फूँक गयी
मुझम विज्ञान-ज्ञान की आँखें चूक गयी।
पर, तुरत, शीघ्र ही अगले क्षण, अगले पथ पर,
वह ज्वलन्त-मस्तका वह्नि प्रकाशवती होकर
वह भूमिवती आकाशवती होकर
वह अर्थमती कह गयी मुझे इतना जरूर

घर की तुलसी तुमसे इतनी दूर
रेगिस्तानों से ज्यों नदियों का पूर

ओ आत्म-सम्भवे
अव्याख्याते, अपरिभाषणीये,
तुम नहीं प्रियतमा
देवि न तुम, तुम न हो पिता-माता,
ओ स्वतःसिद्ध अगार
अनन्याश्रयी तेज
ओ विशिष्टानुभूति के विशुद्धात्मक स्व-भाव
मैं यद्यपि अनात्माश्रयी,
तुम्हारा हूँ प्रभाव
बेचैनी की गहरी उलझी मस्तक-रेखा
ने उत्तर भी तो प्रश्नों में बिम्बित देखा
पर प्रश्नों में बिम्बित को अलग-सलग करने
औ' मूर्त रूप देकर प्रस्तुत सम्मुख करने
की महाभयानक शुद्ध अग्नि-प्रक्रिया-वीथि
में मैं कुछ-कुछ मैं गुज़रा अपनी रीति
तो देखा यह भीषण दीक्षा पूरी न हुई
तो पाया सर्वेक्षण ईक्षा पूरी न हुई
फिर चला अधूरा युद्ध बाह्य से अन्तर से।
चल रहा अभी भी वही, सनातन-भवनीये
ओ, आत्मसम्भवे अव्याख्याते अपरिभाषणीये
फिर भी बाहर अस्तित्वों की चट्टानों से
छीने हीरे-सोना-लोहा,
ऐसे कार्यों पर मन भी तो लोभा मोहा
पर विपथों की विदिशाओं से उस उचित दिशा
में पाता रहा नितान्त अँधेरी काल-भैरवी घोर निशा
एकान्त अँधेरा दुर्गम पथ
उस ठीक दिशा का सहयोगी वह मार्ग सतत
उस पथ-सा मैं तकलीफभरा
खाई-खड्डों-टीलों-चट्टानों पर चलता
उस ज़िद्दी पगडण्डी-सा मैं टूटा-बिखरा
हूँ यदपि अदेखा अनजाना अन-पहचाना—
पर उचित दिशा के अन्धकार के विवरों में
मैं काल-विहग परीक्षा के निज प्रहरों में
भी रहा खोज अपने स्वदेश का कोना निज
उस घने अँधेरे के निर्मम सरोवर में
पंखुरियाँ खोलता लाल-लाल अग्निम सरसिज
यह भव्य कल्पना रूपायित

जब हुई कि मन मे अकस्मात
इनकारभरी वह असन्तोष की वह्नि
कह गयी थी ज़रूर
घर की तुलसी तुमसे इतनी दूर
रेगिस्तानो से ज्यो नदियो का पूर

मैं निज से कहने लगा रहस्यात्मक न बन
न बन प्रतीकात्मक, उपमात्मक जहाँ विमन
अनबन अपने से बाहर से।
रे यह स्वदेश की खोज वस्तुत अन्तर के
आकर्षण की ही सगति सामजस्याकुल
यह आत्मधर्म यह आत्मकार्य
तू इसकी अपनी आज्ञाएँ कर शिरोधार्य
न बन प्रतीकात्मक रहस्य-भावानुभूति
बन चल मानव-पथ-विषयो की
चित्रात्मक गहन समीक्षा-सी
हो जा समीक्षिता मानव-वीथी का अनुभव
तू आत्मधर्म मे विश्व-धर्म के सब सम्भव
मार्गों व पुलो पर जा रुक जा
उस पुल पर से सब विश्व दृश्य-विस्तार निरख
उनके रग-रूप मे अपना रूप परख
ये बडे-बडे हैं भाव, न पर इनसे घबरा
अनायास है सहज-बोध विद्या अपरा
तू आस-पास ही खोज विवेकी
जन-जीवन-अन्न.स्फुरणो की किरणो मे
इस चिन्तन के प्रति मुसकाकर
वह असन्तोष की वह्नि व्यग्य से हाय
कह गयी यह ज़रूर
घर की तुलसी तुमसे इतनी दूर
रेगिस्तानो से ज्यो नदियो का पूर !!

वह धीर वह्नि-स्फुरणा मुझसे यह कहती थी
पद-पद पर पल-पल मे जो बिम्ब दीखते हैं
निज-भाव-प्रेरणा के शत चन्द्र दीखते हैं
उनमे खिल जा !।
अपने पल मे तू घुल-मिल जा
भली-बुरी
पल की गतियो मे निर्मल बन
निज के जीवन-विस्तारो मे तू परिमल बन

मिट्टी-सा पत्थर-सा सब मिट्टी-पत्थर बन
मधुमय गुलाब-जैसा-सा तू भी सुन्दर बन ।

[सम्भावित रचनाकाल 1957 । नागपुर । असंकलित]

काँप उठता दिल

काँप उठता दिल अरे, जिस बात से
वह दुराव बनकर छा गयी,
दुख, निराशा, शाप, विरह-सी वेदना
तलवार बनकर आ गयी !
दिल हुआ तलवार का ही पोगटा
दिल-सलाई बुद्धि का माथा फटा !!

आशा भविष्यत् की उन्हें जिस बात से
वह सुरक्षित धर्मशाला बनी रहे
वे कहीं आविष्ट गद्दार बुद्धि के
वे पैर मोटे थे नहीं हमको मिले !!
आदर्शवादी इसलिए उनकी जयकार ।
नाम से हम हीन हम हैं नामवार ।

हम निराशा के जहर के धूम हैं
हम अभद्र अनिष्ट विद्रोही कुजन
फ़ैशनेबल बुद्धि की इन कुर्सियों
पर बैठ ही सकती नहीं करुणा प्रमत्त
यह दया-माया बहिष्कृत है यहाँ
इस रेस्तराँ का नाम मानवता हुआ !!

भार हलका कर सकें इसके लिए
अब जहर की आग का काला धुआँ
निकलता है हृदय से, मेरी ज़बान
जब निवेदन कर रही अपना कहा
बोलते हैं वे जहर यह बेवकूफ़ी है
संघर्षवादी सत्य यह आदत-स्वरूपी है !!

भव्य सुविधा के पलंगों पर यहाँ

सघर्ष वे करते रहे हैं आज तक
सास्कृतिक सवेदना की गोद मे
उत्कर्ष वे करते रहे हैं आज तक
वढ रही जितनी बखूबी वेदनाएँ हैं
उतनी तरक्की नाम दायें और बायें हैं।
पर हमारी वेदनाएँ खूब अडियल है
हमे खड्डे मे गिराती ही गयी
ये हमारी प्रेरणाएँ खूब पागल है ! !

देह-मन सब तोड खाली हो गयी ! !
ईमान धक्का दे हम सरका गया
जिन्दगी का अस्थि-पजर खा गया।

ईमान के सवेद्य पथ पर हम बढे
चाबुक हमे उतने पडे
और जब चिल्ला उठे हम चीखकर
उतन नसीहत केंकडे
हमका जबर्दस्ती खिलाये ही गये दुर्धर
जिन्दगी का खूब है गहरा चक्कर !

[सम्भवत अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957। नागपुर। अप्रकाशित]

ओ मेघ !

ओ मेघ,
पुराने हो पर बार-बार आते हो
पुन -पुन लौटते स्वप्न के गहन सत्य से •
इसीलिए
तुम नये-नये लगते हो।

बरस-बरसकर
धरती रसा बनाकर
अशेष होकर
[illegible]

विलीन होकर
जन्म ग्रहण करने का तुमको एक नशा है
इसलिए कि
श्रेयस् की प्रेरणा गहन है आत्मवशा है
ओ प्रपितामह के प्रपितामह
नवल रूप धर
तुम श्रेयस् की उत्तेजना-प्रेरणा-श्री हो
मन में घुलती हुई पवित्र के प्रतीक भी हो
बार-बार आते हो
नये-नये तुम कहलाते हो।

[सम्भवत अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957। अप्रकाशित]

ज़माने का चेहरा

ज़माने का चेहरा फक—
एकाएक
उसके शीश गया बैठ
        गया जम
स्याह काला कौवा एक।
एकदम,
कहीं दूर क्षितिज पर विश्व-ध्वंस-धड़ाका।
मृत्यु के निश्चय का काक ऐंठ
गर्दन
        घुमाता हुआ
            नेत्र
                फिराता हुआ
देखता रहा चारों ओर
        देखता रहा दिशाओं में विद्रूप छायाकार
अजीब उतरते हुए पैराशूट-पैराट्रूप
क्षितिज के चेहरे पर उभरा काला भाव एक
…आँखों में उभरी है स्टेनगन
आसमानी बिजली का पीला प्रचण्ड
                हाथ
बढ़ गया, बढ़ गया
धरती की गरदन को

मुट्ठी में भींचने,
जहरीली घनघोर लपटों की छाती पर—
मृत्यु की गोद में
पृथ्वी को खींचने ! !
जमाने के रुख पर
क्षितिज के मुख पर
नीला थोथा पोत गयी
एकाएक भयंकर
दमक किसी स्फोट की,
घों-घों करते बमबाज़ यान में से—
हवा में से—
चोट की है किसी ने ! !
नीले लाल पीले तड़ित्—
अग्नि-खण्ड जामुनी
अन्तरिक्ष-पवन में तैरकर
जंगलों में उतरते व
जलते हैं गाँव सौ

जमाने का चेहरा फक,
कानों को सुनायी दी
हृदय की धकधक ! !

दिमाग की तनी हुई रग मानो कट गयी,
और कहीं जुड़ गयी,
और कहीं लग गयी,
और कहीं सट गयी,
सरिताएँ हट गयीं निज पथ छोड़कर
पैरिस की सीन और
हंगरी की डैन्यूब
ज़हरीले काल मृत्यु-सागर में डूब गयीं,
पहाड़ों की बालिकाएँ
जिन्दगी से ऊब गयीं।
यूरोपीय जनता के ललाटों को फोड़कर
आधी धरा कब्ज़े में ठूँसकर
पंजे में मोड़कर
बढ़ी अप्रतिहत
धड़धड़ाती टैंकदल-प्रदीर्घ बमबाज़ सेनाएँ।
नात्सी के घनघोर धूमकेतु, उल्काएँ
लाख-लाख एक साथ
पड़ते थे टूट-टूट,

सूरज की किरनों में चमकती थी
दमकती थी
खून-रँगी रंगीन
नगरों में गाँवों में नात्सी की संगीन।
शहरों व गाँवों के खँडहरों में विकराल
पश्चिमी यूरोपीय श्मशान की भूमि में
घूमते थे नपुंसक भीति के काले व्याल ! !
नात्सी की शक्ति का प्रचण्ड वृक्ष एक
हर गाँव-शहर में खड़ा था
मानो कि तने हुए लोहे का
अड़ा था, अकड़ा हुआ वृक्ष एक।
दूर, उधर—
अनदेखे अनजाने किसी ओर खड़े हुए
संस्कृति-शान्ति के जल गये काले-स्याह ठूँठ की
(युद्धरत जीवन के सवालों-सी फैली हुई विकराल)
शाखा-प्रशाखाओं के अन्तराल
में से मुसकराता हुआ
झाँकता था—
मृत्यु की सरदी का बर्फीला चाँद एक,
लन्दन के बैंकर शिकागो के पूँजीपति,
सारे कारखानेदार
आदि की चमचमाती चाँद सा गंजा था
मृत्यु के राक्षसी व्यंग्य का चाँद वह भयानक।
नात्सी की वारदात
ब्रिटेन की शरारत
फ्रांस की गद्दारी, अमरीकी पूँजी की हरारत
धरती को नकब लगाती हुई
सबक पढ़ाती थी
शान्ति के शुभ्र शशि-शरीर से बलात्कार
करने की विधि का।
चिलक रही थीं नसें
पृथ्वी के पैरों की,
चिटख रही थीं घोर
जमाने की हड्डियाँ
जनता के चेहरे पर
नात्सी के मशीनी दाँत गड़ गये थे
संस्कृति के मुख पर
रुधिर की धाराओं का
गिर गया परदा ! !
मुँह-फटे प्रेतों-से आबाद बियाबान जंगलों के दरबार

पेडो के वक्ष मे
जन-सहारो की कथा अडी हुई थी ! !
डरपोक दरिन्दो-सी
शोषण की सरकारें भाग खडी हुई थी
जनता को अकेले लडते हुए छोडकर !!
सागर से होडकर
हवा की स्पर्धा में,
यूरोपीय सरकारो की कमर को तोडकर
—उनकी तो जल रही थी रीढ की भी हड्डी—
बर्लिन के टैंकबाज़,
बर्लिन के बमबाज
मौत की सुहागरात गीतो को गाते हुए,
क्षितिज गुंजाते हुए
स्तालिनग्राद पहुँचते थे।

आधी रात,
अँधियारा क्षितिज धधकता था—
सन्ध्या के लाल-लाल उमडते मेघ ज्यो
ऊँची-ऊँची लपटो के महल धधकते हो।
अँधियारे आसमान-तले, अरे,
गेरुआ घमासान मचा था।
भभकती दिशाओ का आकाश
मानो कि टूटकर
शत-शत खण्डो मे जल रहा भूमि पर
शैलो के नभचुम्बी शीश
मानो टूटकर
पहाडो के कन्धे या फूटकर
धडाम-धडाम मानो गिरते हों तल मे
मञ्जिलें गिरती थी भवन इमारतें।
चौमजली वही एक दीवार खडी थी सिर्फ।
कटे-पिटे कमरो का फूटा हाल
दीखता था दूर मे
मटमैला अन्तराल कटे हुए वक्षो का
किसी भव्य भवन का कोप-जाल
गाडर-ईंट-पत्थर का ढेर है।
धुआँते खँडहरो मे
दबे हुए बच्चो की
गर्भिणी माता की
वृद्धो की
रुँधी हुई ज़िन्दगी की चीख

गरम हवा के झोंको में
ज्वाला की फूँक-सी
यों फुफकारती
कि बची हुई ताकत से वीर जन
करते थे संग्राम,
लड़ता था हर घर
लड़ते थे पत्थर
जूझती हरेक ईंट
घूमती थी, गूँजती थी।
खड़ा था अविजेय स्तालिनग्राद,
विचित्र विकराल ज्वालाओं के गिरि-सा
र्बालन की मोर्टार
र्बालन का टैंकदल
दहाड़ते अग्नि-गोल शब्दों-से
करता था जहरीला जाज्वल्य
बहस-मुबाहिसा
शहर की हवाओं में चारों ओर जवाबी
धधकते पंखों की ज्वाल रही उड़ती
दमकते उत्तर तड़ाक् से गूँजते।।
नात्सी की बमबाज़ चीलों के घुमड़ते व्यूह थे।।
... ''बरसात आग की
धड़ाकों की बारिशें!
बमों की चिंघाड़।।
शहर के भीतरी उजाड़ निगड्डों पर
नाकों पर, पथों पर
नात्सी की मोर्टार
नात्सी की स्टेनगन
नात्सी का तोपदल—नात्सी का अधिकार।
खँडहरों के ढेरों के नीचे दब
बन गये तलघर
उसमें बैठ मॉस्को के सेनाध्यक्ष
उसमें बैठ कमाण्डर
चलाते थे लड़ाई का काम-काज
बोलते थे टेलीफोन,
छूटते थे आदेश,
बनते व टूटते थे मोर्चे,
बार-बार कट जाते टेलीफोन तार और
तार-तार
फिर-फिर
जोड़ने के लिए जब

गोलियों की बारिश मे निकलते नौजवान
चटाक से एक गया
तड़ाक से गया अन्य
आया फिर तीसरा व तार जोड़
छुप-छुप
चुप-चुप
वापिस जब जाता था कि
ललाट समाप्त था।
खँडेरों मे निकलते थे अखबार
फौजी वर्दी पहन हुए एडीटर
फौजी वर्दी पहने हुए रिपोर्टर
हतों के, आहतों के, स्थानों के मोर्चों के समाचार
छापते थे लगातार
खँडेरों के नीचे दब
ज़िन्दा था स्तालिनग्राद,
ज़िन्दा था पत्थर और
ज़िन्दा थी दीवार।।
लन्दन का मजदूर, फ्रांसीसी गुरिल्ला युवजन,
घूर-घूर वाशिंगटन
देखता था स्तालिनग्राद युद्ध की ज्वालाओं की कलगी।।
शहर की शिलाओं म विस्फोट
बर्लिन के टैंकों के शिखर पर ठीक-ठीक सही चोट
आसमानी गिद्धों का चक्रव्यूह
तड़तड़ाती चोटों से बिखरता टूटता
भयानक ज्वालाओं मे लिपटा हुआ लुढ़ककर
उलट-पुलट
लड़खड़ाता गिरता था अटपट
स्तालिन के गोलन्दाज़
मॉस्को के बमबाज़
वोल्गा के टैंकदल
हटते थे पीछे न,
टूटती थी पाँतें व
बन जाती नयी थी।।
शत्रु की पाँतों की कमजोरी ज़ोरी का अध्ययन
दरारों का अन्वेषण
चलता था लगातार
बलिदानी विधि से।।
स्तालिनग्राद नगर की फौजों के हिय में
वीरों की आत्मा में
युवकों के जिये मे

भक्ति के सूरज के अणुओं का विस्फोट
प्रचण्ड प्रकाशमान
होता था प्रतिपल ! !
मृत्यु की अग्नि-खण्ड-वर्षा के शोर में
जीवन की अग्नि का भीतरी ज़ोर था ! !
देह-दानी योद्धा के हृदय में बहती थी
महानदी श्रद्धाएँ बोल्गाएँ विस्तीर्ण,
सोवियत युवकों के हृदय में खड़ा था
—पहाड़-सा अड़ा था—
बलिदानी आवेश
निःसीम मैदानों आकाशों निर्माणोंभरा देश
हिये में चमकता था।
सूरज की भीतरी अग्नियों के ज्वार-सा
ज़िन्दगी का मानवीय अजीब उभार था।
पश्चिमी यूरोप के देशों में किन्तु, हाय,
नात्सी की वारदात
चन्द्र को लोहे के पंजे में खींचकर
बर्लिन के चौक में
प्रदीप के रूप में
टाँगने को रहती थी अकुलाती दिन-रात ! !
पराजित यूरोप के भाग में
सरदी के जंगलों का कुहरीला अन्धकार
ज़िन्दगी में मृत्यु की पीड़ा-सा भयानक
सुनसान गुंजान खड़ा था निराकार
बर्फ़ीले गुमसुम मैदानों के सुनसान
झरनों के तटों पर
तरुओं की हिम-स्नात
डालों पर झूलते
फाँसी के फन्दों में झूलते थे गुरिल्ला युवजन।
शहीदों की छाया में
मानवता चुपचाप
लड़ती थी जूझती थी। रक्त-स्नात
सूरज निकलता था, फैलाता खून था,
डूबता था खून में।
मृत्यु की बावड़ी में लाशों के ढेर पर
बियावान-गिद्धों की आँखों के तीर
गड़े खड़े थे।
नात्सी ने निर्दोष जनों के खात्मे के लिए अब
ज़िन्दा-भून-मार
कारखाने खोल रखे थे।

चरणो के चलने का विस्फोट,
चिमूर मे, आष्टी मे नारियो से अगरेज
फिरगी फौजियो का बलात्कार
गाधी थे गिरफ्तार
फिरगी फौजो की टोलियो की
गोलियो की बौछार !!
मैदानी पवन मे कांपते थे सुबह से
खून-सनी ज़िबह से
सम्भावी भारतीय
विभाजन-समाचार !!
खुले जन-पथ पर
रखा हुआ ब्लैकबोर्ड
खीचता था युद्ध के नये मोड,
लिखती थी, खबरें
हमारी उँगलियो मे फँसी हुई खडिया,
बहुत कट्ठी हो गयी पैरो म बेडियाँ,
हाथो मे पडी हथकडियाँ।
बहुत तग होता था हम अब जमाना !!
लुटाते थे हम लोग—
हृदय के स्वप्नो के खून-रँगे खयालो का खज़ाना !!
लिखता था ब्लैकबोर्ड
युद्ध के नये मोड !!
अधियारी तारोभरी रात मे
आसमान नीचे ही
समाचार-फलक पर टाँगा था लालटैन !!
इकट्ठा थे ग्रामीण,
उदास हम गमगीन।
स्तालिनग्राद युद्ध की ज्वालाओ की रोशनी
चेहरो पर हमारे अजीब उदास और गम्भीर अनमनी फैल गयी !!
छटपटाती, वक्ष मे इतिहास-गंगा की सिहरन,
डूबे थे वेदना की लहरो मे
लक्ष्यो के तारागण !!
आंखो मे छाये थे गोलियों से हताहत
हमारे भाइयो के फटे हुए चेहरे व
हाय !! हाय !!—निकलती थी दिल से कि
गले मे आँसुओ की फांस थी—
मृत्यु आस-पास थी।
जगलो मे छिपे हुए यूरोपीय गुरिल्ला युवजन
पीर बन गये थे !!
डैन्यूब वोल्गा पर छाये हुए

मेघों की तड़पन
भारतीय आत्मा में दमकती प्रतिक्षण !!
लिखता था ब्लैकबोर्ड
युद्ध के नये मोड़ !!

देहाती बच्चों का जमघट
एकटक देखता था,
पढ़ता था अटपट
खड़िये की लकीरों में युद्ध का विराट !!
खून-रँगे, भारत के माथे पर बल थे,
चिन्ता की मटमैली बाढ़ में
डूबे हुए जीवन-कमल थे !!

और···फिर···एक दिन
क्रेमलिन-मीनार से
पुकार उठी थी एक,
वेदना के मर्म से
जीवन की गम्भीर
गुहार उठी थी एक !!
खड़िये से लिख दिया
मैंने वह समाचार
किन्तु वह खबर थी पुरानी।
शब्दों की रोशनी
प्रकाश हृदय का
जीवन का सत्य वह
पूरा था भारतीय
पूरा था हमारा !
मैंने कहा—घर जा
क्रेमलिन-मीनार की
गुहार का सत्य मैं
भारतीय आँखों से देखकर
भारतीय रगों में घोलकर
एक विश्व-दृश्य में परिणत
करने के लिए अब चल पड़ूँ !!
घर आया,
हृदय जब भर आया एकाएक
सामने थी निर्मला !!
पड़ौसिन निर्मला
अकेले में अकुलायी
घबरायी हुई वह

पूछने ही वाली थी कि बोला मैं
जरूर, 'वे' वापिस चले आवेंगे,
मेरा मन कहता है, मेरी आत्मा कहती है,
मेरा दिल देता है गवाही इस बात की।
धीरज पा, जैसी आयी
वैसी चली गयी वह !!
अकुलाया किन्तु मैं,
बहुत रोया किन्तु मैं—
भारतीय गरीबी के हृदय का तन्तु मैं !!
हाय ! हाय ! बहना !
झूठे आश्वासनो पर ज़िन्दा न रह,
गुलाम है आज की भारतीय फौज भी
लौटे न लौटे, अरे प्राण-प्रिय मित्र वह तेरा पति !!
और इसी तैश मे
अश्रु विशेष मे,
लिखने मैं लगा युद्ध-भूमि के विस्तार !!
डूब गयी वोल्गा के वृक्षों की शाखाएँ
कदम्ब की डालें बनी, डूब गयी
मेरे इस हृदय के रुधिर तालाब मे !!
और मैं लिखने लगा ·····
·· ·· लिखने लगा !!
दमकता था सूर्य एक
ज्योतिर्मय ललाट चमकता विश्व भर
सकट मे पडी ज़िन्दगी का मसीहा
ब्रिटेन मे फ्रास मे
भारत मे रूस मे
हृदय के सर्वोच्च
शिखर पर खडा था
धरित्री के हृदय मे पैठे हुए रवि के
प्राणो मे पैठी हुई मानवीय छवि थी
मानव की तेजोमयि
वाणी थी गूँज गयी !!
धरती के लाल-लाल सुहाग की आग के
सिन्दूरी बिन्दु सा लाल-लाल रवि ज्यो—
युद्धमान जनता के हृदय मे उगा त्यो
मानव का मुख एक—
स्वय की प्रतिभा का
स्वय की श्री का।
मेघो की घन-नील
घटाओं की गम्भीर

तडिन्मयी ध्वनियों के भीतर
ममता के निर्झर
झरनों की गर्जना में सृजन की ललकार
वन-तरु-मंजरि-पत्रों की मर्मर
ठण्डी-ठण्डी हवाओं की,
अपनी बात कहती हुई
लहराती सर-सर,
सृष्टि की झनकार
मेघों की वाणी में मानो कि गूँज जायें
धीर विश्व-जनता के समस्त अभिप्राय
प्रकट हुए थे तब—
पीछे न हटो तुम
अरे, एक कदम भी
वोल्गा के सैनिक ओ,
भाइयो,
भडकती अग्नि से फैलो और डटो तुम
माँओं की, बच्चों की, पिताओं की आत्माएँ
देखती हैं, देती ही रहती हैं दुआएँ
हटो न पीछे तुम
अरे, एक कदम भी।
एक-एक शब्द विश्व-ज्योति-सा बनकर
निज-पथ-चित्र-सा बनकर
हमारे चारों ओर
वोल्गा के सैनिक के चारों ओर
प्राण-प्रिय मित्र सा बनकर
आलिंगन-भुजाओं का
कसा हुआ घेरा वह बन गया
चढ़ते हुए अरे, गिरि-शृंग पर
अपने ही अकुलाते हाथ में
एक अग्नि-मानव का हाथ
मानो ऊपर से आ गया, आ गया
उसकी ही आवाज़
पवन में लहरा
मेघों में गूँजकर
तड़ित् में चमक
अमृत के झरनों-सी फूट पड़ी उर में
भीतरी प्रेरणा के स्नेहाश्रु स्वर में
निष्ठाएँ गाने लगीं
गीली-गीली चमकती आँखों से श्रद्धाएँ
देखी थी स्वप्न और

हृदय अछोर हुआ जाता था प्रतिपल
हृदय मे कर्पूर-शीतलता सुरभित।
मेघो की घटाओ मे दीख पडी आकृति
एक मानवाकार
जिसके सुनील उन गम्भीर नेत्रो मे
दीख पडी
पिताओ की माँओ की नेह-द्युति
स्तालिनग्राद नगर के सैनिको की आँखो मे
घूम गये घूम गये
गाँवो के चमकते धूप तपे मैदान
अजस्र मित्रो से घने हरे-भरे वृक्ष
कर्मश्लथ माँओ के चेहरो की
नहभरी रेखाएँ
धूप-तपे पिताओ के
भव्य ललाटो का गम्भीर रेखा-जाल
आँसूभरे नेह के मधोभरी छाती का
मँडराता आशीर्वाद
जगल-पगडण्डियाँ,
क्षितिज के आर पार
हरे-भरे खेतो के साँवने विस्तार
नदियो की बकिम रेखाओ की चितवन
सुकुमार प्रियतमा नताशा के नैनो की
मुसकाती छवियाँ
नन्हे-नन्हे ऐल्योशा के गालो की ललाई
गेहूँ की खिलखिलाती बालो का
सुनहला समुन्दर
शक्तिशाली भीमकाय
फैक्टरी की चिमनियो का
इठलाता हुआ घना
गरबीला धुआँ और
घास-भरे मैदानो के पठारो के सुविशाल
क्षितिज कि
खिले हुए नीले-नीले सन्तोष
क्षितिज स्वदेश के
हर-एक जुझार ने यो किया अनुभव
हरेक को लगा यह
स्वय के भीतर ही निज से महान
कोई शक्ति है बैठी हुई
हृदय म गूँजती है अपनी ही शक्ति की वेदना
नयी ही चेतना ।।

उसी की आवाज
भीतर से उठती हुई
बोल्गा के सैनिक ने सुनी थी
अफ्रीकी जगलो मे
नीग्रो ने सुनी वह
मलाया के जगल के योद्धा ने सुनी थी
मालवे मे बैठे हुए
मैंने भी सुना उसे ।

स्तालिनग्राद जीतकर
जन-मुक्ति सेनाएँ आगे बढ गयी जब
सोचा तब—
आधी दुनिया उसी नव-स्वर ने फतह की
बाकी दुनिया जन मुक्ति-सेनाओ ने सर की
नात्सी की ब्लिट्जक्रीग
खखार-खखार आग
थूक-थूक झीक-झीक
झखमार-झखमार पीछे हटी चीख-चीख ।

जनता का लौह-दण्ड
नात्सी का ब्रह्माण्ड फोडकर
उल्का-दल-वेग से
हवाओ मे घूमकर
मानवीय दिशाओ को चूमकर
अँधेरे की पार्वत्य नदियो पर
किरणो के पुल-सा
गगन मे छा गया,
जिन्दगी ने मानो कि
दिल की दमक्ती तेग
आकाश की शाल्मलि
शाखाओ पर धर दी
कि जिसके प्रकाश मे
सशक्त उभार—
नया वक्त
उठा है एक
यूरोपीय राख और
एशियायी खाक से
जनता की शक्ति का दरख्त उठा है एक
उसकी घनी कालव्यापी छायाओ मे बैठकर
वक्र-स्मित मुद्रा मे तेजस्वी तल्लीन

भव्य-भाल द्रष्टा के गम्भीर विवेक-सा
मानवीय मुक्ति का देव एक
वर्तमान-भविष्य के दृश्य रहा आँकता
कि किस प्रकार
मेघभरे क्षितिज पर तड़ित्-से चमकते हैं, भागते हैं, लड़ते हैं
जीवन के अश्वारोही
रास सँभाले हुए।
दूर'''उधर समय-पहाड़ पर
क्षितिज दहाड़ा और
जनता के हाथों ने यों मौत को पछाड़ा है कि
दुनिया उलट गयी,
ज़िन्दगी पलट गयी।
गगन में सुनहले कमल की पाँखों में
सूरज की आँखों में
मुक्ति-सभ्यता-शिखर चमकते हैं
नगर दमकते हैं।
प्रशान्त महासिन्धु अतलान्त हिन्द महासागर
हुए हैं एक
मानो किसी भव्य मुहूर्त में अनायास
चार महाद्वीपों में बसे हुए भाई चार
आ गये हों भारत में वृद्ध पिता के पास
सरिता के लहराते सगम-सा प्राणों में आलिंगन
चन्द्र की कनी-जैसी चमकती है
नैनों में प्राणों में आनन्द-शबनम
पैरिस की सड़कों पर
प्राग के पथों पर
मैत्री की बाँहें खोले आँसू-डूबा उल्लास !!
घर-घर में माँ के पास
घर-घर पिता के पास
मिलन के आँसुओं का अनन्त अभिषेक
विश्व हुआ है एक !!
हज़ारों भाइयों की स्मृतियाँ सँजोये हुए
लौटा है सिपाही,
लौटी हैं मनचाही सन्ध्याएँ
करुणा के रक्त स हृदय भिगोये हुए,
लौटी हैं रजनियाँ
वीरों की कथाओं से मुखरित
लौटी है सुबह की ललाई
प्रेरणा की मदिरा में परिणत,
लौटे हैं अग्निमान जीवन-अनुभवों के चित्र ये

प्रचण्ड वह्नियों में
तपे हुए लौटे हैं मित्र ये।
और फिर पृथ्वी के क्षितिज पर
तडिन्नील रेखाओं में मानचित्र
एशियायी मुक्ति के
जगमगाने, झलमलाने लगे थे कि
रंगून-जकार्ता में पेकिंग व दिल्ली में
सुबह की हवाओं के साथ-साथ
प्राणों का राजहंस
किरणों से बातचीत करते हुए
करने लगा गगन का अन्वेषण;
सफ़ेद गुलाब-सी थी मुक्ति की दुपहर
लक्ष-जन-युद्धों की सफलताएँ मनोहर
दुनिया की कष्टमयी
मानवता एक हुई देखकर
साम्राज्यवादियों के साँप और सँपोले
ज़िन्दगी के बागों में सरसराने लगे और
क्षितिज से उठा शोर
छूटी हुई रायफ़लों गोलियों से भागे हुए
पक्षियों के दलों का!
भभकते बादलों के नीचे और बीच में
उड़ते हुए विहगों की गहरी हलचलों का
छाया हुआ प्रतिबिम्ब सरिता के जल में
बतलाता पता नये युद्ध का पल में।

जनता के आल्प्स और हिमालय को मिसमार
करते हुए, छेद करना चाहते
जो धरती की छाती के आर-पार
उन मदोद्धतों के
साम्राज्यवादियों के बदशक्ल चेहरे
एटमिक धुएँ के बादलों-से गहरे
क्षितिज पर छाये हैं,
जापान को ध्वस्त कर
ईरान को मारकर
ईजिप्ट के खात्मे के लिए हैं उतावले
अरब के खात्मे के लिए हैं बावले।।
नये जन-राष्ट्रों को करने के लिए छार
मानवीय नाश के दानवी सुयोग की
तलाश में दिन-रात पगलाये हुए हैं।।
धरित्री को

समझते वे घर ही का छकड़ा
मानवीय चाँद को
मुन्सिपल कन्दील बनाने के लिए वे
एटमिक शक्ति का प्रयोग है कर रहे !

हान नदी के तीर युद्धोन्मादियो ने पहली हार खायी
दरियाएखून मे वे खुद बह गये थे।
कोरिया के महाभारत-युद्ध मे काम आये
बालको के वीर प्राण
पुरुषो के दिल और
नारियो की आत्माएँ
अनगिन सुकुमार विहग-यूथ बन
गगा के तीर पर क्षिप्रा के तट पर
जल पीती रहती है।
विएतनाम मलाया की खाक मे मिली हुई
मासूम आत्माएँ आकर्षक चेहरे
भारतीय धरती पर अकस्मात् प्रकट हुए
गुलाब-चमेली जुही-सिवन्ती के रूप म।
भारतीय हृदयो की बेले चढ गयी है
विएतनामी कुटिया पर, कोरिया के घरो पर
सुदूर सीरियायी मैदानो म भारतीय
वन-तुलसी उगी है
नील नदी की शाम
भारतीय आँगन की दीवालो को रँग गयी !!
समय के शैल पर
खडी है भव्य एक महामूर्त्ति
जनता के हृदय की, बुद्धि की
अनुभवो-लक्ष्यो की स्फूर्ति की
कि उस महामूर्त्ति के विशाल ललाट पर
जीवन विवेक के ये बिम्बित हैं अक शत
कि जिन्हे देख-दखकर
मेरे सब लोग-बाग
गलियो की भीत पर रेखाकित करते है
लडती हुई जिन्दगी के मोर्चों के रास्ते,
अगली पाँत पिछली पाँत
धधकती सचाई को जीने के वास्ते
दुनिया की पीठ पर
भीतर गडाये हुए आठो पैर बैठा है।
विकराल कर्क एक
हवाई एटमिक अड्डो के अमरीकी जाल का

जनता के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के
शिखरों के जालों में एकाएक
कहीं अटक गये
अपनी ही एटमिक अग्नि से
होंगे वे भस्मसात् !!
दुनिया को विश्वयुद्ध-अनल में झोंकने
के लिए इन उतावले
साम्राज्यवादियों की न्याती
जनता के साँवले
हाथों ने बन्दूकें तान दीं
क्षितिज की डाली पर
लालिमा की कलगी के पक्षी ने बाँग दी।
मोरक्को की मरु-भू से
मलाया की हरी-हरी भूमि तक
नये-नये घावों की तैयारी में जोरदार
जन-सेना रुकी है—
नील नदी की मृदु-कपास घाटियों में
साम्राज्यवादियों की सन्ध्याएँ झुकी हैं।

छलछलाकर वक्ष में गले में अटकी हुई
आँखों में चमकी जो प्राणों की कनियाँ
मानव-अनुभवों की महिमामयी मणियाँ
गगन की ज्योतिमयी
जीवन-पथ-दर्शी नयी
तारिकाएँ बनकर
पृथ्वी पर छा गयीं।
मानव-अनुभवों के छलछलाते-चमकते
तारों की छाँव में
दर्द के गाँव में
हृदय का रक्त-कोष
अबुझ पिराता हुआ
कुन्दन-सा तप पूत
क्षितिज पर रहा उग
मुक्ति की पूनों का सुनहला चाँद वह
नये लोक-युग का,
मुक्ति के गौर-वक्ष-अचल से झाँकती है
शान्ति की शशि-श्री।
साम्राज्यवादियों के हृदय की दानवी
उसे नष्ट करने के लिए है उतावली
समय के शैल पर प्रभीम खड़े हुए भीमकाय

जन-मस्तक देखते
ज्योतिर्मय मानवी-
प्रतिभा के ललाट विशाल को
कि भावी यश काल को,
परन्तु वे जानते हैं
फल-पुष्प-भारमय
वृक्षों की हरी-भरी
शाखाओं पर बैठे हैं
वानर व वनबिलाव—
साम्राज्यवादियों का पाशविक ताव वह
भविष्य को बढ़ने ही नहीं देगा जब तक
कि उसका न नाश हो !!
इसी सोच-सोच में
लिखता ही जाता हूँ
कविता की पंक्तियाँ।

गंगा के तट पर
बसे हुए कस्बे के एक ओर
भूरे-भूरे ढूहों में खड़े हुए
भव्याकार बरगद
सिर झुका
देखते हैं तले में—
अखबार पढ़ते हुए, अखबार घेरे हुए एक हाथ
हृदय के दर्द में बिजली-सा कौंधकर
उठा हुआ हमदर्द हाथ वह एकाएक
समुद्रों के पार
और पहाड़ों के शिखरों के पार, दूर
दीर्घ
और प्रदीर्घ
होता ही जाता है !!
भाई की भारतीय भावना का मजबूत हाथ वह
सहारा को पारकर
अरब के द्वार पर
भारतीय आलिंगन लिपटता है हिय-भर
रेगिस्तानी धूप में
चिलकती बालू के बीचोबीच उठे हुए
काले स्याह टीले की पीठ पर
पूँछ उठाये एक
चमकीला श्याम-वर्ण अरब अश्व।
अरब अश्वारोही वीर—

देखता है गगन का घण्टाघर
कि उसमें कितने बजे हैं
कितना समय शेष है कि निर्णायक घड़ी में
कि हो सके प्रत्याघात
अकस्मात्
एक नयी सत्ता के
धक्के में जागकर !
कन्धे पर करता वह अनुभूत
सात समुन्दर पार करते हुए हाथ का
सहलाता उष्ण स्पर्श
भाई की भीगी हुई हमदर्दी का-सा दाह ।
पीठ पीछे खड़ा मानो कोई भव्य
एक छाया-पुरुष···
लहराती गंगा के खुले-खुले कूल का
मुसकाता ऋषि-सा
शास्त्र और शस्त्र का प्रचण्ड विशेषज्ञ
युद्ध का शास्त्री
शस्त्र का योद्धा
शास्त्र का मार्तण्ड !!
विवेक का मनस्वी
हृदय का तपस्वी
अरब अश्वारोही वीर
थोड़े दिन पहले ही
विद्या की खोज में
भटका था नगर-गाँव,
अफलातून-अरस्तू व
पढ़ते हुए सुकरात,
धीर अरब वीर के दृगों में डूबी थी
भारतीय तारों की जगमगाती हुई रात—
सिन्धु-गंग-नद पार
कपिल-कणाद की
ब्रह्मभट्ट-योग-न्याय-गणित की बात थी।
आज उन्हीं क्षेत्रों से भावना की मज़बूत
सप्त-समुद्र पार आयी हुई गूँज सुन
चिलचिलाती बालू के चमकते शून्य में
अरब अश्वारोही वीर
भीतर से उठे हुए अकस्मात्
आँसू के धक्के को गले में समेटकर
धीरे-धीरे नेत्रों में भरता है
सूरज की किरनों में रँगे हुए अश्रु जो

पलकों में छा गये।
समेटता शक्ति वह
विशाल देश-स्वप्न से,
भव्य जन-स्वप्न से।।

और, उसकी लम्बी बाँकी भौहोंवाले
नेत्रों में तैरते हैं,
चिलचिलाते हुए दृश्य—
फ्रांसीसी ज़मींदारी खेतों में उठे हुए
प्यारे-प्यारे नन्हे हाथ किसी अरब कुली के
दीन अरब बालक के असहाय हाथ दो
उस को पुकारते हैं—
अभी-अभी चिलकती संगीन
मेरे बड़े भैया को ले गयी पकड़कर
कहो कोई कहो कोई
मेरी माँ को अभी-अभी पकड़कर ले गया।।
पता नहीं, माँ कहाँ, भाई कहाँ,
पता नहीं क्या हुआ, क्या हुआ।।
क्षितिज पर
अश्रु-विकृत मुख।।
जिसे देख
धीर अरब वीर के सारे देह-मन में
भयंकर रूप से चिपकती हैं गड़ती हैं चहुँ ओर
करुणा के तीखे-तीखे
काँटों की सूखी हुई झाड़ियाँ।।
'हाय' निकल पड़ती है
गहरी उसाँस में।
करुण कथाओं के दाँत गड़ जाते हैं
आकस्मिक आलिंगन में अश्रुपूर्ण,
हृदय-कपोल पर
माँओं की बच्चों की सूरतें
आत्मा को करती हैं शतधा।।
तथा अरब वीर की
आँखों में नाटों की लाखों फ्रांसीसी फौज
उभरती क्षितिज से,
उभरती है टैंकों की लम्बी-सी पाँत एक।।
टेकड़ी पर चढ़ी हुई फ्रांसीसी मोर्टार
ऊँची घुमावदार करती है ज़ोरदार
मार एक—
अग्नि का गोला वह

बीच ही मे दमदमाता तमककर
प्रतिकूल क्षितिज के पेट मे
धडाका है ध्वस का ।।
एकाएक
गगन के कानो से सैकडो
भन्नाती भुन्नाती हेकडी के पखदार
हवाई दुर्गों के मेघ मँडराते हैं कि भयकर
बमो की भू-ध्वसी वारदात
धडाको के धूल-धुएँ सने हाथ
जमीन से उठते हैं पहुँचते है नभ तक
मानो कि युद्ध के कुकुरमुत्ते उठते है भूमि से ।।

खुले-खुले बालू के मैदानो म अरब अश्वारोही वीर
गुरिल्ला रणधीर
सूँघता है सभी ओर खून और बारूद ।।
देखते है—फटी हुई छातियाँ
कटे हुए हाथ और
फटे हुए मस्तक ।।
हृदय का हस्तक
यानी कि रणशूर बुद्धि का क्षोभ तब
युद्ध-विवेक बन सोचता है नये-नये पैतरे
आत्मा का खून जब
आँखो मे चढता है,
अकस्मात् पीठ पर
दुनिया की जनता की
मीठी-मीठी थपथपी,
विक्षुब्ध हृदय मे भ्रातृ-भावमय नव
एकाएक अश्रु की कँपकँपी ।।
भागता है अरब अश्वारोही वीर
टेकडी के टीलो की छाया मे
बचने के वास्ते,
व अगले रण-पैतरो को सोचने के वास्ते ।।
भागते हैं अश्वारोही गुरिल्ला वीर-जन ।।

टेकडी की कन्दरा मे छिपा हुआ कब से
गुरिल्ला वीर एक
कहता सह-योद्धा से—देखो तुम
अल्जीरियायी यह जलता हुआ आसमान
अजी, देश-देशान्तरो मे है चारो ओर भासमान
भारतीय *अदृश्य* लेखको के

हज़ारहा क़लमों के मज़मून
करते हैं चित्रमय
अल्जीरियायी ख़ून।
कैरो का रेडियो
रेगिस्तानी भेड़िया बहादुर
भव्य और भयंकर
दहाड़ता फ़ासीसी ज़ुल्मों के समाचार।।
भारत के अख़बार
अजी, याद करते हैं उन्हें-तुम्हें रात दिन।

दमिश्क का दार्शनिक
पहाड़ी पर चढ़कर
विचारों के शिखर पर खड़ा हो
देखता है सन्ध्या का गगन
कि चू रहा
क्षितिज से लाल ख़ून
विकीरित करता हुआ सर्वत ज्ञान-रश्मि।।
रुधिर से विकीरित होती हैं किरणें
क्रान्तिकारी युग की।
भीषण बहुत है वह अन्धड़ और बवण्डर
आसमानी नीले रेगिस्तान में
बहा रहा है या कि उड़ा रहा है जो कि
अस्तप्राय साम्राज्यवादी पशु-सूर्य की
अधकटी
किन्तु फिर भी लड़ती हुई
आधी देह।।

[सम्भवत अपूर्ण। रचनाकाल 1950 से 1957 तक। नागपुर। अप्रकाशित]

एक के बाद एक

एक के बाद एक
स्फुरण व स्पन्द और
प्रेरणा का धड़कता हुआ लाग-जम्प

दिमागी रगों की हिली टहनियाँ

व मस्तिष्क-गुम्बद-तिमिर में कहीं
अजब पालतू सौ खयाल आपके
पंख फड़फड़ अकस्मात् करने लगे
घोंसलों से गिराने लगे वे मलिन
पंख, पर, बीट, तिनके कहीं
बन्द आँखें बँधे
मांस-रक्तिम-रुँधे,
(चेतना के) गिराने लगे अध-बने जीव-शिशु

पुराने महल में अकस्मात्
बादलभरी खूब आँधी घुसी
द्वार, खडखड खडाखड, कहीं टूटते-से लगे !!
सूने महल में कि कोई न चलता न चढ़ता-उतरता रहा
किन्तु वे
अकेले अँधेरेभरे जीर्ण जीने
ध्वनित, पद-ध्वनित
प्रतिध्वनित हो उठे
कि फुसला रहे शब्द
हम को व तुमको कि आँखें तिमिर में गड़ा
कान ऊँचे उठा
गाढ़ विश्वास कर लो' !!
व मस्तिष्क का वह पुराना व सूना महल
गूँजता ही रहा भीतरी शब्द से,
क्योंकि चल-फिर रहे
कुछ अजीबो-गरीब अजनबी
पैर
मुश्किल जिन्हें जानना
पर कदाचित् सही प्राण वे
जो बहस कर पड़े यों वहाँ आपसी तौर पर
कि उनकी बहस कागज़ी हो उठी ।

थिरक और सिहर
प्रेरणा के प्रहर चल पड़े फिर मशालें लिये
लाल पीतारुणी ज्वाल
फैली अँधेरेभरी भीत पर
भीत पर स्याह गाढ़े
गहन नील या कत्थई लाल गहरे
व पीले जबर्दस्त
रेखाकनों में खिंचे चित्र
यों मुस्कराने लगे ।

…पहचान लो तुम स्वयं
कौन हम
भीत पर चित्र दीखे भयंकर, मनोहर, विराट्
उन्हें देखते ही खड़ी रह गयीं
वे मशालें कई
उन्हें जो मशालें रहीं देखती
मैं उन्हें देखता
वही चित्र मैंने यहाँ काग़ज़ी ठाठ से
निराली लकीरों फँसा रख दिये
चित्रकारी न कर !!

सड़क पर खड़े वृक्ष पर एक बैठा हुआ
गिद्ध कहने लगा—
मैं स्वयं-सिद्ध हूँ,
कहन में बहुत भीतरी ज़ोर थे
अति मधुर और मदिर
स्वानुभूतात्मविश्वास का ठाठ था
व निर्जीव पत्ते
प्रभावित व झंकृत हुए
तालियाँ दे उठे !!
गिद्ध-छाया तभी
कत्थई स्याह रेखा-बँधी
उस क्षितिज पर गिरी,
था जहाँ लाल रवि अस्तमित हो रहा।
और आकाश में
गिद्ध का रूप ले
मुस्कराते हुए
तैरते स्याह बादल चले !!
अचानक नदी झील-तालाब में
गिद्ध के भव्य व्यक्तित्व के
बिम्ब-प्रतिबिम्ब
प्रत्यक्ष फोटो व सौन्दर्यमय
चित्र छपने लगे !!
गिद्ध ने भी कई गिरि-शिखर-घाटियों की
समुद्घाटना की
कि फैली हुई धूप में सूखतीं अस्थियों के मनोहर
शिखर-अचलों पर सिमटकर
नये धूम की साधना की
व राष्ट्रीय कर्तव्य का बोध करवा
महोत्सव समारोह-उपलक्ष्य, उसने

लगाया वही एक विरवा !!
ठाठ से फिर कहा गिद्ध ने
मैं स्वयं-सिद्ध हूँ
तो कणो मे, कणो के कणो मे औ' मधुर सनसनी
आत्म के भीतरी
कोष मे ब्रह्म के ठाठ की उन्मनी
व्यग्र अनुभूति या वेदना बन गयी
वह मधुर सनसनी
हज़ारो व लाखो
पुराने सडे जीर्ण खोखे
हृदय मे मृदगाध्वनित हो उठे।
आत्म-प्रस्थापना के
अनेको प्रकार
शैलियाँ
जगमगाने लगी।
व ऐसा गणित सब प्रमाणित हुआ
व उसकी परम-सूत्र सगति निभाने
उठे चल पडे तर्क,
अनुभूति औ' उक्तियो के प्रभंजन
पर हाय
प्रत्येक अनुभूति
या तर्क
या उक्ति
गिद्ध-स्वरूप हो गयी
हृदय की कमल-पखुरी
बन गयी गिद्ध का पख-दल।

तभी तरु-तले एक बैठे हुए श्वान ने···
··लटकती हुई जीभ
अन्दर तुरत खीचकर
यह कहा
तुम महाबुद्ध हो···

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957-58। नागपुर। भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

बन जा पहाड़

बन जा पहाड़ यदि पल की है यह आज्ञा तो
मन योजनीय सयोजनीय, धी योग्या हो।

पल सतत विश्व गति का सुपरिष्कृत है शीशा
पल के प्रकाश मे अन्धकार का सिर दीखा
तो सम्मुख जो, उसके सम्बन्धो मे खूब उलझ
तू खूब उलझ पर अगले पल से मैत्री कर
चचल प्रवाह-धारा-गति का अपने भीतर
तू अनुभव कर,
उस धारा-गति मे खूब नहा
दे दिशाकाश को काल-सरित मे अरे बहा
सब मानव-सम्बन्धो के ये जीवन-पहलू
ये खूब खुलेंगे और मुदेंगे पुन खुलेंगे नये-नये
चाहे हो मादक गन्ध-वाह अथवा वह लू
पल मे मानव-सम्बन्धो के तू दर्शन कर
यह पल उसके भीतर का जग तेरे भीतर तेरे बाहर
जो पल है, उसमे निज से जग से सच्चा रह।

तू जगत्-काल-धारा मे बहते दिशाकाश—
का दृश्य देखता हुआ स्वय भी बहता जा
गति-अनुभव कर, गति को सुखकर
गति को कल्याणी दिक् मे, जा, तू उन्मुख कर
यह गति, यह पल, मानव-सम्बन्ध—स्व-सवेद्य

यह आत्म-सज्ञ चेतना
स्वय तू ही तू है मैं ही मैं हूँ वह ही वह है
यह तेरे घर की तुलसी उसको दूर न कर
तेरा यह भीतरी सहज आनन्द कि उसकी दूर नजर
यह घर की तुलसी उसके सम्मुख सन्ध्या मे
अपने ज्ञानानुभव भाव का दीप जला
उस लाल दीप लौ की अरुणायित शोभा मे
पल की गति को कर दें अपला सुख कमल खिलें तेरे मन मे
वे कमल हृदय सर्जन मे खिलते जायें
तू अपने से जग से प्रतिपल मिलता जाये।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957-58। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

इसी बैलगाड़ी को

इसी बैलगाडी को पहाडी ढालो पर
चढाता-उतारता बढाता हूँ मैं
इसी बैलगाडी को
बहुत दूर तुम
खींच रहे हो शहरी अँधेरे मे
वही बैलगाडी
वही हाँकना
सिर्फ एक फर्क है
फर्क आबोहवा का

शहराती गलियो के घुप्प अँधेरे मे
उदास उजाला है
बिजली की लटकती गर्दन का
बिजली के खम्भे के पास की गटर मे
पहिया एक धँस गया
खम्भे से टकरायी व फँस गयी
बैलगाडी तुम्हारी···
हो-हल्ला है गली मे
परेशान तुम, बहुत धकापेल बाद भी
गाडी नही निकलती
भार वह भीतर का
उलझे खयालो का
व गतिहीन दर्द का
शकाग्रस्त स्वप्नो का,
भय-खाये पाप का
जग-खाये ट्रको का, खटर-पटर माल-असबाब का
दूर उधर पहाडी चढान की
अँधेरी ऊँचाई मे
प्रभीपण एक मोड पर
बैल जब बिचक गये
झाडी मे जा फँसी
गाडी यह हमारी
व हम कही खड्डे मे जा गिरे
(ललाट पर सूजन की
छोटी-सी टेकडी
तुम्हे दीखती नही)

हमारी ऊँचाइयाँ खतरनाक !
एकाएक उपस्थित होनेवाले तेज़ मोड
गाहक हैं जान के
फिसल गया पैर यदि
गिरे पाताल में ही चिह्नहीन

इस वक्त
परेशान हमने एक काम किया
रास्ते म एक ओर
कण्डे की लाल आग
टिक्कड लगी सेंकने
बहुत-बहुत परेशान थके हुए हम भी हैं।
लेकिन सुगन्ध उस
टिक्कड की खूब जो कि
आत्मा मे फैलती है
ईमान की भाफ बन !!

तमभरी चढान की सडक से
खतरनाक बल खाते मोड पर
अनन्त दूरियो का सस्पर्श
लिये हुए हवाओ
से आलिंगित बैठे हम
अँधेरे म पहाडी
देखते हैं अग्नि म टिक्कड का सिंकना
माया का ममता का सहज चमकना
याद आना
भाई बहन माता पिता पत्नी का
वियोग मे तडपना !!

क्या करें अँधेरी ऊँचाई पर
हमारे अग-अग मे
खूब हवा खेलती
और उसके अनुपग म
हृदय भी दूर-दूर लहराता रहता
क्या करें
जिन्दगी ही ऐसी है कि
सहचर-रूप में
हमारे साथ तारे हैं चाँद है व आसमान
अब जो तुम्हारे लिये
आउट-ऑफ-डेट हैं

इसके लिए क्या करें
तुम्हारे हमारे बीच
फर्क आबोहवा का कि
शब्दो का अभिधार्थ
एक होते हुए भी
व्यजना-लक्षणा-ध्वनि और
मर्म भिन्न-भिन्न हैं
इसके लिए क्या करें हम लोग ।

दूर उधर
किसी तमस्कण के
किसी तमस-अणु के
केन्द्र को छिन्नकर
तड़ित् की चिनगियाँ
निकालने के लिए तुम
अपने ही बालो पर
रगडते कघियाँ
आह क्या प्रयोग है
दोनो हैं सधते
केश-प्रसाधन और सत्य का आविष्कार !!
यह आत्म-मन्थन भी खूब है !!
कहते तुम, समुद्र है आत्मा
पर अगर सडक पर
पशु-मूत्र-धारा हो वह तो
इसकी क्या गैरण्टी कि 'निज' वह
क्षुद्र नही
इसका क्या सुबूत है 'मैं' जो है सही है !!
इसका क्या प्रमाण कि
कहते जिसे आत्मा
अह का न विक्षेप
स्वय का न प्रक्षेप
किन्तु शायद हृदय मे दुखते हुए
शून्य को सहलाने
प्रतीकात्मक कार्य म रत तुम
इसीलिए कदाचित्
स्वय के बाल ओछ
बिजली का चिडचिडाता चमत्कार
व्यक्त करना चाहते हो !!
अपन दोनो भाई हैं
और दोनो दुखी हैं

दोनों हैं कष्ट-ग्रस्त
फिर भी तुम लड़ते हो हमसे !!
बैलगाड़ी एक है
और वही हाँकना
सिर्फ़ एक फ़र्क़ है
फ़र्क़ आबोहवा का

दूर उधर पहाड़ी चढ़ान पर
भरा हुआ कई मन
ताज़ी कटी फसलों का
गेहूँ है उत्तम
मनोहर कांक्षा का
सुगन्धित स्वप्न का
अनुशासी मन का
सच है कि स्वप्नों की
कांक्षा का फ़ैशन चला गया
किन्तु सभी लोग
चाहे धनी या गरीब हों—
उन्हें खूब चाहते
इसीलिए पहाड़ी चढ़ान की
अँधेरी ऊँचाई पर
घुँघरू बजाते हुए बढ़ते हैं
बढ़ते अटक-अटक
थके हुए बैल ये हमारे
विरुद्ध दिशा में तब
सड़कों की कटती हैं लकीरें
गाड़ी के तले में।

एक ओर
भयानक खड्ड और
एक मील नीचे का अँधियारा गहरा
जुगनुओं के नीले ज्योति बिन्दुओं से चमकता
डर जाते हम भी खुद
गिरने के खतरे से !!
जितनी ऊँचाई हो
अधःपात उतना ही सहज है
परिचित भी राह हो
अँधेरी ऊँचाई में
लगती अपरिचित
इस वक्त किन्तु हम थके हुए परेशान

आज यहाँ लेटे हैं टीले पर एक ओर
पेड-बँधे बैल मस्त करते है जुगाली
सोच रहे हम यहाँ
गति की प्रगति—कठिनाइयाँ
क्या करें हमारे विचार तब
पहाडो से आप-ही-आप उठ खडे होते है
आसमान लिपट जाता सहसा
शिखर की उच्चता हमारे खयालो का मुकुट पहनती
क्योकि दुर्घटना
अँधेरी ऊँचाई के मोड पर
अवश्य होती-सी लगती है
और बैलगाडी के पहिये भी बहुत बार
ठीक यही टूटते
होती है डाकेजनी;
चढान अँधेरी पर
इसीलिए रायफलें सँभाले
सावधान चलते हैं
चलना ही पडता है
क्या करें।
जीवन के तथ्यो के
सामान्यीकरणो का
करना ही पडता हमे असामान्यीकरण

दोस्त, अब क्या करें
क्या बतायें
चढान की जिन्दगी
बहुत खूब होती है
सुदूर नील कुहरे का धुँधलापन ओढे हुए
आसमानी रग का गिरि-रूप
धारण किये
भाव-विचार ये
उतने ही धुँधले-स मनोरम अस्पष्ट
कुहरील नीलाभ
मनोहर आकर्षक
उतन ही ठोस किन्तु
उतने ही दृढ और
उतने वस्तु-सत्य-रूप हैं
माना कि चलन नही पर्वत-प्रतीकों का
पहाडी चढान पर
खतरे की जिन्दगी

खूबसूरत होती है
साहस की जिन्दगी (क्या करें !)
होती है रोमैण्टिक
इसी बैलगाडी मे प्रतिपल
खाते हुए दचके
कन्धों पर पट्टे कारतूस के
हाथो मे रायफल के बावजूद
साहस की जिन्दगी होती है रोमैण्टिक
भय और शका व आतक
हममे भी निश्चित
क्योकि यहाँ गिरोह डाकुओ के अकस्मात्
प्रगति को रोकते हैं
और हमे
गेहूँ ले जाना है मण्डी मे जल्दी-से-जल्दी
कि जहाँ से सब जगह देश मे
बँटने के लिए वह
रेल मालगाडी में तुरत भरा जायेगा।

इसमे शक नही कि
भय और शका व आतक
तुममे भी !!
मूल्यों के गिरने से भय-खाये
तुम लोग
चिन्ता म रत हो
चिन्तन मे रत हो
वचन-प्रवचन में रत हो
तुम्हारा ही शोर है
फिर तुम क्या हो !!
करते तुम क्या हो !! वही गुटबाजी है !!
(बेचैनी दिमाग मे)
स्वय के आन्तरिक
उलझे हुए गणित के आँकडे
रचित पुनर्रचित होते हैं
अनेक नमूनो म।
क्योकि वह प्रश्न ही
गलत तरीके से किया गया प्रस्तुत
अत' न होगा हल
दु ख तो यही है कि तुम्हे भय !!
किससे भय ?
सुविदित रूप से नही ज्ञात

सुस्पष्ट रूप से नही पहचानते हो
बुरे का, बुराई का चेहरा
इसलिए घृणा न कर सकोगे
पर्याप्त
अस्पष्ट शका है धुँधला है आतक
इसीलिए एवजी *स्थानापन्न*
बहुतेरे कारण
लगा लिये खोज लिये जाते हैं
गिरफ्तार चूहा ज्यो भागता है लगातार
पिजरे की चक्रव्यूह गलियो मे बेचैन
(बाहर भाग सकने की बुद्धि ही नही है)
यही एक मौलिकता
व इस मौलिक वेदना मे खुश वह
अन्धा वह सवेदन मुक्ति की खोज का

हम इसमे खुश है कि मुक्ति की तुम्हे खोज
विचार तुम्हारे सूक्ष्म
बिजली के बल्व प्रतीको मे बँधते है
बँधने तो
तुम भी लडते हो
सुना है कि तुम भी खूब
शहरो के लुच्चो से करते हो दो-दो हाथ
डाकुओ मे हम भी तो लडते हैं
ताजी कटी फसलो का नाज
बचाने को
किन्तु तुम जड और ठस हमे कहते हो
क्योकि हम सिपाही
क्योकि हम गाडीवान
और तुम शहराती नुक्कड के काफे मे
बताना न चाहते पहचान

इसमे क्या दोष है कि
प्रगति-भविष्य के पथ पर
रहते है तारे साथ
लिपटा ही रहता है आसमान
चिपका ही रहता है अन्तरिक्ष
खेलती ही रहती हैं बालो से हवाएँ
गाडी पर सविनोद
पास बैठ जाते हैं
फडफडाते हुए पख

गरुड हमारे साथ
ईगल हैं सहचर
बादल बदलते हैं नाना रूप
साथ-साथ चलते-से लगते हैं।
किन्तु तुम असफलता, कमज़ोरी हमारी
हृदय के भीतर की जेब की नोटबुक में
ज़रूर आंक लेते हो ।।
ग़लत कारण गलत सूत्र,
गलत स्रोत प्रस्तुत करते हुए
सिद्ध करना चाहते हो
कि हम बिलकुल गलत हैं
हमारा चलना ग़लत
गलत अस्तित्व ही ।।
हम साफ कह दें कि
असल में यह है कि नागवार
गुज़रता है तुमको कि हम लोग
निरन्तर युद्धमान
जीवन के शास्त्र और शस्त्र हैं
ऐतिहासिक दृष्टि हैं, अस्त्र हैं
क्योंकि हम
देखते हैं अनिवार्य
मृत्यु उस सभ्यता की
जिसका तुम जाने-अनजाने नित
करते हो समर्थन ।।
इसीलिए तुम हमें
सबसे बड़े शत्रु समझते हो ।।
क्षमा करो, तुम मेरे बन्धु और मित्र हो
इसीलिए सबसे अधिक दु:खदायी
भयानक शत्रु हो।

[सम्भावित रचनाकाल 1958-59। राजनांदगांव। भूरी-भूरी खाक-धूल में सकलित]

ओ अप्रस्तुत श्रोता

ओ, अप्रस्तुत श्रोता,
ओ अनुपस्थित पाठक,

मैं अन्धेर-कारखाने के
स्याह धुएँ के बहाव में से निकल भागते
अगारे-सा
उड-तिरकर चुपचाप तुम्हारी छत पर
चोरी-चोरी आ पहुँचा हूँ,
पर जलाऊँगा नहीं तुम्हें
मैं अपनी कविताओं से।

हाँ अन्धेर-कारखाना यह
जिसकी लाल भडक बेताब धमनभट्टी में
झोंक, खुद ही को रोज
आत्महत्या करता है व्यक्ति
किन्तु वह मरता नहीं
वरन् वह पुनर्जन्म पा
विकसित करता नया एकदम नया
पेट, धड, सींग, पूँछ और पख
और फिर उडता फिरता चरता फिरता
खूब बालता फिरता
किन्तु
द्वन्द्व-स्थिति में स्थापित यह
मेरा वजनदार लोहा
लाल लाल
उन भयकर अग्नि-क्रियाओं में
तेज ढकेला जाकर
पिघलते हुए दमकते हुए
तेज पुज गहन अनुभव का छोटा-सा दोहा बनता है।
हाँ कि आज वह छन्द
नजरबन्दी कानून मातहत
अवैध अस्वीकृत,
बस इसीलिए
मैंने जमीन के भीतर-भीतर
तहखाने के अपने घर की
एक भीत पर
उसे साफ दीवालगीरी-सा टाँग रखा है
लौ उकसा, उजियाल रखा है
मैंने चोरी-चोरी भीतर का रेडियम सँभाल रखा है।
आज अकेले उसी एक कोने में तुमको पाने,
ले जाने के लिए
तुम्हारे घर आया हूँ
ओ मेरे प्रिय पात्र!

मैं तुम्हें याद करता रहता हूँ
इस अन्धेर-कारखाने में
एक-दूसरे के दाँतों में दाँत फँसा
सैकड़ों हजारों चक्के
तेज रगड़कर एक-दूसरे को
खुद ही के आस-पास
हाँ, केवल निज के आस-पास
जब तेज घूमते हैं।
तब तब तुम्हें खोजने
मेरी आँखें इधर-उधर सब ओर भटकती रहती हैं।
सैकड़ों परिधियाँ
एक-दूसरे के दाँतों में दाँत फँसा
जबड़े में जबड़ा डाल
घूमती गोल-गोल
निज केन्द्र-मध्य के आस-पास
हर बार वही-की-वही की-वही
और, वह उनका ऊँचा शोर
धुराधारी केन्द्रों का अपना खुद का जोर
नहीं कोई ।।
अज्ञात तड़ित्-स्रोतों पर जिसका बल,
स्विच पर जिसका हाथ
मैं सिर्फ़ उसे देखकर
तुम्हारी करता रहता याद
तुम्हारी करता रहता याद

निज-केन्द्री गतिमय चक्रों का यह जो
ऊँचा शोर,
जिसमें देखा गया जमाने का वह
सबसे ऊँचा छोर
परिभाषा, व्याख्या,
टीका, आलोचन
समष्टि-चिन्तन व व्यक्ति-चिन्तन
सभ्यता-समीक्षा, मानव-विश्लेषण
उन सब पर मुझे गहन आश्चर्य
कि इन चक्रों का साहचर्य
कितना उत्तेजित करता वातावरण
पर, मेरी दृष्टि उसी पर
जिसका काला लम्बा हाथ
स्विच पर है
मैं उसके दिल का सुनकर ग्रामोफोन

तुम्हें करता हूँ याद
क्योंकि तुम्हारी हर मौके पर मदद चाहता हूँ।
ऊँचे चक्के, निचले चक्के
काली चिक्नी सौ बार ग्रीज़ खाकर
उदास होते हैं खूब स्वाद लेकर।
उदर भरकर निराश रहते है।
अपनी वद्धावस्था में देख नही पाते
सम्पूर्ण व्यवस्था वह
जिसके वेडौल शिकजो की रफ्तार
बनी भीतर की बिजली-धार
—भाव विचार!!

इसी अन्धेर-कारखाने मे बनते हैं हथियार
धारदार औज़ार बन रहे है
जो मस्तिष्को, बुद्धियो, उरो के आर-पार होकर
शत अग्निकाण्ड-व्यापार बन रहे हैं।
ये लाभ-लोभ की क्षोभभरी
पेट्रोल-टंकियाँ खडी हुईं
स्टैण्डर्ड शैल स्टैनवाक
जिनकी सहायता द्वारा कैसी भभक उठी
लायब्रेरी
हमारी ऊँची लायब्रेरी

सात गुम्वदोवाला एक सफेद शहर
हो गया राख
सैकडो पुलोवाली वह गौरवशाली बहती हुई नदी
धँस गयी—
जमीनो परतो की
भीतरी तहो मे, वह जाकर फँस गयी
व उसकी जगह
तेल का-सा गाढा-गाढा समुद्र
मृत्यु-सागर
जिसमे है निन्यानवे फीसदी
अमोनियम फॉस्फेट, घोर नायट्रेट
विषैली भाफ हवाओ मे
जिसके कारण पक्षी भी उडते नही कही
आकाश-दिशाओ मे।

जी हाँ, यह वह
अन्धेर-कारखाना, जिसमे

बनते हैं जो हथियार
जो औज़ार
उनकी पूँजी ऊँची अन्तर्राष्ट्रीय
उस बड़े पेट का जो अन्तर्राष्ट्रीय।
उन औज़ारों की नयी-नयी क़िस्में !!
·· नयी-नयी क़िस्में !!

ओ, अप्रस्तुत श्रोता,
ओ अनुपस्थित पाठक !!
मुझे बताया गया
और यह कहकर खूब सताया गया
कि मौत का घर
खुद इन्सान।
दु:ख सनातन है
जो निज के कारण है।

[सम्भावित रचनाकाल 1958-59। राजनांदगांव। भूरी-भूरी खाक-धूल में संकलित]

मेरे युवजन, मेरे परिजन

अरुणोदय के पूर्व ही,
तम-मग्न खँडहरों के मृदु-गन्ध-प्रसारों में
उद्ग्रीव कुन्द-चम्पा-गुलाब की गन्ध लिये
मेरे युवजन-व्यक्तित्व यहाँ पर महक रहे
क्षिप्रा के तट
वीरान हवाओं में···
अरुणोदय के पूर्व ही।

गम्भीर श्याम पीड़ा की डोहभरी क्षिप्रा
आत्मा के कोमल घनच्छाय एकान्तों में
स्वीय।, अपरा
उन एकान्तों में क्षिप्रा का
संवेदन-जल पी रहे
अँधेरे में

मेरे युवजन
मैदान हवाओं मे लिपटे।

उस गहन अँधेरे मे
प्राचीन मृत्तिका की उजाड करुणा मन म,
अभिनव पुष्पो की हृदय-गन्ध के साथ-साथ
कण्टकित ज्ञान-केतकी महकती जीवन म।
पीडामय द्रोह-लहर पीकर अजुलियो से
अनजान मे, फैलते जा रहे बाँह-हाथ
मानो अछोर मैदान महक के पार, किमी
पर्वत-उतार पर खिले हुए
जादुई, दूर, द्युतिमत् गुलाब
ले आयेंगे।।

हैं लहर-लहर मे प्रतिबिम्बित तारक-द्युतियाँ
पीडाओ मे मर्मानुभूत दृष्टियाँ
विचारो की धृतियाँ,
मेरे युवजन, मेरे परिजन
लहरो मे घुली-मिली ज्योतियाँ
पी रहे अँधेरे मे
मैदान-हवाओं मे लिपटे।।

अकस्मात्
श्यामल गम्भीर बृहद-आकार एक पक्षी
साँवले पख फैला
मँडराता है सिर पर।
सन्तुलित पख विस्तृत कोणो मे सक्रिय हैं।
प्रिय है, प्रिय है
उसका उभार, उसका प्रवास
उसकी उद्विग्न श्याम चिन्ता।
मेरे युवजन, मेरे परिजन
एकाग्र, एकटक उसे देखते रहते हैं,
उनको शका,
उनका यह अभिमत है कि गहन
क्षिप्रा के मूलोद्गम स्थित वन
का वासी वह
सिर पर मँडराने आया है।

वे पाते हैं—
पीडा की परम्परा-क्षिप्रा युग-युग-वाही

पापो की कारण-परम्परा-कन्दरा-वनो मे से निकली,
मेरे युवजन, मेरे परिजन
अन्त सलिला का पाते हैं दूसरा सिरा,
दूसरे सिरे के देख रहे वे जगल-वन ।।

वे जगल-वन
उनका यात्री
श्यामल गम्भीर वृहद् पक्षी
वह युगानुयुग जन-शोषण-पाप-दृश्य-दर्शी
सिर पर मँडराता है
उसके सवेदनमय स्वर मे
रक्ताक्त व्यथामय कथा निवेदित है।

मैं लेखक हूँ
प्रतिपल युवजन-व्यक्तित्व अध्ययन करता हूँ
उनके हिय के तालावो मे
सिर से पैरो तक लहू-लुहान नहाता है
चेतना-पुरुष।
वह बिजलीभरा रक्त है जो घुलता है
श्यामल लहरो मे
वे लाल रक्त-लेखाएँ गहरी ज्योतित हैं।
उन रक्तागा[illegible] सन्दर्भों स युवजन का हूँ।
इस रात्रि [illegible] वेला मे
आगामी प्रातो की ओस सुगन्धित है।
क्या करूँ कि मुझको ओस-कणो मे
लाल ज्योति दिखती
मानो वे शत-शत रुधिर-बिन्दु थरथरा रहे
उनकी प्रदीप्त किरनो को गिनने का
मैं यत्न कर रहा हूँ।

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद। राजनाँदगाँव। राष्ट्रवाणी, नवम्बर-दिसम्बर 1964, मे प्रकाशित। भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

बिना तुम्हारे

बिना तुम्हारे बजर होगा आसमान
ऊजड होगी सारी जमीन।।

फिर, उसी धधकते हुए सूर्य
के तले प्रखर,
सब ओर चिलचिलाती काली चट्टानो पर
ठोकर खाता, टकराता भटकेगा समीर ।।
भौंहो पर धूल-पसीना ले, तन-मन हारा,
बेचैन रहूँगा फिरता मैं मारा मारा,
देखता रहूँगा क्षितिजो की
सब तरफ गोल कोरी लकीर ।।

फिर, उसी धधकते हुए सूर्य
के फैलावोवाले सफेद
सूने कोने से टकराती जायेगी
अरे, गहरी कोई घायल पुकार
या आर-पार वह एक भटकती हुई रूह—
बेचैन चील ।।
उस-जैसा मैं पर्यटनशील प्यासा-प्यासा
देखता रहूँगा—
दूर वहाँ उस जगह—दमकती हुई झील
या पानी का कोरा झाँसा,
जिसकी अजीब लहराती-सी
चिलचिलाहटो मे रहा काँप
इनकार साफ ।।

मैं किसी पहाडी टीले पर नि सग एक
श्यामल विहग
देखता रहूँगा निर्निमेष
धूप की दहकती सूनी छाती मे, जी मे,
प्रति निमिष रेंगता हुआ काल धीमे-धीमे
देखता रहूँगा—आसमान
के तल मे जलता हुआ भाल
काल का,
भूरी पहाडियो के कन्धो पर अलसायी
ऊँची सियाह चट्टानो पर, टीलो पर
नीरव पत्रहीन वृक्षो पर
ढीली पडी हुई है मुरझायी
वह पल-क्षण की मालिका ।।

दूर से दिखायी देगी तब वह नदी
या कि वह आर पार शमशीर
मैदानो को चीरती हुई

कि जिसके इस्पाती फल मे अजीब
चमचमाहटें कांपती,
लहरों मे आईनों की किरचें—नोकदार
इनकार, तेज़ इनकार !!

बफती मिट्टी की बास लिये
यह गरम साँस काँपती,
साँवली दरारों में से उठती है उसाँस हाँफती,
लेकिन जलते मैदानो की सब आँच लिये
सैकडो मील पारकर
तेज-रफतार हवा आ रही !!
उसके कन्धो पर चढ,
साथ हमेशा रह
घूमता फिरूँगा,
देखूँगा प्रतिपल जलते हुए देश
वे नये-नये जीवन-प्रदेश
क्लेश के।

यद्यपि, मेरे मुह पर होगा
धूल के बवण्डर का पल्ला,
या सभी तरफ से एक साथ
होगा वीरानी का हमला,
फिर भी सूनेपन के आईने मे
चमकेगा लगातार
मेरी आँखो मे रमे हुए
मीठे आकारो का निखार।
मैं जिधर दृष्टि डालूँगा, पाऊँगा सखेद
सांवले, हरे, भूरे सफेद
मैदानो के फैलावो पर तैरती हुई
झिलमिल-झिलमिल मुख-छवि मुझको
देखती हुई
ज्योत्स्नाशाली निज मानव रूप बना
मुझको देखेगी मनोमन्यिनी मरीचिका।
मैं संभल न पाऊँगा
डालूँगा दृष्टि जिधर
अपना आँचल फैलायेगी।
मेरा पीछा करने मे आगे-आगे चल
वह मुझे एकटक
देखेगी चन्द्रिका धवल।
यदि मैं पर्वत-सा ऊँचा हो जाऊँ सहास

वह शिखर चन्द्रमा बनकर मेरे आस-पास
कोमल अदम्य सत्ता-सी चमकेगी नवीन।
मेरा पीछा करनेवाले ये बिम्ब आज
यदि प्राणों के अविभाज्य अंग
तो बिना तुम्हारे, यह यथार्थ
हो जायेगा उद्भ्रान्त व्यंग्य
श्री-हीन दीन!!
सच, बिना तुम्हारे बंजर होगा आसमान,
ऊजड़ होगी सारी ज़मीन!!

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद। राजनांदगांव। भूरी-भूरी खाक-धूल संकलित]

भविष्य-धारा

क्यों वैज्ञानिक सो गया
सतत प्रज्वलित गैस-स्टोव पास
स्वयं की प्रयोगशाला में?
क्यों वह अचेत हो गया?
कि कमरे में घूमने लगीं अदृश्य लहरें
वह महक अजीबोगरीब द्रव्यों की
(अत्यन्त उग्र) सिर को चकरा देनेवाली।
है ढुली पड़ी शीशियाँ, परीक्षण-नलिकाएँ
क्यों हुई भयानक घटना यह?
क्या यहाँ किसी ने बेहोशी की दवा पिला
चोरी कर ली नव-गणित-पंक्तियों की अद्भुत
वे नव-आविष्कृत समीकरण के सूत्र
खो गये कहाँ!!

अनवस्था के भ्रम-धूम-लोक में जाग उठी आत्मा।
अनबूझे ऋण-एक राशि के वर्गमूल
की पाँतें चलती रहीं, भयानक गतियों से,
अत्यन्त विचित्र अनन्तों तक।
गणितिक ललाट की गहरी चिन्तित रगें उठी है फूल व
ब्लॉटिंग-पेपर पर बिम्बित *अक्षर-वर्णों* से
वे अंक दाग़वाले उलझे

हर भाव हृदय मे फैल दाग बन गया।
खोये ही को खोजती हुई सन्त्रस्त सूझ
अभिनव कल्पित राशियो-राशियो द्वारा जब
जाती है करने भूल-सुधार कि कर आती
है एक दूसरी भूल
कि जिसके लिए कोसती रहती है
आत्मा निज को,
फटकार, चिडचिडाहट, फिर गहरा उद्बोधन
भीषण एकान्तो मे अपना सशोधन
निज पर ही वह निज का प्रयोग।

वे घूमघामकर फिर से वही
जहाँ से चली
कि फिर से वही
वही आती विचित्र गतियाँ
बस, वही कूल
वह रेत और वह गहरी ठण्डी हाथ लगी है धूल।

अपनी प्रयोगशाला मे, वह वैज्ञानिक—
निज सूक्ष्म-तथ्य-मापन यन्त्रो के बीच
अचेत अवस्था मे,
वह लुप्त समीकरणो की पक्ति-अवलि-माला
मे उलझ रहा,
सूझ की गुँथन मन मे थामे,
जल रहा गैस-स्टोव, पास,
सूना कमरा गहरा उदास
नीली अरुणिम लौ की कलिका
पर एक परीक्षण-नलिका वैसी-की-वैसी
यन्त्र पर रखी!!
वह कौन जबर्दस्ती जिसने कर डाला है
यो अन्तर्मुख वैज्ञानिक को ?
बलात् काट दी स्वाभाविक
विजयिष्णु वृत्तियाँ बाह्योन्मुख
धोखा वैज्ञानिक सूक्ष्म बुद्धि को दिया ?
व कठिन परिस्थिति-पत्थर पर
उसके प्रतिभा-सिर को रगडा।
सिर को मूर्छा आ गयी
व मूर्छा के भीतरी जगत् मे
वह चढता जा रहा
प्रदीर्घ नसैनी पर रख पैर· ·

इतनी ऊँची इतनी ऊँची
वह टूटी एक नसेनी
नीले आसमान को छूती थी
उस भग्न नसेनी की दो लम्ब समान्तर रेखाएँ
नीले सूनेपन में सारी घुल गयी रहीं
काटती हुई उनको
तिर्यक सीढ़ी-रेखा
वह नीचे नीला शून्य···
खो गये पैर नसनी के···
व ऊपर नीला शून्य ··
खो गया सिरा नसेनी का
कहीं बीच में गायब कुछ सीढ़ियाँ।
व नीले अधर अँधेरे में
शून्यावकाश की टूटी सीढ़ी से चिपटा
वह रहा वक्ष पर अन्तरिक्ष लेकर
कि चढ़ता रहा
गगन में ले निज संग जादुई दिया
वह वैज्ञानिक नाम का अब !!
व उसका सत्य
हमारे कहाँ काम का अब
कि शायद, वह मर गया।

अकस्मात् खड़के खिड़की के दरवाजे
कुछ शब्द उड़े, धड़के क्षण-भर,
फिर मरे कि फिर जी उठे !!
रासायनिक गन्ध-लहरों की उग्र वक्र
सलवटोंभरा
सूनेपन का चेहरा चिन्तित हो गया।

खिड़की के शीशे की चौखट में से झाँकी
कोई सूरत भय से पीली, भय से खाकी
खतरे के धक्कों की रेखाओं के चक्कर
उस चेहरे पर

वह मैं ही था
मैंने अपने को पाया प्रयोगशाला में।
रक्तिम भीतों के द्वारों पर रक्तिम परदे
मानो रहस्य का रक्त-कोप वह दर्दभरा
फिर भी उसमें आईना साफ-स्वच्छ निर्मल
जिसमें अपना चेहरा जो भय से सर्द-हरा

मैंने देखा
वह भय ? काहे का डर ?
कि कौन सी आशका ?

इस एक प्रश्न ने अकस्मात्
दूसरे प्रश्न के खोल दिये हैं द्वार
वे समीकरण के सूत्र
खो गये कहाँ ?
वह नव-आविष्कृत गणित कहाँ खो गया ?
रगो मे स्फुरित एक तेजी से मैं सत्वर हो उठा
कि खोजा तब कोना-कोना
टेबल, ड्राअर, अलमारी स्थल सब सम्भावी
पर कुछ न मिला
झटकारता हुआ हाथ
हाय !! मैं हार गया !!
भीषण चोरी !!
यह हानि कभी भी नही भरी जा सकती है
क्या करूँ !!
वह वैज्ञानिक
कुर्सी पर ढहकर गिरता-सा
टेबल पर झुक सिर थामे वह काठ-सा खडा,
सम्पूर्ण परिस्थिति पूरी स्थिति तौलता हुआ
मैं था पत्थर-बाँट-सा अडा !!
भीषण चोरी
मानव-हत्या
यह पुलिस केस…
पहचान सकेगी पुलिस नही यह हानि
फिर असन्दिग्ध यह नही कि चोरी किये गये
मिल जायेंगे वे मूल्यवान कागज अवश्य
भागो, दौडो, लपको, झपटो,
ढूँढो, खोजो।
मैं भय आशकाहत पिछल दरवाजे से
ऐसे खिसका मानो शरीर से गुपचुप
खिसक जाय आत्मा
यह आत्म-लहर चल मीलो पार कही पहुँची
खोजती हुई सब ओर अभिलषित वस्तु स्वय !!

बिलकुल सफेद
यह खिली हुई थी धूप,
झाडियों की छायाओं के धब्बे

थे ऊँघ रहे
उस पिछवाड़े के जगल में।
मानो सफेद-झक कागज,
उस पर तसवीरें
दागों की ही।
वह हवा चल रही दबी-दबी।

अति दूर एक इमली के श्याम वृक्ष-पर्वत
के सघन तले
चचल बालक खेलते ··
कि हूँ गुपचुप
मानो मुझसे ही मैं छुप-छुप चल रहा
न सूझा कुछ इसलिए स्वय
मैं खड़ा हुआ देखता बालगण रहा···
कि इतने मे
चचल हँसती कोई छाया
कोई नव बाल-मित्र आया।
कापी हाथो मे, एक चित्र चमकीला है
मैंने देखा शायद कि भाग्य की लीला हो
दिल धडका
मन फडका
सहसा पैर बढ़े
मुँह खुला
स्निग्ध भाफ निकली,
जय हो ओ महावृक्ष इमली!

खुश रहो कि न सही श्वेत वस्त्र,
चिन्दी ही हाथ लगी!!
ये हस्ताक्षर वैज्ञानिक के
काल्पनिक राशियाँ क्वाण्टम की
ये—पी. के. जे
यह आर रेडियस का
ये अक-पक्ति के चित्र अनेको रूपो म!!
पर यह क्या है?
ये काव्यात्मक पक्तियाँ अक के जगल मे
कैसी सुलगी!!
यह क्या है कुछ आत्मचरित्रात्मक गहरा,
अको पर भी मन के डको का पहरा है!!

मैं हूँ पहाड़ की चोटी पर

हाथ में उसी वैज्ञानिक की
बस वही गणित-कापी विचित्र
ले खड़ा हुआ।
पास में भव्य दानवाकार तोप-सी एक
मुँह ऊँचा किये रश्मि-तृषिता
वह दूरबीन
देखती खड़ी तारे नवीन !!
गुरु के ग्यारह चन्द्रों में दो को ग्रहण लगा।
उस वैज्ञानिक के समीकरण
सूत्रों के सत्य-परीक्षण में सलग्न यहाँ
देखता हूँ कि
काले पहाड़ के पीछे से
रात्रि के गोल गुम्बज का स्याह किनारा ही
चिर गया व उस गहरी दरार में से भीतर
अपरिसीम दूरियाँ
महकती हुई सचेत प्रवाहित हो
गम्भीर गहन ध्वनि-आन्दोलन कर उठीं

एक-एक ध्वनि-तरग अनुवादिता प्रकाश-तरगों में
वे आसमान में रग-बिरगी प्रतीक शत
ज्यामितिक भिन्न रूपाकृतियों में नाच उठे
क्षण उद्भासित
क्षण विलयित
पुन प्रकाशित वे
काले पहाड़ की चोटी को
उद्भास-क्षणों तम-हायफनों द्वारा नभ से जोड़ने लगे
तब मुझे भान हो उठा
कि कोट्यावधि नेत्रों से बिल्कुल दूर हटा
सैकड़ों पीढ़ियों की आँखों से कर ओझल
जो ढाँका गया छिपाया गया जबर्दस्ती
कोई रहस्य
प्रस्फुटित हुआ कि एक एक प्राप्त कर वेग
प्राप्त मस्ती
कि दाबे गये भाव-अनुभव की गहन वेदनामयी महक
लेकर अपार दूरियाँ अतल विस्तार विचारात्मक
हैं फूट पड़ीं
शब्दाभिव्यक्ति, पर, मिल न सकी
इसलिए रग-सकेत किरण-भाषा में नाच उठीं !!
वे भावविभोर...
अब दुनिया के सामने !!

अब यह मेरा कर्तव्य
कि रंग-बिरंगी इन
शत किरण-तरंगों को
गणितिक भाषानुवादिता कर डालूँ
फिर उनकी गणितिक अभिव्यक्ति
साहित्यिक शब्द-रंग-ध्वनि में बदलूँ पर यह
आश्चर्यजनक प्रक्रिया
और भी महद् बृहद् आश्चर्य प्रसूत
कर रही है
अनुवादित गणितिक अंक
यहाँ देना फजूल है,
वे क्वाण्टम की राशियाँ
कि मस्तक-शूल तुम्हारे लिए कठिन अत्यन्त।
प्लैंक्स कॉन्स्टेण्ट-हाशिया
अंक यहाँ देना फ़जूल
ज्यों वैज्ञानिक विचार-यात्रा
नव विद्युत-चुम्बकीय जग से
अणु-केन्द्रीय जगत् में पहुँची थी
त्यों आप भी सहज
केन्द्रीय जगत् में जायेंगे।

ध्वनि से छन किरण-तरंगों में
परिणत हो गणितिक अंकों में !!
उस वैज्ञानिक के स्वर भाषा में अनुवादित
मैं मात्र एक सम्पादक हूँ।
यह निर्वैयक्तिक कार्य।

घने अँधेरे में सुदूर गैसलाइट-सा
वह जल रहा सूर्य
अकेली नीली किरणें फेंक रहा है
नीली-पतली।
उड़े हुए काले रंग-सा है अपरिसीम
वह दिगवकाश
रश्मि-विकीरण नहीं स्याह शून्य में यहाँ
गुरुत्वाकर्षण विविध ग्रहों के
दिगवकाश की सचिन्त
सलवट रेखाओं से
गतिविधि पैदा करते।
बहुत देर के बाद,
बहुत दिनों के बाद,

कई प्रकाश वर्ष गणना के बाद
एक कहीं कोई नव अतिथि
कि आता ज्योति-जगत
तब तिर्यक पथ सर्वविदित
होने लगता उसका
तब ब्रह्माण्ड धूल के
मद्धिम धुंधले परदे
उजल-उजल उठते हैं आगत किरणावलि में।

भव्य कुण्डली मार
दीप्त ब्रह्माण्ड-नदी के तेजस्तट पर
खड़ा हूँ मैं
वैज्ञानिक
देख रहा हूँ तुमको।
और कि तव छाया मेरी
ब्रह्माण्ड अनेकों पार
दूर पृथ्वी पर फैल रही है
जहाँ कि तुम हो

काल दिक नैरन्तर्य शिखर से बोल रहा हूँ।

ओ विराट के कथित
खण्ड बननेवालो
आततायियो
स्वयं महत्त्वशालियो
अरे तुम्हारी छाया दूर नेब्यूला में भी
मैंने नापी
और वही पाया जो सचमुच तुम हो
गटर गिरे मिट्टी के ढले के स्पेक्ट्रम हो।
यद्यपि विष प्रदान कर तुमने
हत्या कर दी मेरी वैज्ञानिक की
फिर भी मैं जीवित हूँ
परम्परा-सा
मेरी एक भाव धारा है।
नव-आविष्कृत समीकरण के सूत्र
चुराकर जला दिये तुमने
बेबिलान नर इस्लाम-पर्सिपोलिस ललाम
तब्रीज सिकन्दरिया की लाइब्रेरियाँ जलीं
पर आसमान श्याम न में ग्रह-तारामण्डली
असंख्य दीप्त नक्षत्र सूर्य-अवली

ज्ञान-सूत्र मे बँधी व बँधती गयी
यद्यपि बुद्धि वधिक
क्षण विजयी थे,
अब भी हैं।
अब उनका काम—
लोक-मस्तक में काले भ्रम-आवर्त
सतत पैदा करना !! पर कब तक
इतिहास नही लेता पल-भर आराम
वे समीकरण के सूत्र पुन आविष्कृत होंगे।

मेरा क्या था दोष ?
यही कि तुम्हारे मस्तक की बिजलियाँ
अरे, सूरज गुल होने की प्रक्रिया
बता दी मैंने
सूत्रो द्वारा।

तुम्हारा अन्तिम दिन अ-रोक आ रहा
दुष्ट भाव का सर्प हृदय से कण्ठ
कण्ठ से आगे उस मस्तिष्क-कोष मे घर बना रहा
तुम्हे मृत्यु-अक्षर सफेद
दिख रहे क्षितिज पर स्पष्ट
व बडे-बडे !!
लेटे-लेटे औ' खडे-खडे
चलते-फिरते सोते व जागते
उन्हे देखते हो।
सुनो कि तुम पीली दिवाल पर
परछाईं जुलूस-से सूने गुजर जाओगे
और तुम्हारे अत्याचारी मुख के चित्र
अमर्त्य रहेंगे
चट्टानो की परतो की सतहों के भीतर
फासिल बनकर !!
किन्तु अभी तो
एक कठिन विस्तीर्ण ठूँठ
से खडे हुए तुम यद्यपि
—जडें बहुत बूढी हैं
किन्तु बहुत मजबूत
चूसती प्राण धरित्री के
हजार सूखी शाखाएँ या हजार बाँहे
पंजे औ' उँगलियाँ
किसी दुष्ट तान्त्रिक की नृत्य-हस्त-मुद्राएँ

मानो नाच रही
नभ नीली पार्श्वभूमि मे बिदा तुम्हे।

यद्यपि इधर उधर कुछ अटके पात
इधर-उधर की शिखर डालियो मे
किन्तु भीम तुम ठूँठ किसी आघात
वात से अध पतित होग।

अत सुनें ठूँठ के आश्रयान्वेषीगण
सघन लता से ऊर्ध्वोन्मुख
झखाड ठूँठ पर चढ
महसूस कर रहे है सर्वोच्च स्वय को।
सुनें व कि जो अपने अन्तर
म बसते सहचारी अनुभव
के निर्णय सुनने की क्षमता
कतई नही रखते हैं।
सुनें वे कि जो वर्तमान ढूँहो के खँडहर
से यो आतकित
कि पत्थरो के आकार व इंटो के घनरूप
देखकर दब जाते हैं
सुनें वे कि जो दबग अत्याचारी मुख की
सलवट हलचल ही से भय खा
अपने अनुभव सवेदन को त्याग
यूँ ही अजनबी विचारो साथ
बहे जाते हैं।
सुनें वे कि जो
नित्य अन्य की देह शिरा म
रक्त-नसो मे—एक अजनबी
हृदय स्पन्दन स धक्के खाकर—
रग मार्गों म घूम रहे हैं
सूक्ष्म श्वेत जीवाणु सरीख
परोपजीवी।

लाभ-लोभ-यश-अहकार के
चक्कर म ये विभव विलासी किन्तु साथ ही
सास साँस म उन्हे चिरन्तन दु ख कि दचक गया है
पिचक गया है
आत्मा का घट
वे विराट के कथित खण्ड
हैं पोने अटपट

फिर भी उनम से कुछ की मरी नही है आत्मा,
फिर भी हुआ नही है खात्मा !!

अत सुनें वे लोग
कि मेरे कुछ अभियोग
जो कि उन पर हैं

लोगो—
एक जमाने मे जो मेरे ही थे,
बहुत स्वप्न द्रष्टा थे,
कवि थे, चिन्तक और क्रान्तिकारी थ
क्या हो गया तुम्हें अब—
प्रतिदिन कर उपलब्ध सत्य
अब खो देते अगले क्षण ही
निज द्वारा अनुसन्धानित होते हैं अन्तर्हित
बाहरी जिन्दगी के हो-हल्ले मेले मे
अपने अनुभव के पुत्र गवाँ देते हो क्यो
क्यो बिछुडे तुम अपनो ही से !

जिस आत्मज को
कन्धे पर रख
तुम गये घुमाने वही हुईं,
दुर्घटनाएँ—वह गायब था
कन्धे पर अब रह गयी मात्र उसकी छाया
या शून्याकृति
जीवन की श्यामल खानो से
मणि-रत्न निकाले, पर ज्यो ही वे प्राप्त हुए
क्षण भर चमके
मानो कि चन्द्र-मणि प्रद्योतित
पर, जाने तुमने कहाँ अटाले म डाला
वे बुझते चले गय आब खोकर
ऐसा क्यो हुआ ?
गहराई मे धँसकर तुमने
मननीय या कि महनीय
निकाला जो भी था—
जाने किस गडवड म तुमने खो दिया उसे
अपने ताजे-जनमे शिशुओ को
खानेवाले अनेक पशु
आत्मा भी सत्य अनेक
इस तरह खाती है।

वह काले-काले बाल-ढँका
अत्यन्त प्रदीर्घ मूर्ख जबडा।
दाँतो के बीच बीच लहराते रक्त-ताल
मुख-अन्तराल मे जिसके वह माता शूकरी
तुरत खा गयी
ताजे-जनमे पुत्रो को ही।
चमकदार पथरीली आँखोवाली वह
उद्दण्ड चतुर मार्जारी भी
सद्योजातो को हडप गयी
उसकी मूँछो के लम्बे-लम्बे बाल
रक्त से स्नात
वह मूर्ख शूकरी और चतुर मार्जारी भी
अन्तस्तल की वासिनी तुम्हारी है।
अब अनुभव-जनिता तडिताघात ज्योति
मे आस्था रह न गयी
इसलिए कि आत्मा
एक चोर-सचालित सस्था
लोभ-लाभ यश अहकार के स्रोत
आज सगठक और सरक्षक हैं
इस सस्था के
इसलिए छोड अपना स्वदेश वह वास्तव अनुभव-लोक
गये दूसरी ओर
दूसरे शिविर मे।

लोगो, एक जमाने मे
तुम मेरे ही थे
बहुत स्वप्नद्रष्टा चिन्तक थे कवि थे
क्रान्तिकारी रवि थे।।
अब कहाँ गये वे स्वप्न
उन्हें किस कचरे के ढेर मे
यत्नपूर्वक जला दिया
उदरम्भरी बुद्धि के मलिन तेल म
स्वय को गला दिया धातु-सा।
इस विषम जगत्
के शोषित पथ
की करुणाओ से जब आत्मा
मे गर्भ-धारणा हुई
व सत्य-भ्रूण उन्मुक्त विकसने लगा
कि तब,
तुम लज्जित थे।

तुम भ्रूण अवैधानिक समझ
उसको इरादतन गिरा दिया
आँख से दूर
तब तुम उस पुल पर गये
कि जिसके नीचे के तल मे
शहर की सभी नालियो का नाला
काला गँदला बहता जाता !!
कि जिस पुल की मुँडेर से लगकर डिसपेन्सरी
हवा से डरी
अँधेरी, चौकस,
एक मूँछवाली डाक्टरनी !!
गिरा दिया तुमने इरादतन भ्रूण
दूर, आँखो से ओझल शून्य एक रात मे !!

तुमसे विभिन्न वे मेरे हैं प्रियजन
जो यद्यपि शैल नही न शिला-से
भव्य !!
वे साधारण मिट्टी के कण
पर उनमे गतिमय तडित्-बुद्धि उर्मिला
ओ मेरे प्रियजनो
मेरे अपनो
तुम नही राजसिंहासनस्थ
तुम नही भव्य
तुम तुच्छ और तुम क्षुद्र
किन्तु तुम रुद्र
कि तुम हो भीषण क्षोभ
अग्नि के हव्य
तुम काल-सिंह-आसनस्थ !!

तुम मेरी परम्परा हो प्रिय
तुम हो भविष्य-धारा दुर्जय
तुममे मै सतत प्रवाहित हूँ
तुममे रहकर ही जीवित हूँ
तुम मृत न मुझे समझो।

मेरी भविष्यवाणियाँ सुनो !!

उग रहा तुम्हारे अन्तर मे सिर उठा,
एक कण्टक पौधा
जो ठाठदार

मौलिक सुनील—
वह मैं ही हूँ !!

वह ऊँची एक नील कोंपल
जिसके प्रदीर्घ पत्तों में बड़े-बड़े काँटे
औ' पत्र-कगारों पर ऊँचे खुरदुरे शूल
कि पत्तों के पिछले हिस्सों पर
सूक्ष्म बहुत बारीक
कण्टकावलियाँ
वे सोने तुम्हें नहीं देंगी
चलते में फिरते में
उठते व बैठते में
सोते में खाते में
वे चुभती जायेंगी।
कि धारणकर अन्तर में कण्टक-तरु
चेहरे पर धूल-धूल औ' मरु-प्रसार
चमकेगा !!
चट्टानी चिलचिलाहटें होंगी आँखों में !!
हाथ-पैर ये धूल-सने बन जायेंगे।

नीला पौधा—
यह आत्मज
रक्त-सिंचिता हृदय-धरिनी का
आत्मा के कोमल आलवाल में
यह जवान हो रहा
कि अनुभव-रक्त-ताल में डूबे उसके पदतल
जड़ें ज्ञान-संविदा
कि पीती अनुभव
वह पौधा बढ़ रहा
तुम्हारे उर में अनुसन्धित्सु क्षोभ का बिरवा
वह मैं ही हूँ !!

इन नील सकटक पत्रों में है इत्र
प्रेम का
भव्य जिन्दगी का सत है।
कि तेल प्रदाहक है प्राण के नेम का
पर काँटे हैं—
विक्षुब्ध ज्ञान के तीव्र
उद्विग्न वेदनापूर्ण क्षोभ की नोक···
···वे चैन न लेने देंगे !!

जब किसी निदारुण तेज़ हवा के झोंके मे
डालियाँ हिला
लहरायेगा विक्षुब्ध नील पौधा
सविद्ध हृदय
तब प्राण-प्रदाहक तेल-क्षोभ स एक
रासायनिक भाप-सा भभक
भक् से उड जाता-सा प्रतीत होगा।
बेचैनी म
लहराते काँटो द्वारा वे
फट जायेंगे गहरे परदे
सब भीतर के।
तब वही वास्तविक अभ्यन्तर
जो भी कुछ है
प्रत्यक्ष उपस्थित सत्ता-सा
भास्वर होगा।
तब जडीभूत आन्तरिक व्यवस्था के पत्थर
अनवस्था की परिणति म
रीत जायेंगे
वे सतही सामजस्य, मार
चीख जगली,
एक झटके मे ही
टुकडे-टुकडे हो जायेंगे।
औ' जीवन-मन के सुन्दर-सुन्दर समाधान
सन्तोष और सन्तुलन
रुचिर औचित्य, उचित अभिरुचि के रग
कि रग-बिरगे काँच-कगनो से
सब छिन्न-भिन्न होगे।
महसूस करोगे तभी
कि शीर्ष कुण्ड म धधक
ज्वाला प्रभीम जग उठी।

ये अनुसन्धानी जडें
तोड देंगी चबूतरा
और वहाँ से पकड पृथुल दीवार
चढेंगी शिखर
व फोड देंगी गुम्बज
फाड देंगी अन्तराल
औ' लाख लाख फूलो के पीले नेत्र
गूढ जिज्ञासा के
देखते रहेंग सारा बजर प्रसार

प्रियजनो
मेरी भविष्यवाणियाँ सुनो
तुम मेरी परम्परा हो प्रिय
आगे बढ़नेवाली दुर्जय !!

वे उन्मूलनकारी है तीखे शूल ··
वह क्रियावान वेदना
तुम्हे भटकायेगी
कि देश और देशान्तर में
महकती हुई पागल किसी गन्ध के पीछे दौड़े जाओगे
वनाच्छन्न पाताली प्रान्तर मे
तुम किसी रत्न के पीछे
दक्षिण दिशा करोगे पार
अन्धकार यम-द्वार पारकर आओगे।
औं' नियम-उपनियम-यम उदार
खोजकर लाओगे रत्नान्वेषण के
मिट्टी के ढेले मे किरनीले कण
तुम उठा लाओगे यूरेनियम रेडियम
किन्तु तब काले होंगे हाथ
जलेंगी सभी उँगलियाँ और
मात्र स्पर्श से मात्र महक से ही
मिट्टी के पत्थर के स्तर की आयु
बता सकोगे
पृथ्वी के भीतर तल के स्नायु
किन्तु मटमैली श्याम हथेली पर घट्टे होंगे
चेहरे पर होंगे दाग स्याह काले
तभी निज भद्रवर्ग से होंगे तुम बाहर
देहाती-जैसे पैर
गठीले रस्सीले होंगे।
अज्ञातवास बारह वर्षों का निश्चित है
तुम घर छोड़ोगे, पत्नी छोड़ोगे
पैसे-पैसे के लिए पेट के लिए मरोग और
साथ न छोड़ोगे पागलपन भी
अपने मन का।
मन की कुठार अनुसन्धानी
खोदेगी तोड़ेगी ढेल-टीले
वह बेचैनी की लौह नोक है चमकीली।
वह नदी-नदी के घाट-घाट ले जायेगी
खेत-खेत कोयला-खान में घूमोगे
मरुभूमि और सूखे पहाड़ के शिखरों पर

तुम भटकोगे।
भौंहों पर खूब धूल होगी।
उन परित्यक्त गाँवों मे भी
अत्यन्त सघन आधुनिक नगर के ध्वस्त भयद
पिछवाड की गलियो म भी
मलिनाधार मे भटकोग।
वह क्रियावान वेदना
तुम्हार चहरे पर
पोतगी चिन्ताभरी अनकानेक कालिमाए।।
तुम नित्य विचारो को आचारो म परिणत
करने के हित
नैतिक स्व भान औ विश्व भान म होकर रत
तुम उलझोगे दुनिया के उन
लोहे के काल पुर्जों जैस सटर पटर
असबाब अटाले-जैसे प्यारे नारी नर
तुम उन्ह मोडना और जोडना चाहोगे।।
तुम उसी उपेक्षित मानवता की काल-कोठरी मे
रोना भी चाहोग।
पर अपन वग कबीले स तुम बिछुडोग।।
भूमि के गहन गर्भान्धकार म घुसकर तुम
कोयला खान मे पहुचोगे
सावले हाथ होग कजलाया मुह होगा।
औ काजल-सेन गाल पर भी
तुम निन्दित नित्य रहोगे
लाछित भाल
शनिश्चरी छाया के बण्टाढाल।
उगा तुम्हारे अन्तर म
सत्यानासी का वृक्ष
कि जिसके नील पात
कि जिसके पीले फूल
कण्टकपूरित वृक्ष।।
कि अन्तर भेदी मूल
तुम हो उर-कटार
भटकटैया-आकार
कि थूहर रूप
वही मैं हूँ।।
तुम मेरी परम्परा के अगले चरण उदार।।
अरे सनातन भार।

भव्य हजारो साल पुराने ओ बूढ उस्ताद

तुम्हारी क्रियावान वेदना
कि क्या कहना—।।
तुम बाजार मे खडे
स्वय जलती मशाल
औ पुकारते
जिसे फूँकना हो अपना घर
चले हमारे साथ।।
शनिश्चरी छाया के वण्टाढाल
निन्दित नित्य रहोगे जग म प्रतिपल लाछित भाल
ब्रह्म-रन्ध्र म गूँजेगा फिर द्रोही अनहद नाद
ओ बुजुर्ग उस्ताद
ऐंडे-बेंड बहुत सवाल पूछते अपनी दुनिया से
फाँकोग तुम धूल राह की औ' खाओगे राख
रहोगे प्याम-के-प्यास
और तुम्हारे बच्चे भूखे रह मांगेंगे भीख
दोग केवल सीख।
मन के सूरज की गर्मी स हो जाओग खाक।।
तुम दुनिया की लीक काटकर
कट जाओगे।
और बनेगी नही कही दरगाह
सिर्फ मोटा पत्थर।।
कि तुम्हारी छाती पर
नय सयाने लोग नही वे प्रश्न पूछनेवाले है
कि छिनगा उनका घर।।

भाई मेरे
यह भविष्य तुम खूब जानते हो
आगे की यात्राएँ तम-पूरित दिखती हैं
पर तुम रहते हो आकाशीय स्वप्न म यो कि

भोजन के समय कि कौर उठा
आये मुँह तक कि एक झटका
अकस्मात् दिखती हैं चारो ओर
अमल दिक्काल-दर्पणावलियाँ ही
उनमे उदास भूखी मुख छवियाँ झलक उठी
रास्ते के कागज खाती भूखी गायें वे,
घूरे पर अन्न बीनती ग़रीब माँएँ वे,
गन्दे कटाह माँजते हुए बालक-चेहरे
हाय रे।!

रह गया हाथ मे कौर
कि मुँह तक जा न सका
अभ्यन्तर से विद्युत्-धक्का
गीला-गीला रोमाच
सहमती आँच
हृदय मे करुणा-लहर-उछल
मस्तक मे विचार-आस्फाल
तुम थाली छोड उठे
भूखे लेटे
यह कण्ठ फटा अश्रु से, और
छाती मे पृथुल बर्फ के खण्ड
जमे-अटके—
यह उखडी-दुखती साँस—एक काली रस्सी
खीच न बाहर पाओगे उससे
तितर-बितर कर नही सकोगे तुम
हिमीभूत आँसू के प्रस्तर-क्षण !!

एक साँस मे खीचो सब ओषजन !
भरो शून्यावकाश की
नव विद्युत-चुम्बकीय गति की तरग
घुटनो मे।
वक्ष मे भरो
उत्तर-ध्रुवीय अन्तरिक्ष पवन के दीप्ति-स्तर
अरोरा-लाल बोरियेलिस
शत रग-बिरगे विद्युन्मय कण भर लो
छाती मे।
पूरा समेट शून्यावकाश,
ब्रह्माण्ड काल-दिक्
करो विश्व का पूर्ण आत्मविश्वास प्राप्त !!

भागो, लपको,
अब करो तडित् चुम्बकीय गति से
पार सडक··
यह बहता हुआ शोर
धूल औ' खाक कर पार
कोट्यावधियो की पोशाक
पहन
कपडे मटमैले
आलीशान इमारत के पिछवाडे पहुँचो
जहाँ कि काली गलियो की

अति श्याम रंग फैण्टेसी
अट-सट अँधेर, धुँधलका,
मैला पानी, गन्दी साँस, उबास
सभ्यता की सण्डास कि चोरी और मुचलका
राख, भाग्य का फेर
चौड़े भाँडे, मैले बर्तन पड़े ढेर-के-ढेर
काले कटाह
भीषण कटाह
मलते पीले मटमैले बालक नि सहाय
जा घुसो उन्ही में तडित् प्राय
तुम हाथ लगाओ, बर्तन मलो बहुत तेज़ी से
गलो हृदय मे ।।
उनकी स्याह निराशा आँखो म आँजो
बर्तन माँजो
उतर जायें सब मोटे छिलके
घिनी सभ्यता के।
आत्मा का घट रिसे कि ढुलके
किन्तु न रोओ यो करुणा से हाय अबेर-सबेर
अभी माँजना कई कटाह ढेर-के-ढेर ।।

भागो, लपको, पीटो-पिटो
कि पियो दु ख का विष
उस मनुष्य-आमिष-आशी की जिह्वा काटो।
पियो कष्ट, खाओ आपत्ति-धतूरा, भागो
विश्व तराशो, देखो तो उस दिश्

बीच सडक मे बडा खुला है एक अँधेरा छेद,
एक अँधेरा गोल-गोल
वह निचला-निचला भेद,
जिसके गहरे-गहरे तल मे
गहरा गन्दा कीच।
उनमे फँसे मनुष्य
घुसो अँधेरे जल मे
—गन्दे जल की गैल
स्याह भूत-से बनो, सनो तुम
मैन-होल से मनो निकालो मैल
काल-अग्नि के बनो प्रचण्ड हविष्य
जब कि सभ्यता एक अँधेरी
भीम भयानक जेल—
तोडो जेल, भगाओ सबको, भागो खुद भी ।।

अपने रंगों को खोजो,
हरिया-तूता, आक, धतूरा काम आयेंगे।
चट्टानी परतों पर धूप-चिलचिलाहट
भी उपयोगी है।।
पत्थर के थर-के-थर में जो
बन्दी है किरनों के कण-कण
उन्हें निकालो।
बहुत काम ये साबित होंगे।
उनमें भर, ग़ज़ब की तेज़ी
गरम रंग है।।
पृथ्वी के भीतर के तंग पथों पर जाओ
यूरेनियम-रेडियम प्रणाली
काली और कोयलेवाली खानें बहुत मिलेंगी
रंग अनेकों देंगी तुमको।।
करो रंग-उत्पादन मिश्रण।।
तुम मिश्रण के रासायनिक सूत्र भी खोजो
उत्पादन की पद्धति आवश्यक है
धूल-ईंट के सस्ते रंग भी बहुत काम के
कलाकार से वैज्ञानिक फिर वैज्ञानिक से कलाकार
तुम बनो यहाँ पर बार-बार
इन्हीं विविध रंगों द्वारा ही
मन के अपने अभ्यन्तर के रूप
कर सकोगे तुम अंकित
तभी कठिन मैली कटाह मलते बालकगण
किसी साँवली शून्य गली के चित्रित होंगे
तभी सड़क के बीचोबीच कि खुले छेद में
भीतर बदरंग भूत कर सकोगे तुम अंकित।
अनुभव-वृद्धा माँओं
दढ़ियल बूढ़े दद्दाओं के रंग
साधना काफी मुश्किल।।

करो प्रयास भयंकर,
आत्म-निपीड़नकारी वे ग़लतियाँ
कि भाव-प्रवर्तनकारी भव्य सुधार प्रभास्वर
के संयुक्त प्रयास मार्ग से गुज़र चलो तुम
अग्नि-परीक्षाओं से गुज़रे यह परम्परा
मेरी प्रियजन वदन दीप्ति-भास्वरा
यह भविष्य-धारा अजया।।

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद। राजनांदगाँव। **भूरी-भूरी खाक-धूल** में संकलित]

साँझ और पुराना मैं

हो जाया करता उदास
मन स्वजनो की यादें पसार
नीले अँधियालेभरी साँझ
के झुकते पल मे निराकार।
व्योम के धुले सम्पन्न रग
साँवले वस्त्र मे ढँकते अपने खुले रग।
उस बुझने की बेला उदास
मे, आखो मे कितने प्रसग कितने बिछोह
जीवन के आरोहावरोह
अपने प्रियजन के बाट जोहते हुए पत्र,
कितनी यादो के स्नेह-दृष्टि माँगते चित्र।
भीतर के सब व्यवधान चीर
गम्भीर स्नेह-मूर्तियाँ उभर आती हैं आँखो मे अधीर

आभाओ के उस विदा-काल
मे, अकस्मात्
गम्भीर भान मे डूब अकेले होते-से
वे राहो के पीपल अशान्त
बेनाम मन्दिरो के ऊँचे वीरान शिखर
प्राचीन बेखबर मसजिद के गुम्बद विशाल
गहरे अरूप के श्याम-छाय
रग मे विलीन होकर असग होते
मेरा होता है घना साथ क्यो उसी समय
सबसे होता एकाग्र सग।
मुँद जाते हैं जब दिशा-नयन
खुल जाता है मेरे मन का एकान्त भवन
अब तक अनजाने मर्म, नाम ले-लेकर क्यो
पुकारते हैं मुझको
मानो उनमे जा बसने को बुला रहे हो।
तब एक कल्पना-स्वप्न आता-सा
कोई पढता है मेरा लिखा उपन्यास
घबराती बेचैनी मे उत्तेजित विचार के
जी भर आता-सा
कोई उदात्त अस्तित्व साँस लेता है

उसके आस-पास
हाँ आस-पास । ।

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद । राजनादगाव । कल्पना, अगस्त 1967, म प्रकाशित । भूरी-भूरी ख़ाक-धूल मे सकलित]

विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर

एक आवाज़

ये सब—हम है, यह जमीन है
यह जगह जहाँ
सब बँधे खडे
जिनके मुँह से
प्रज्ज्वलित गैस-सी साँस आग
वे बडे करिश्मेवाले
गहरे स्याह तिलिस्मी तेज़ बैल
तगडे-तगडे
अपने-अपने खूँटो से सारे बँधे खडे ।
यह खूँटा—स्वर्ण-धातु का है
स्वार्थक ज्योति का है
आत्मैक प्रीति का है । ।
जो दिव्य चिरन्तन अनन्त अब तक कहलाता
वह युगानुयुग से तना हुआ
कोमल उदार आकाश
मनोहर व्यापक स्वप्न
अरे, काग़ज-छत-सा
वह अकस्मात् भभका
जल उठा किसी दुर्घटना से
वह दुर्घटना क्या है, क्या है !
आज के उठाईगीर ज़माने म दिनभर
क्यो जी मितलाता रहता है ?
वह भभक अचानक है
आदमी बदल जाने की यह प्रक्रिया भयानक है ।

(अब स्वर्गारोहण करता रहता यह भूमिनाश का धुआँ)

हमने सब चीर-फाड देखा
सब ताक-झाँककर देख-भाल रक्खा
सबको नगा उघाडकर, हम भी उघड गये
सबको उधेडकर, खुद उघडे।
अनुभूत सत्य के प्रेतो स भर गया हाय
ब्रह्माण्ड कुआँ
क्या किया
हाय रे! हमने यह क्या किया!
जल गया नील आवरण
श्याम है गगन।

काला-काला फैलाव दूरियो का सिर पर
लहराता स्याह सिफर
इस हाथ और उस हाथ।
गम्भीर!!
हमारा चेहरा स्याह गोल धब्बा
जो चला हमेशा साथ, हमेशा साथ
हम किसी भयकर उपग्रह के
टेकडी-शीश पर खडे-खडे
बिगडे चिल्लाये एक-दूसरे पर
अपनो से खूनाखून लडे!
यह सही है कि वह गगन-दहन
था एक चरण युग का
वह युग जिसमे कि प्रजापतियो का
दृप्त व्यभिचरण था।
यद्यपि काले शून्याकाशी फैलावो मे
मानव-जग का था नाम नही
फिर भी, फिर भी,
दूर ही सही,
सुन्दर रहस्यमय चन्द्रलोक सामने
बराबर दिखता था
जिसका उडता प्रकाश-अचल थामने
स्पष्टतर नये साहस-प्रसग की क्षमता भी चाहिए
दीखता शून्य मे कोटि योजनो दूर सूर्य
पर, उससे निज सम्बन्ध बनाने की इच्छा
को धमकाता रहता विचित्र-सा भय
विचित्र आशय —
'हमको अपना घूरा प्रिय है
निज के ऊँचे कचरे के ढेर-शीश पर ही
जीना मर जाना श्रेयस्कर

घूरे का घर, घर का घूरा
अपना-अपना सबको प्रिय है
बस उसी हमारी कक्षा म निज रक्षा है।'

काले सूने उस अन्तरिक्ष बिस्तर
पर लेटा है बेफिक्र
अरे, कोई विचित्र ! !
वह कौन,
कौन वह
—हाँ, नि सग विराट्
ले रहा भीषण खर्राटे
हम सन्नाकर सुन रहे भयानक सन्नाटा
यह वही शून्य का ज़ोर
हमारी वर्तमानता का वह अद्‌भुत शोर
अनहद नाद
कि जिसस खीझे चिढे चिढे
अपने भीतर ही धँसी नोक से हमी गडे
अन्दर है एक भयद अटकाव
कहाँ हम जायें !

थर्राता रहता विराट् हिम का जाडा
तन कण-कण मे
वह दुष्ट ब्रह्म कर रहा जबर्दस्ती वसूल
हमस तुमसे
यह रक्त-किराया, अस्थि-मास-भाडा
धरती पर रहने का।
अब किससे टटा करें
कहाँ हम जायें
अपनो से ऐंठा करें
जिन्दगी   एक कबाडा है,
भूतो का बाडा है।

दूसरी आवाज

उलटा-पुलटा छिछला सतही जो जिन्दापन
पल-पल के क्षण-क्षण के अपव्यय का अन्धापन
जो एक असार्थक वृथा निरर्थक
निज-केन्द्रित जीवन-यापन का गन्दापन
वह चढ़ा धड़कते दिल पर जड
चमडे की मोटी परतो-सा
मढ गया

क्या किया, जब रन्दे और बसूले से
खुद को छीला,
तो अपना खून पिया
इसलिए, अनाशा की गहरी शैम्पेन
विनाशक नशा
स्वय के गहन बोध की देन
जहरीला दु ख वहा
अपना ही खून पिया।
पर, देख नही पाये शिखरो की आकृतियाँ
आत्मा की भूमि पहाड हुई जाती हो जब
मीठे-मीठे अगारो की मनोज्ञ गतियाँ
तुम देख नही पाये उदार ज्वालाओ के सन्दर्भ
निज अश-सत्य की खण्ड-प्रतीति सहारे से
पहुँचे उजाड सुनसान उदास कगारो पार
अपना सब कुछ हारकर
तुम देख नही पाये—जीवन की भव्य चमत्कृतियाँ।

पहली आवाज

उलटा-पुलटा छिछला सतही जो जिन्दापन
उसका मैं कर्त्ता कारक कारण या उपकरण नही
वह परम्परा रूप मे
परिस्थिति-घेरे ही-सा मुझे मिला
उस एक भयानक तक्षक के सर्पिल गुम्फन
मे फँसी-बँधी भी चाय पी रही
शकुन्तला-उर्मिला।

सच, जन्म-कक्ष मे शिशु की मेरी आँखो को
दिख गया खुली खिडकी मे एक विरूपाकृति जानवर
उसने मुझको कमरे मे से ही उठा लिया
ले गया घने पेड पर भयानक जगल मे
झुरमुट मे जाकर छिपा दिया···
मानव-जग ही से चुरा लिया।
मेरा धाता-पिता और रक्षक वह वानर है।
वह मर्कट दिव्य-सृष्टि-कर्ता
विघटन मे रचना मे उसकी विचित्र आकृति
मुँह चिढा रही।
वह कवि भी है,
ब्रह्माण्ड-रेडियो स्टेशन के बरामदे मे
उसका फोटो द्युति-छवि भी है,
पर कविताएँ गडबडा रही,

प्रतिपल स्वतन्त्र व्यक्तित्व
स्वनिर्भर लीलाशील पूर्ण सत्ता
बडबडा रही ।
अनगिनत साथियो ने मेरे
देखे ही नही आत्म-तल मे
नीलाभ झील-जल मे
अपने चेहरे
कि जिसमें कभी एक मुनि को
दिख पडा अचानक मर्कट-मुख
अपना निज का
सन्ध्या के श्याम क्षुब्ध पल मे गहरे-गहरे

ज़िन्दगी यहाँ—
अनसधा अनफला थका इरादा है
अच्छे-अच्छे प्यारे-प्यारे
दिलभरे खयालो का बारीक बुरादा है ।

दूसरी आवाज

ओ घोर निराशा के अघोरपन्थी
तुम स्वय स्व-कल्पित एक किंवदन्ती
या लावारिस लाशो की काली मोटर-ट्रक
जो स्वय घोर-दृश्यो का सार-दृश्य बनती ।
जो हारा हुआ ज़िन्दगी से उसका दिमाग
हो उठे अरे, जब कभी खराब
जो एक खयाली स्याह झाग
उसका हो उठे जब कभी खौफनाक
तुम वही, तुम वही हो
नित खुली-खुली पर कुछ न देखती हुई आँख
गहरी निषेधवादी जहरीली तुम सलाख
रात मे उठे खजर की तेज़ खुदकुशी हो
जिस व्यक्ति-मूल सभ्यता-क्षेत्र म रहते हो
उसकी आसन्न-मृत्यु
का एक इशारा तुम
कारावासी तुम स्वय जगत् की कारा तुम

झूलने लगे जब व्यक्ति-व्यक्ति के आस-पास
गहरे-गहरे लम्बे-लम्बे शून्यावकाश
तब शून्य तरगो अदृश्य लहरो का
अध्ययन वेदनाकारक है
मन की काली सूनी अकादमी मे

कोई दिलचस्पी नही आदमी मे ।
इसलिए, मनोबल-ह्रास, भयानक चारित्रिक
विघटन
से प्रेरित घोर कल्पनाएँ
विद्रूप कल्पनाओ से प्रेरित व्याख्याएँ !!
सच तो यह है
इन्द्रियानुरागी जीवन के पथ पर चल पडे सभी
विक्षुब्ध अह, विक्षुब्ध उदर
विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर !!

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद । राजनाँदगाँव । **आलोचना** मे प्रकाशित । **भूरी-भूरी खाक-धूल** म सकलित]

भाग गयी जीप

भाग गयी जीप, तुम
टापते खडे रहे
हाय ! अपने आप पर
झीख-झखमारते
व काँपते खडे रहे
ठेलमठेल धकापेल
भीड मे भी वियाबान
सडक एक सुनसान
और तुम जमीन मे
गडे रहे, गडे रहे
खडे रहे, खडे रहे ।

और यूँ ही अकस्मात्
निज के ही गाल पर
चपत एक जड दी
थप्पड एक मार ली
निज के गाल पर !!

'फोडो मत नारियल
शनिश्चर के सामने
मेरा भाल फोड लो
ईश्वर के सामन'

अभागे व भयकर
वचन ये तुम्हारे
गड गये दिल मे इस
दिमाग मे हमारे

सच तो है, सच तो है
ठेलमठेल धकापेल !!

छूट गयी बस वह
चल दिये आगे लोग
बढ गये आगे लोग
फूल गये बढकर
फल गये चढकर !!
अरे, तुम्हे पीछे छोड
नये-नये मोड पर
बढने लगी बस वह।
खूब भागी, खूब दौडी
पहाडी के पास वह।

सच तो है कहना
गलत किन्तु भावना
कि जिसकी फिलॉसफी—
बस मे ही ठुँस जाना जिन्दगी की जीत है
व इस घिनी कसौटी पर कसकर
हावी हो गया मन अतः
यह आत्म-निन्दा स्वर !!
गलत यह दर्शन
गलत यह भावना

सचमुच यदि तुम
चढ जाते बस मे उस
तुम्हारी ही प्यारी इस
झाड-तले झोपडी
के लिए तुम हीन-रस
हीन-चित् हीन-सत्
उसी समय हीन-मति
तत्काल सिद्ध होते
वह तुम्हें कभी नही
अपने ठण्डे प्याऊ पर
स्नेह से पिलाती जल

हृदय का, प्राण का ! !
तुममें कुछ
अच्छाई ही शेष थी
इसीलिए घबरा गये
पकड न सके बस
और वह छूट गयी
पीछे रह गये तुम ! !

उन्नति के चक्करदार
लोहे के घनघोर
जीने में अन्धकार ! !
गुम कई सीढियाँ हैं
भीड लेकिन खूब है
बडी ठेलमठेल है
ऊपर की मंजिल तक
पहुँचने में बीच-बीच
टूटी हुई सीढियों में
कुछ फँस गये, कुछ
धडाम-से नीचे गिर
मर गये सचमुच
प्रगति के चक्करदार
लोहे के घनघोर
जीने में साँस रुक
जाने से स्वर्गधाम
कई पहुँच गये प्राण ! !

बस मिस हो गयी
कर गये मिस तुम
बहुत अच्छा हुआ यह
प्राणों में हमारे
समासीन पूर्ण तुम

समय के मारे तुम ,
केवल हमारे हो,
केवल हमारे हो ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1958 के बाद। राजनांदगाँव। भूरी-भूरी खाक-धूल में संकलित]

एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन

दु ख तुम्हे भी है,
दु ख मुझे भी।
हम एक ढहे हुए मकान के नीचे
दबे हैं।
चीख निकलना भी मुश्किल है,
असम्भव· ···
हिलना भी।
भयानक है बडे-बडे ढेरो की
पहाडियो-नीचे दबे रहना और
महसूस करते जाना
पसली की टूटी हुई हड्डी।
भयकर है ! छाती पर वजन टीलो
का रखे हुए
ऊपर के जडीभूत दवाव से दबा हुआ
अपना स्पन्द
अनुभूत करते जाना,
दौडती रुकती हुई धुकधुकी
महसूस करते जाना भीषण है।
भयकर है।
वाह क्या तर्जुबा है ! !
छाती मे गड्ढा है ! !

पुराना मकान था, ढहना था, ढह गया,
बुरा क्या हुआ ?
बडे-बडे दृढाकार दम्भवान
खम्भे वे ढह पडे ! !
जडीभूत परतो मे, अवश्य, हम दब गये।
हम उनमे रह गये,
बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ ! !
पृथ्वी के पेट मे घसकर जब
पृथ्वी के हृदय की गरमी के द्वारा सब
मिट्टी के ढेर ये चट्टान बन जायेंगे
तो उन चट्टानो की
आन्तरिक परतो की सतहो मे
चित्र उभर आयेंगे
हमारे चेहरे के, तन-बदन के, शरीर के,
अन्तर की तसवीरें उभर आयेंगी, सम्भवत ,

यही एक आशा है कि
मिट्टी के अँधेरे उन
इतिहास स्तरों में तब
हमारा भी चिह्न रह जायगा।
नाम नहीं,
कीर्ति नहीं,
केवल अवशेष, पृथ्वी के खोदे हुए गड्ढों म
रहस्यमय पुरुषों के पंजर और
जंग-खायी नोकों के अस्त्र ! !
स्वयं की जिन्दगी फॉसिल कभी
नहीं रही,
क्योंकि हम बागी थे,
उस वक्त
जब रास्ता कहाँ था ?
दीखता नहीं था कोई पथ।
अब तो रास्ते ही-रास्ते हैं ! !
मुक्ति के राजदूत सस्ते हैं।

क्योंकि हम बागी थे,
आखिर, बुरा क्या हुआ ?
पुराना महल था,
ढहना था, ढह गया।
वह चिड़िया,
उसका वह घोंसला·
न जाने कहाँ दब गया !
अँधेरे छेदों में चूहे भी मर गये,
हमने तो भविष्य
पहले कह रखा था कि—
केंचुली उतारता साँप दब जायगा अकस्मात्,
हमने तो भविष्य पहले कह रखा था।
लेकिन अनसुनी की लोगों ने ! !
बस, चूँकि
हम दब गये, इसलिए
दुःख तुम्हें भी है,
मुझे भी।

नक्शीदार कलात्मक कमरे भी ढह पड़े,
जहाँ एक ज़माने में
चूमे गये होंठ,
छाती जकड़ी गयी आवेशालिंगन म।

पुरानी भीतो की बास मिली हुई
इक महक
तुम्हारे चुम्बन की
और उस कहानी का अगारी अग स्पर्श
गया, मृत हुआ !
हम एक ढह हुए
मकान के नीच दबे पड हैं।
हमने पहल कह रखा था महल गिर
जायेगा।
खूबसूरत कमरो म कई बार
हमारी आँखो के सामन,
हमारे विद्रोह क बावजूद
बलात्कार किय गय
नक्षीदार कक्षो मे।
भोल निर्व्याज नयन हिरनी-स
मासूम चेहर
निर्दोप तन-बदन
दैत्यो की बाहो के शिकजो मे
इतने अधिक
इतने अधिक जकडे गय
कि जकडे ही जाने के
सिकुडते हुए घेरे म वे तन मन
दबत पिघलत हुए एक भाफ बन गय।
एक कुहरे की मेह
एक धूमैला भूत
एक देहहीन पुकार
कमरे के भीतर और इर्द गिर्द
चक्कर लगाने लगी।
आत्म चैतन्य के प्रकाश
भूत बन गय।
भूत बाधा ग्रस्त
कमरो को अन्ध श्याम सांय-साय
हमने बतायी ता
दण्ड हमी को मिला
बागी करार दिये गये,
चाँटा हमी को पडा
बन्द तहखाने म—कुओ म फेंके गये
हमी लोग ! !
क्योकि हम ज्ञान था
ज्ञान अपराध बना।

महल के दूसरे
और-और कमरों म कई रहस्य—
तकिये के नीचे पिस्तौल,
गुप्त ड्रॉअर,
गद्दियों के अन्दर छिपाये-सिये गय
खून-रँगे पत्र, महत्त्वपूर्ण ! !
अजीब कुछ फोटो ! !
रहस्य-पुरुष छायाएँ
लिखती हैं
इतिहास इस महल का।

अजीब सयुक्त परिवार है—
औरतें व नौकर और मेहनतकश
अपने ही वक्ष को
खुरदरा वृक्ष-धड़
मानकर घिसती हैं, घिसते है
अपनी ही छाती पर जबर्दस्ती
विष-दन्ती भावों का सर्प मुख।
विद्रोही भावों का नाग-मुख
रक्तप्लुत होता है !
नाग जकड लेता है बाँहों को,
किन्तु वे रेखाएँ मस्तक पर
स्वय नाग होती हैं !
चेहरे के स्वय भाव सरी-सृप होते हैं,
आँखों म जहर का नशा रग लाता है।
बहुएँ मुँडेरों से कूद अरे !
आत्महत्या करती हैं ! !
ऐसा मकान यदि ढह पड़ा,
हवेली गिर पड़ी
महल धराशायी, तो
बुरा क्या हुआ ?
ठीक है कि हम भी तो दब गये,
हम जो विरोधी थे
कुओं-तहखानों मे क़ैद-बन्द,
लेकिन, हम इसलिए
मरे कि ज़रूरत से
ज्यादा नहीं, बहुत-बहुत कम
हम बागी थे ! !

मेरे साथ

खँडहर मे दबी हुई अन्य धुकधुकियो,
सोचो तो
कि स्पन्द अब
पीडाभरा उत्तरदायित्व भार हो चला,
कोशिश करो,
कोशिश करो,
जीने की,
ज़मीन मे गडकर भी।

इतने भीम जडीभूत
टीलो के नीचे हम दबे हैं,
फिर भी जी रहे हैं।
सृष्टि का चमत्कार ! !
चमत्कार प्रकृति का ज़रा और फैलायें।
सभी कुछ ठोस नही खँडेरो मे।
हज़ारो छेद, करोडो रन्ध्र,
जिनमे से छन-छनकर
पवन भी आता है।
ऐसा क्यो?
हवा ऐसा क्यो करती है?
ऑक्सीजन
नाक से
पी लें खूब, पी लें !

आवाज़ आती है,
सातवें आसमान मे कही दूर
इन्द्र के ढह पडे महल के खँडहर को
बिजली की गेतियाँ व फावडे
खोद-खोद
ढेर दूर कर रहे।
कही से फिर एक
आती आवाज़—
'कई ढेर बिलकुल साफ हो चुके',
और तभी—
किसी अन्य गम्भीर-उदात्त
आवाज ने
चिल्लाकर घोषित किया—
"प्राथमिक शाला के
बच्चों के लिए एक
खुला-खुला, धूपभरा साफ़-साफ

खेल-कूद-मैदान सपाट अपार—
यों बनाया जायगा कि
पता भी न चलेगा कि
कभी महल था यहाँ भगवान् इन्द्र का।'

हम यहाँ जमीन के नीचे दबे हुए हैं
गड़ी हुई अन्य धुकधुकियो,
खुश रहो
इसी में कि
वक्षों में तुम्हारे अब
बच्चे ये खेलेंगे।
छाती की मटमैली जमीनी सतहों पर
मैदान, धूप व खुली-खुली हवा खूब
हँसेगी व खेलेगी।
किलकारी भरेंगे ये बालगण।

लेकिन, दबी धुकधुकियो,
सोचो तो कि
अपनी ही आँखों के सामने
खूब हम खेत रहे!
खूब काम आये हम!!
आँखों के भीतर की आँखों में डूब-डूब
फैल गये हम लोग!!
आत्म-विस्तार यह
बेकार नहीं जायेगा।
जमीन में गड़ी हुई देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से
खिलेंगे गुलाबी फूल
सही है कि हम पहचाने नहीं जायेंगे।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव-राग-अरुण
गुलाबी फूल, प्रकृति के गन्ध-कोष
काश, हम बन सकें!

[सम्भावित रचनाकाल 1959। राजनाँदगाँव। [illegible], 1959, में प्रकाशित]

एक अन्तर्कथा

अग्नि के काष्ठ
खोजती माँ,
बीनती नित्य सूखे डण्ठल
सूखी टहनी, रूखी डालें
घूमती सभ्यता के जगल
वह मेरी माँ
खोजती अग्नि के अधिष्ठान

मुझमे दुविधा,
पर, माँ की आज्ञा से समिधा
एकत्र कर रहा हूँ,
मैं हर टहनी मे डण्ठल मे
एक-एक स्वप्न देखता हुआ
पहचान रहा प्रत्येक
जतन से जमा रहा
टोकरी उठा, मैं चला जा रहा हूँ

टोकरी उठाना ··चलन नही
वह फैशन के विपरीत
इसलिए निगाहे बचा-बचा
आड़े-तिरछे चलता हूँ मैं
सकुचित और भयभीत

अजीब-सी टोकरी
कि उसमे प्राणवान् माया···
गहरी कीमिया
सहज उभरी फैली सँवरी
डण्ठल-टहनी की कठिन साँवली रेखाएँ
आपस मे लग यो गुँथ जाती
मानो अक्षर नवसाक्षर खेतिहर के-से
वे बेढब वाक्य फुसफुसाते
टोकरी विवर मे से स्वर आते दबे-दबे
मानो कलरव गा उठता हो धीमे-धीमे
अथवा मनोज्ञ शत रग-बिरगी विहग गाते हो!

आगे-आगे माँ
पीछे मैं;

उसकी दृढ़ पीठ ज़रा-सी झुक
चुन लेती डण्ठल, पल-भर रुक
वह जीर्ण-नील-वस्त्रा
है अस्थि-दृढ़ा
गतिमती व्यक्तिमत्ता
कर रहा अध्ययन मैं उसकी मज़बूती का
उसके जीवन से लगे हुए
वर्षा-गरमी-सरदी और क्षुधा-तृषा के वर्षों से
मैं पूछ रहा—
टोकरी-विवर में पक्षी-स्वर
कलरव क्यों है
माँ कहती—
'सूखी टहनी की अग्नि-क्षमता
ही गाती है पक्षी स्वर में
वह बन्द आग है खुलने को।'
मैं पाता हूँ
कोमल कोयल अतिशय प्राचीन
व अति नवीन
स्वर में पुकारती है मुझको
टोकरी-विवर के भीतर से।
पथ पर ही मेरे पैर थिरक उठते
कोमल लय में।
मैं साश्रुनयन, रोमांचित तन, प्रकाशमय मन।
उपमाएँ उद्घाटित-वक्षा मृदु स्नेहमुखी
एक-टक देखती मुझको—
प्रियतर मुसकाती
मूल्यांकन करते एक-दूसरे का
हम एक-दूसरे को सँवारते जाते हैं
वे जगत्-समीक्षा करते-से
मेरे प्रतीक रूपक सपने फैलाते हैं
आगामी के।
दरवाज़े दुनिया के सारे खुल जाते हैं
प्यार के साँवले किस्सों की उदास गलियाँ
गम्भीर-करुण मुसकाहट में
अपना उर का सब भेद खोलती हैं।
अनजाने हाथ मित्रता के
मेरे हाथों में पहुँच ऊष्मा भरते हैं
मैं अपनों से घिर उठता हूँ
मैं विचरण करता-सा हूँ एक फैण्टेसी में
यह निश्चित है कि फैण्टेसी कल वास्तव होगी।

मेरा तो सिर फिर जाता है
औ' मस्तक में
ब्रह्माण्ड दीप्ति-सी घिर उठती
रवि-किरण-बिन्दु आँखों में स्थिर हो जाता है।

सपने में जगकर पाता हूँ सामने वही
बरगद के तने-सरीखी वह अत्यन्त कठिन
दृढ़ पीठ अग्रयायी माँ की
युग-युग अनुभव का नेतृत्व
आगे-आगे,
मैं अनुगत हूँ।
वह एक गिरस्तिन आत्मा
मेरी माँ
मैं चिल्लाकर पूछता—
कि यह सब क्या
कि कौन-सी माया यह!
मुड़कर के मेरी ओर सहज मुसका
वह कहती है।—
'आधुनिक सभ्यता के वन में
व्यक्तित्व-वृक्ष सुविधावादी।
कोमल-कोमल टहनियाँ मर गयीं अनुभव-मर्मों की
यह निरुपयोग के फलस्वरूप हो गया।
अन्तर्जीवन के मूल्यवान् जो संवेदन
उनका विवेकसंगत प्रयोग हो सका नहीं
कल्याणमयी करुणाएँ फेंकी गयीं
रास्ते पर कचरे-जैसी,
मैं बीन्ह रही उनको।
जो गहन अग्नि के अधिष्ठान
हैं प्राणवान्
मैं बीन रही उनको
देख तो
उन्हें सभ्यताभिरुचिवश छोड़ा जाता है
उनसे मुँह मोड़ा जाता है
दम नहीं किसी में
उनको दुर्दम करे
अनलोपम स्वर्णिम करे।
घर के बाहर आँगन में मैं सुलगाऊँगी
दुनियाभर को उनका प्रकाश दिखलाऊँगी।'

यह कह माँ मुसकायी,

सब समझा
हम दो
क्यों
भटका करते हैं, बेगानों की तरह, रास्तों पर।
मिल नहीं किसी से पाते हैं
अन्तस्थ हमारे प्रेरित अनुभव
जम नहीं किसी से पाते हम
फिट नहीं किसी से होते हैं
माना अलग की और यात्रा अलग की।
वे लोग बहुत जो ऊपर-ऊपर चढ़ते हैं
हम नीचे-नीचे गिरते हैं
सब हम पाते वीथी सुसमय ऊष्मामय।
हम हैं समाज की तलछट, केवल इसीलिए
हमको सर्वोज्ज्वल परम्परा चाहिए।
माँ परम्परा-निर्मिति के हित
खोजी ज़िन्दगी के कचरे में भी
ज्ञानात्मक संवेदन
पर, रखती उनका भार कठिन मेरे सिर पर

अजीब अनुभव है
सिर पर के टोकरी-विवर में मानव-शिशु
वह कोई सद्योजात
मृदुल-कर्कश स्वर में
रो रहा,
सच, प्यार उमड़ आता उस पर
पर, प्रतिपालन-दायित्व भार से घबराकर
मैं तो विवेक खो रहा
वह शिकायतों से भरा बाल-स्वर मँडराता
प्रिय बालक दुर्भर, दुर्धर है—यह मैं विचारता चकराता
झगमार, क्रोध औ' प्यार गूँथ रहे आपस में
वह सिर पर चढ़ रो रहा, नहीं मेरे वश में
बढ़ रहा बोझ। वह मानव-शिशु
भारी-भारी हो रहा।

वह कौन? कि सहसा प्रश्न कौंधता अन्तर में—
'वह है मानव-परम्परा'
चिंघाड़ता हुआ उत्तर यह,
'सुन, कालिदास का कुमारसम्भव वह।'
मेरी आँखों में अश्रु और अभिमान
किसी कारण

अन्तर के भीतर पिघलती हुई हिमालयी चट्टान
किसी कारण;
तब एक क्षण-भर
मेरे कन्धों पर खड़ा हुआ है देव एक दुर्धर
थामता नभस् दो हाथों से
भारान्वित मेरी पीठ बहुत झुकती जाती
वह कुचल रही है मुझे देव-आकृति।
है दर्द बहुत रीढ़ में
पसलियाँ पिरा रहीं
पाँव में जम रहा खून
द्रोह करता है मन
मैं जनमा जब से इस साले ने कष्ट दिया
उल्लू का पट्ठा कन्धे पर है खड़ा हुआ।
कि इतने में
गम्भीर मुझे आदेश—
कि बिलकुल जमे रहो।
तुम दाँव अड़ाओ, तने रहो।
मैं अपने कन्धे क्रमश सीधे करता हूँ
तन गयी पीठ
और स्कन्ध नभोगामी होते
इतने ऊँचे हो जाते हैं,
मैं एकाकार हो गया-सा देवाकृति से।
नभ मेरे हाथों पर आता
मैं उल्का-फूल फेंकता मधुर चन्द्रमुख पर
मेरी छाया गिरती है दूर नेब्युला में।
बस, तभी तलब लगती है बीडी पीने की।
मैं पूर्वाकृति में आ जाता,
बस, चाय एक कप मुझे गरम कोई दे दे
ऐसी-तैसी उस गौरव की
जो छीन चले मेरी सुविधा
मित्रों से गप करने का मज़ा और ही है।
ये गरम चिलचिलाती सड़कें
सौ बरस जियें
मैं परिभ्रमण करता जाऊँगा जीवन-भर
मैं जिप्सी हूँ।

दिल को ठोकर
वह विकृत आईना मन का सहसा टूट गया
जिसमें या तो चेहरा दिखता था बहुत बड़ा
फूला-फूला

या अकस्मात् किरणांग व छोटा-छोटा-सा
मिट्टी गुम है,
सारी ठण्डी।
देखता हूँ कि माँ स्वप्निल मुसकरा रही
डोलती हुई कहती है यह—
'जब देव बना अब जिप्सी भी,
केवल जीवन-संबंधों का
पालन न हो सके इसीलिए
निज को बहलाया करता है।
बस इधर, बाँस हरी टहनी
सूखी डालें,
भूरे कल्लम,
पहचान अग्नि के अधिष्ठान
आ पहुँच स्वयं के मित्रों में
कर ग्रहण अग्नि-शिखा
लोगों से पड़ोसियों से मिल।'
खिलखिला रही सड़कें व धूम है चेहरे पर
खिलखिला रहा बेशर्म दलिद्दर भीतर का
पर, सेमल का ऊँचा-ऊँचा वह पेड़ रुचिर
सम्पन्न लाल फूलों को लेकर खड़ा हुआ
रक्तिमा प्रकाशित करता-सा
वह गहन प्रेम
उसका कषाय रेशम-कोमल।
मैं उसे देख जीवन पर मुग्ध हो रहा हूँ।

[सम्भावित रचनाकाल 1959। राजनांदगाँव। कृति, नवम्बर 1959, में प्रकाशित। चाँद का मुँह टेढ़ा है में संकलित]

अन्तःकरण का आयतन

अन्तःकरण का आयतन संक्षिप्त है,
आत्मीयता के योग्य
मैं सचमुच नहीं।
पर, क्या करूँ,
यह छाँह मेरी सर्वगामी है।
हवाओं में अकेली साँवली बेचैन उड़ती है
कि श्यामल-अचला के हाथ में

तब लाल कोमल फूल होता है
चमकता है अँधेरे मे
प्रदीपित द्वन्द्व-चेतस् एक
सत्-चित्-वेदना का फूल

उसको ले
न जाने कहाँ किन-किन साँकलो को
खटखटाती वह,
नही इनकारवाले द्वार खुलते, किन्तु
उन सोते हुओ के गूढ सपनों मे
परस्पर-विरोधो का उर-विदारक शोर होता है !
विचित्र प्रतीक गुँथ जाते,
(अनिवार्य-सा भवितव्य) नीलाकाश
नीचे और नीचे उतरता आता
उस नीलाभ छत से शीश टकराता
कि सिर से खून,
चेहरा रक्त-धाराओभरा,
भीऽपण

उजाड प्रकाश सपने मे
कि वे जाग पडते हैं
तुरत ही, *गहन चिन्ताक्रान्त होकर सोचन लगते*
कि बेचीलौन सचमुच नष्ट होगा क्या ?
प्रतिष्ठित राज्य-संस्कृति के प्रभावी दृश्य
सुन्दर सभ्यता के तुग स्वर्ण-कलश
सब आदर्श
उनके भाष्यकर्ता ज्ञानवान् महर्षि
ज्योतिर्विद्, गणितशास्त्री, विचारक, कवि,
सभी वे याद आते है ।
प्रतापी सूर्य हैं वे सब प्रखर जाज्वल्य
पर, यह क्या
अँधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर बहुत विकराल
धब्बो के अँधेरे विवर-तल मे से
उभरकर उमडकर दल बाँध
उडते आ रहे हैं गिद्ध
पृथ्वी पर झपटते है !
निकालेंगे नुकीली चोच से आँखें,
कि खायेंगे हमारी दृष्टियाँ ही वे !
मन मे ग्लानि,
गहन विरक्ति, मितली के बुरे चक्कर

भयानक क्षोभ
पीली धूल में बेदम बगूले, और
गन्दे कागज़ों का मुफ़्लिस कचरा ! !
कि मेरी छाँह, उनको पाकर, भूरे पत्तों पर
अचानक खड़ी स्तब्ध
उनके गहन चिन्तनशील नेत्रों में
विदारक क्षोभमय गम्भीर जीवन-दृश्य
मैदानी प्रसारों पर क्रमागत तिर रहे-से हैं ।
जहाँ भी डालती वह दृष्टि,
संवेदन-रुधिर-रेखा-रँगी तसवीर तिर आती
गगन में, भूमि पर, सर्वत्र दिखते हैं
तड़प मरते हुए प्रतिबिम्ब
जग उठते हुए द्युति-बिम्ब
दोनों की परस्पर-गुंफन
सा उलझाव गहरीला
व उस उलझाव में गहरे,
बदलते जगत् का चेहरा ! !

मेरी छाँह सागर-तरंगों पर भागती जाती,
दिशाओं पार, हलके पाँव ।
नाना देश-दृश्यों में
अजाने प्रियतरों का मौन चरण-स्पर्श,
वक्ष-स्पर्श करती मुग्ध
घर में घूमती उनके,
लगाती लैम्प, उनकी लौ बड़ी करती ।
व अपने प्रियतरों से उलझते मुख को
मधुर एकान्त में पाकर,
किन्हीं संवेदनात्मक ज्ञान-अनुभव में
स्वयं के फूल—ताज़े पारिजात—प्रदान करती है,
अचानक मुग्ध आलिंगन,
मनोहर बात, चर्चा, वाद और विवाद
उनका अनुभवात्मक ज्ञान-संवेदन
समूची चेतना की आग
पीती है ।
मनोहर दृश्य प्रस्तुत यों—
गहन आत्मीय सघनच्छाय
भव्याशय अँधेरे वृक्ष के नीचे
सुगन्धित अकेलेपन में,
खड़ी हैं नीलतन दो चन्द्र-रेखाएँ
स्वयं की चेतनाओं को मिलाती हैं

उनसे भभककर सहसा निकलती आग,
या निष्कर्ष
जिनको देखकर, अनुभूत कर, दोनो चमत्कृत हैं
अँधेरे औ' उजाले के भयानक द्वन्द्व
की सारी व्यथा जीकर
गुँथन-उलझाव के नक्शे बनाने,
भयकर बात मुँह स निकल आती है।
भयकर बात स्वय प्रसूत होती है।
तिमिर मे समय झरता है,
व उसके गिर रहे एक-एक कण से
चिनगियो का दल निकलता है।।
अँधेरे वृक्ष मे से गहन आभ्यन्तर
सुगन्धें भभक उठती हैं
कि तन-मन मे निराली फैलती ऊष्मा
व उन पर चन्द्र की लपटें मनोहर फैल जाती हैं।
की मेरी छाँह
अपनी बाँह फैलाती
व अपने प्रियतरो के ऊष्म-श्वस् व्यक्तित्व
कि दुर्दान्त
उन्मद बिजलियो मे वह
अनेको बिजलियो से खेल जाती है,
व उनके नेत्रो को दीखते परिदृश्य म
वह मुग्ध होकर फैल जाती है,
जगत्-सन्दर्भ अपने स्वय के सर्वभ्र फैलाती
अपने प्रियतरो के स्वप्न, उनके विचारो की वेदना जीकर,
व्यथित अगार बनती है,
हिलगकर, सौ लगावो से भरी,
मृदु झाइयो की थरथरी
उतरती है खदानो के अँधेरे मे
वह और अगले स्वप्न का विस्तार बनती है।
कि वह तो भटकती रहती
व ज्यादा स्याह होती है
हृदय मे वह किसी के सुलगती रहती
उलझकर, मुक्तिकामी श्याम गहरी भीड मे चलती
उतरकर, आत्मा के स्याह घेरे मे
अचानक दृप्त हस्तक्षेप करती है
सिखाती सीखती रहती,
परखती, बहस करती और ढोती बोझ
मेहनत से,
जमीनें साफ करती है,

दिवालो की दरारें पूरती भरती,
व सीती फटे कपड़े, दिल रफू करती,
किन्हीं प्राणाचलो पर वह कसीदा काढती रहत
स्वय की आत्मा की फूल-पत्ती के नमूने का !

अजाने रास्तो पर रोज़
मेरी छाँह यूँ ही भटकती रहती
किसी श्यामल उदासी के कपोलो पर अटकती है
अँधेरे मे, उजाले मे,
कुहा के नील कुहरे और पाले मे,
व खड्डो खाइयो मे घाटियो पर या पहाडो के कगारो पर
किसी को बाँह मे भर, चूमकर, लिपटा
हृदय मे विश्व-चेतस् अग्नि देती है
कि जिससे जाग उठती है
समूची आत्म-सविद्, ऊष्म-स्वस् गहराइयाँ,
गहराइयो से आग उठती है !!

मैं देखता क्या हूँ कि—
पृथ्वी के प्रसारो पर
जहाँ भी स्नेह या सगर,
वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है,
वहाँ है जोर गहरा एक मेरा भी,
सतत मेरी उपस्थिति, नित्य-सन्निधि है।
एक मेरा भी वहाँ पर प्राण-प्रतिनिधि है
अनुज, अग्रज, मित्र
कोई आत्म-छाया-चित्र !!
धरती के विकासी द्वन्द्व-क्रम मे एक मेरा छटपटाता वक्ष,
स्नेहाश्लेष या सगर कहीं भी हो
कि धरती के विकासी द्वन्द्व-क्रम मे एक मेरा पक्ष,
मेरा पक्ष, नि सन्देह !!

यह जनपथ,
यहाँ से गुज़रते हैं फूल चेहरों के
लिये आलोक आँखो मे।
स्वय की दूरियाँ, सब फासले लेकर
गुज़रते चमकते तारे।
लिये रातें अँधेरी,
गुज़रती हैं ढिबरियाँ, टिमटिम
सुबह गरमी लिये जाती खुद अपनी
आईने-सी साफ दोपहरी,
हँसी, किलकारियाँ

रंगीन मस्त किनारियाँ,
वे झाइयाँ आत्मीय,
वे परछाइयाँ काली बहुत उद्विग्न,
श्यामल खाइयाँ गम्भीर।
मुझको तो समूचा दृश्य धरती की सतह से उठ,
नवल आकाश के प्रत्यक्ष मार्गों-सेतुओं
पर चल रहा दिखता
व उस आकाश म से बरसते मुझ पर
सुगन्धित रंग-निर्झर और
छाती भीग जाती है, व आँखों मे
उसी की रंग-लौ कोमल चमकती-सी
कि इतने मे
भयानक बात होती है
हृदय में घोर दुर्घटना
अचानक एक काला स्याह चेहरा प्रकट होता है
विकट हँसता हुआ।
अध्यक्ष वह
मेरी अँधेरी खाइयो मे
कार्यरत कमजोरियो के छलभरे षड्यन्त्र का
केन्द्रीय संचालक
किसी अज्ञात गोपन कक्ष म
मुझको अजन्ता की गुफाओ मे हमेशा कैद रखना है
क्या इसलिए ही कर्म तक मैं लडखडाता पहुँच पाता हूँ ?

सामना करने
निपीडक आत्मचिन्ता स
अकेले मे गया मन, और
वह एकेक कमरा खोल भीतर धँस रहा हर बार
लगता है कि ये कमरे नही है ठीक
कमरे हैं नही ये ठीक,
इन सुनसान भीतों पर
लगे जो आइने उनम
स्वय का मुख
जगत् के बिम्ब
दिखते ही नही···
जो दीखता है वह
विकृत प्रतिबिम्ब हैं उद्भ्रान्त
ऐसा क्यों ?
उन्हे क्योंकर न साफ किया गया ?
कमरे न क्यों खोले गये ?

आश्चर्य है।
ये आईने किस काम के
जिसमे अँधेरा डूबता।।
सबकी पुनर्रचना न क्योकर की गयी?

इतने मे कही से आ रहा है पास
कोई जादुई सगीत-स्वर-आलाप
आता पास और प्रकाश बनता-सा
कि स्वर वे रश्मियो मे हो रहे परिणत
व उनसे किरण-वाक्यावलि—
सहस्रो पीढियो ने विश्व का
रमणीयतम जो स्वप्न देखा था
वही,
हाँ, वही
बिलकुल, सामन, प्रत्यक्ष है।।
मैं देखता क्या हूँ,
अँधेरे आईनों मे सिर उठाती है
प्रतेजस-आनना
प्रतिभामयी मुख-लालिमा
तेजस्विनी लावण्य-श्री
प्रत्यक्ष,
बिलकुल सामने।।
(शायद, शमा कोई अचानक मुसकरायी थी)
कई फानूस, भीतर, रग-बिरगे झलमला उठते
गहन सवेदनाओ के···
आश्चर्य,
क्योकर दूसरे ही क्षण
अचानक एक ठण्डा स्पर्श कन्धे पर
हृदय यह थरथरा उठता।।
कि काला लबादा ओढे
बराबर, सामने, प्रत्यक्ष कोई
स्याह परदे से ढँका चेहरा
सुरीली किन्तु है आवाज़
यद्यपि चीखते-से शब्द—
'मुझसे भागते क्यों हो,
सुकोमल काल्पनिक तल पर,
नही है द्वन्द्व का उत्तर
तुम्हारी स्वप्न-वीथी कर सकेगी क्या।
बिना सहार के, सर्जन असम्भव है;
समन्वय झूठ है,

सब सूर्य फूटेंग
व उनके केन्द्र टूटेंगे
उड़ेंगे खण्ड
बिखरेंगे गहन ब्रह्माण्ड म सर्वत्र
उनके नाश म तुम योग दो ! !'

आँखें देखती रहती
हृदय यह स्तब्ध है
कौन है जा सामने है, क्षुब्ध है !!
सहसा किसी उद्वेग से
मैं झपट्ता,
उस घोर आकृति पर भयानक टूट पडता हूँ !
व उसका आवरण ऊपर उठाकर फेंक देता हूँ
कि मैं आतक हत
जी धक्
व जड निर्वाक ! !
वह तो है वही है हाँ वही बिलकुल,
प्रतजस-आनना
लावण्य-श्री मित्र स्मिता
जिसने अँधेरे आईने मे सिर उठाया था
व हलके मुसकराया था
व मेरा जी हिलाया था ! !
सहस्रो पीढिया न विश्व का
रमणीयतम
जो स्वप्न देखा था
वही, बिलकुल वही।
स्वप्न के आवेश म यह जो
सुकोमल चाँदनी की मन्द नीली श्री
क्षितिज पर देख
फसलो के महकते सुनहले फैलाव
म ही चला जाता है
व आँखो म चमकती चाँद की लपटें
हृदय म से
निकलती आम्र-तरु मधु मजरी की गन्ध।
इतने मे सुनहला एक गारा झौर
सहसा तोड लेता हूँ
अचानक देखता क्या हूँ
हर एक वाली म सुकोमल फूल मे प्रत्यक्ष
तेजस्-स्मित धरती और मानव के समन्वय से
प्रभामय मुख

अरे किसका अरे किसका
प्रियजनो का ! ! सहचरो का वह
कि उसको देख
गोरा झौर
वापस लगा देता जमा देता डाल पर सुस्थित
व वे मुख मुसकराते है
कि जादू है
व मैं इस जादुई षड्यन्त्र मे फँसता गया।
पर, हाय !
मुझको तोडन की बुरी आदत है
कि क्या उत्पीडको के वर्ग से होगी न मेरी मुक्ति ! !

इतने मे वही रमणीयतम
मृदु मूर्ति
धीमे मुसकराती है
व मुझको, और गहरे और गहरे,
जान जाती है
व किरनें सब जगह यो फैल जाती हैं
कि मैं लज्जित
भयानक रूप से
विद्रूप मैं सचमुच ! !
कि इतने मे
अचानक कान मे फिर से
नभोमय भूमिमय लहरा रहा-सा
गन्धमय सगीत
मानो गा रहा कोई पुरुष
आकाश के नीचे,
खुले बेछोर क्षिप्रा कूल पर उन्मुक्त
लेकिन विरोधात्मक चेतना मेरी
उसी क्षण सुन रही है
श्याम सन्ध्याकाल मन्दिर-आरती-आलाप-वेला मे
भयानक श्वानदल का ऊर्ध्व क्रन्दन
वह उदासी की ऊँचाई पर चढा लहरा रहा रोना
सुन रहा हूँ आज दोनो को
कि है आश्चर्य ! !
यह भी खूब।
जिस सौन्दर्य को मैं खोजता फिरता रहा दिन-रात
वह काला लबादा ओढ
पीछे पड गया था रात-दिन मेरे।

कि अब सब प्रश्न जीवन के
मुझे लगते
कि मानो रक्त-तारा चमचमाता हो
कि मगल-लोक
हमको बुलाता हो
साहसिक यात्रा-पथो पर और
मेरा हृदय दृढ होकर धडकता है
कि मैं तो एक आयुध
मात्र साधन
प्रेम का वाहन
तुम्हारे द्वार पर आया हुआ मैं अस्त्र-सज्जित रथ
मेरे चक्र दोनों अग्र गति के लिए व्याकुल हैं
व मेरी प्राण-आसन्दी तुम्हारी प्रतीक्षा मे है
यहाँ बैठो, विराजो,
आत्मा के मृदुल आसन पर
हृदय के, बुद्धि के ये अश्व तुमको ले उडेंगे और
शैल-शिखरो की चढानो पर बसी ठण्डी हवाओ मे
व उसके पार
गुरु-गम्भीर मेघो की चमकती लहर-पीठो पर
व उसके भी परे, आगे व ऊँचे,
स्वर्ण उल्का-क्षेत्रो मे रथ
तुम्हे ले जायेगा ! !
नक्षत्र-तारक-ज्योति-लोको मे घुमा ले आयेगा सर्वत्र ।
रथ के यन्त्र सब मजबूत हैं ।
उन प्रश्न-लोको मे यहाँ की बोलियाँ
तुमको बुलाती हैं
कि उनको ध्यान से सुन लो ।

[सम्भावित रचनाकाल 1959 । राजनांदगाँव । कृति, मार्च 1960, मे प्रकाशित । **चाँद का मुँह टेढ़ा है** मे सकलित]

मुझे नहीं मालूम

मुझे नही मालूम
सही हूँ या ग़लत हूँ या और कुछ,
सत्य हूँ कि मात्र मैं निवेदन-सौन्दर्य

धरित्री व नक्षत्र
तारागण
रखते हैं निज-निज व्यक्तित्व
रखते हैं चुम्बकीय शक्ति, पर
स्वय के अनुसार
गुरुत्व-आकर्षण-शक्ति का उपयोग
करने मे असमर्थ।
यह नही होता है उनसे कि जरा घूम-घाम आये
नभस् अपार मे
यन्त्रबद्ध गतियो का ग्रह-पथ त्यागकर
ब्रह्माण्ड अखिल की सरहदें माप लें।
अरे, ये ज्योति-पिण्ड
हृदय मे महाशक्ति रखने के बावजूद
अन्धे हैं नेत्रहीन
असग घूमते हैं अहेतुक
असीम नभस् मे
चट्टानी ढेर है गतिमान् अनथक,
अपने न वस मे।
वैसा मैं बुद्धिमान्
अविरत
यन्त्रवद्ध कारणो से सत्य हूँ।
मेरी नही कोई कही कोशिशें,
न कोई निज-तडित्-शक्ति-वेदना।
कोई किसी अदृश्य अन्य द्वारा नियोजित
गतियो का गणित हूँ।
प्रवृत्ति-सत्य से सच मैं
गलतियाँ करने से डरता,
मैं भटक जाने से भयभीत।
यन्त्रबद्ध गतियो का ग्रह-पथ त्यागने मे
असमर्थ
अयास, अबोध निरा सच मैं।

कोई फिर कहता कि देख लो—
देह मे तुम्हारे
परमाणु-केन्द्रों के आस-पास
अपने गोल पथ पर
घूमते हैं अगारे,
घूमते हैं 'इलेक्ट्रॉन'
निज रश्मि-रथ पर।
बहुत खुश होता हूँ निज से कि

यद्यपि सांचे मे ढली हुई मूर्ति मैं मजबूत
फिर भी हूँ देवदूत
'इलेक्ट्रॉन'-रश्मियो मे बँधे हुए अणुओ का
पुंजीभूत
एक महाभूत मैं।
ऋण-एक राशि का वर्गमूल
साक्षात्
ऋण-धन तडित् की चिनगियो का आत्मजात
प्रकाश हूँ निज-शूल।

गणित के नियमो की सरहदें लाँघना
स्वय के प्रति नित जागना—
भयानक अनुभव
फिर भी मैं करता हूँ कोशिश।
एक-धन-एक से
पुन. एक बनाने का यत्न है अविरत।
आती है पूर्व से एक नदी,
पश्चिम से सरित अन्य,
सगमित बनती है एक महानदी फिर।
सृष्टि न गणित के नियमो को मानती है
अनिवार्य।

मेरे ये सहचर
धरित्री, ग्रह-पिण्ड,
रखते हैं गुरुत्व-आकर्षण-शक्ति, पर
यन्त्रबद्ध गतियो को त्यागकर
जरा घूम-घाम आते, जरा भटक जाते तो
कुछ न सही, कुछ न सही
गलतियो के नक्शे तो बनते,
बन जाता भूलो का ग्राफ ही,
विदित तो होता कि
कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे खतरे,
अपाहिज पूर्णताएँ टूटती!
किन्तु, हमारे यहाँ
सिन्धुयात्रा वर्जित
अगम अथाह की।
हमे तो डर है कि
खतरा उठाया तो
मानसिक यन्त्र-सी बनी हुई आत्मा,
आदतन बने हुए अद्यतन भाव-चित्र,

विचार-चरित्र ही,
टूट-फूट जायेंगे
फ्रेम सब टूटेंगी व टण्टा होगा निज से।
इसीलिए, सत्य हमारे है सतही
पहले से बनी हुई रातों पर घूमते हैं
यन्त्रबद्ध गति से।
पर उनका सहीपन
बहुत बड़ा व्यंग्य है
और सत्यों की चुम्बकीय शक्ति
वह मैगनेट
हाँ, वह अनंग है
अपने में कामातुर,
अंग से किन्तु हीन।।

पुनश्च
बात अभी कहाँ पूरी हुई है,
आत्मा की एकता में दुई है।
इसीलिए
स्वयं के अधूरे ये शब्द और
टूटी हुई लाइनें, न उभरे हुए चित्र
टटोलता हूँ उनमें कि
कोई उलझा-अटका हुआ सत्य कहीं मिल जाय,
वह बात कौन-सी!!

उलझन में पड़ा हूँ
अपनी सी धड़कनें गिनता हूँ जितनी कि
उतने ही उगते हैं
उगते ही जाते हैं सितारे
दूर आसमान में चमकने लगते हैं सचमुच।
और, वे करते हैं इशारे!।

मैं उनके नियमों को खोजता,
नियमों के ढूँढता हूँ अपवाद,
परन्तु, अकस्मात्
उपलब्ध होते हैं नियम अपवाद के।
सरी-सृप-रेखाओं से तिर्यक् रेखा काटकर
लिखा हुआ बार-बार
कटी-पिटी रेखाओं का मनोहर सौन्दर्य
देखता ही रहता
कटे-पिटे में से ही झलकते हैं अकस्मात्

साँझ के झुटपुटे, रंगीन सुबहों के धुँधलके।
उनमें से धीरे-धीरे स्वर्णिम रेखाएँ उभरतीं,
विकसित होते हैं मनोहर द्युति-रूप।
चमकने लगते हैं उद्यान रंगीन
आदिम मौलिक!
गन्ध के सुकोमल मेघों में डूबकर
प्रत्येक वृक्ष से करता हूँ पहचान,
प्रत्येक पुष्प से पूछता हूँ हाल-चाल,
प्रत्येक लता से करता हूँ सम्पर्क!!
और उनकी महकभरी
पवित्र छाया में गहरी
विलुप्त होता हूँ मैं, पर
सुनहली ज्वाल-सा
जागता है ज्ञान और
जगमगाती रहती है लालसा।
मैं कहीं नहीं हूँ।

[सम्भावित रचनाकाल 1956 से 1960 तक। नागपुर-राजनांदगाँव। **कल्पना** जुलाई 1960, में प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में संकलित]

सही हूँ या ग़लत

[इस कविता की केवल आरम्भिक तीन पंक्तियाँ ही पूर्ववर्ती कविता 'मुझे नहीं मालूम' मिलती हैं।—सं०]

खुद नहीं मालूम
        सही हूँ या ग़लत हूँ
                या और कुछ
सत्य हूँ कि सिर्फ़ मैं कहने की तारीफ़।।

किसी राजधानी में खूबसूरत वज़ेदार
अँगड़ाई-मेहराब-बने हुए तन की
किसी मुख-मुद्रा से तड़ित्-प्रकाश-दीप
खम्भे के अलंकार,
आभूषण-मात्र यदि मेरा सत्य
फिर तो मैं बुरा हूँ!!

सत्य का कर्णफूल नहीं मुझे चाहिए
सत्य का सुगन्धित चाहिए न रूमाल

स्तम्भ मैं, बिजली के तारों का जाल लिये
देता हूँ अदृश्य बिजली कि
म्लान तुम्हारा मुख
दीप्तिमान सूर्यारुण होता है
निजत्व तुम्हारा व्यक्तित्व गहन यदि होता है,
इसका एक अग्नि-स्रोत मैं भी हूँ
परन्तु मेरे इस मन-प्राण-हृदय से हमेशा
यदि मात्र वही प्रकट, आविर्भूत
अभिव्यक्त होता रहे···
दोष तुम्हारा है।
मैंने नहीं कहा था कि ज़िन्दगी के कमरे में
लगे हुए मेरे मन- प्राण-बुद्धि शीशे में आईनों में
रवि-रश्मि बन गिरो,
और फिर किसी एक
आईने से फेंकी जाकर अन्य में तिरो और
वापिस होती वहाँ से फिर अन्य में ठहरो कि
तीसरे में प्रत्यावर्तित किरण-सी रम जाओ
ज़िन्दगी के साँवले शून्य के निज-चेतस् कमरे में
विविध अनेकानेक रश्मि-रेखा-पुल बनो
मैंने नहीं कहा था।

सच है कि एक ओर
कोई बात
मुझे बहुत भव्य विशाल मृदु
देती है दिखायी,
कभी-कभी किन्तु वही
किसी अन्य स्थिति में
सिकुड़ती है इतनी कि
तुच्छ व क्षुद्र प्रतीत होती रहती है
आभ्यन्तर आलोचनाशील आँख
बुद्धि की दृष्टि की सुई से
कल्पना-नेत्रों को फोड़ती!।
चिन्ता की भँवर में
निज से ही क्रुद्ध हो
सोचता हूँ मैंने नहीं कहा था
कि तुम मुझे निज सम्बल बना लो।।

मुझे नहीं चाहिए निज-वक्ष-समाश्रित
कोई मुख
किसी पुष्पलता के विकास-प्रसार हित,
व्यर्थ ही जाली नहीं बनूँगा मैं बाँस की।।
चाहिए मुझे मैं
चाहिए मुझे मेरा
खोया हुआ रूखा-सूखा व्यक्तित्व
महकती महकाती गहन निजत्व गन्ध
अनायास सब वातावरण में
बौराई फैलती है कहते हुए
'तुम मुझे चाहिए, मुझे दो
मुझे लो'
मानवीय हार्दिक क्षमता के क्षण की
मानवीय प्रतिभा के रंग की
निजत्व-विद्यु-रेख
दमकती फिरती है चारों ओर।।
आभ्यन्तर दृष्टि से देखूँ तो
मानवीय प्रतिभा का सौन्दर्य
सच, तेज पुंज है,
पर व्यावहारिक इस द्वन्द्व में
संघर्ष निरे में
वही सब पंगु है लुंज है।।
मतलब कि हिये में
जो कुछ महान् है
सरल व सुन्दर
अमल व निश्छल
सजग व जाग्रत
ज्वलन्त चेतन
उसके यदि रहा जाय भरोसे
तो बीसवीं सदी की एक
नालायक ट्रेजेडी बनना ही पड़ेगा।।
अनैतिक समाज में नीतिमान
साँसों के लिए भी है परेशान
समस्या के वृषभ के सींगों में
फँसा मैं
बैल के धक्के से एकाएक लुढ़क मैं कि
सींगों में फँस गया
समस्या के सींगों में फँसा हूँ।।
खुद नहीं मालूम
मेरी प्रतिक्रियाएँ

सही हैं या ग़लत हैं या और कुछ
सत्य हूँ कि सिर्फ़ मैं कहन की तारीफ़ ।

सुबह से शाम तक
मन में ही
आड़ी-टेढ़ी लकीरों से करता हुआ
अपनी ही काट-पीट
ग़लत के ख़िलाफ़ नित सही की
तलाश में कि
इतना उलझ जाता हूँ कि
ज़हर नहीं
लिखने की सियाही मैं पीता हूँ कि
नीला मुँह—
दायित्व-भावों की तुलना में
स्वयं का निजत्व
जब देखता
तो पाता है कि
स्याहीसोख लाल जीर्ण काग़ज़ पर उभरे हुए,
कटे-पिटे वाक्यों के
कटे-पिटे गणित के
उलटे उछरे अक्षरों-अंकों-सा
घड़ी-घड़ी सुधारा कि कटा-पिटा
फैला है व्यक्तित्व
सही की तलाश में ।

संगति-कॉम्प्लेक्स
सत्य की मनोग्रन्थि
मूर्खता की हद है ।
कट गयी संवेदना
छँट गयी कल्पना की सुनहली बदली
रहा केवल सन्देह
सहज अविश्वास
यह बुरी बात नहीं
अविश्वासी सन्देह दृढ-स्कन्ध
दृढ-मस्तक भव्य-भाल दृढ-भुज
निज-निर्भर अपरावलम्बी वह [illegible]
चट्टानी भूमि पर जमा हुआ खड़ा है
सही है कि उसका
शत-रश्मि-नील [illegible]
केन्द्रीय विघटनशीलता का परिणाम

किन्तु वह घुसता है सीसे की लोहे की भीत मे से
आर-पार
अन्त प्रवेशशाली शक्ति के न्यूट्रॉन
अन्त प्रवेशशाली शक्ति के पाज़िट्रॉन
करते हैं क़िले पार
करता है मील पार
झूठी आस्थाओ के ! ।

सही है कि सन्देह
सहज अविश्वास
उतना न कभी है नकारशील
जितना समझा गया है,
तर्कों का सगति-नियम प्रमाण है
तथ्यो का सगति-नियम सुसिद्ध है
क्रियाओ का गतियो का
अध्ययन-नियम है विज्ञान
मूल्य अकूत है ! ।
कैमरे की निगेटिव प्लेट पर
खिचा हुआ चेहरा हर
सफ़ेद-सफ़ेद
धुआँ-भूत है।
हड्डियो के ढाँचे मे
पसलियो की तसवीर
एक्स रे की मनोहर
नकारात्मक विधि है
स्वीकारात्मक सिद्धि किन्तु
उसी तरह
जिन्दगी का सन्देह
ऋण-एक राशि का असम्भव वर्गमूल
यद्यपि कल्पनामूलक है राशि वह
जिसके कि सहारे
सृष्टि का गति-चित्र
मस्तक मे जमता।

लगता है कि सृष्टि इस
कल्पना-गणित के सहारे
ऋण-तीन लाख अश शीत मे
घन-खर्व-नील-शख अश के ताप मे
बन जाती नये-नये चमत्कार ! ।
वैसे यह निजत्व तुम्हारा

पेचीदा ज़िन्दगी
अद्‌भुत-स्वरूप है;
इसीलिए तड़ित्-अग्नि-भारवाही खम्भा बन
एक बार मैंने जब अंगीकार किये थे
अपने में धारे थे विभिन्न मुख-भाव
                    रश्मि-दीप तुम्हारे
तो सोचता था
          वह सत्य मेरा है
                    उपन्यासकार का
परम्परा का एक प्रतिफल तड़ित् का बल्ब है
रश्मि का बिकीरण।

[सम्भवत: अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1956 से 1959। नागपुर-राजनाँदगाँव। अप्रकाशित]

दिमाग़ी गुहान्धकार का ओरॉंग-उटॉंग !

स्वप्न के भीतर एक स्वप्न,
विचारधारा के भीतर और
एक अन्य
सघन विचारधारा प्रच्छन्न !।
कथ्य के भीतर एक अनुरोधी
विरुद्ध-विपरीत,
नेपथ्य-संगीत !!

मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क
उसके भी अन्दर एक और कक्ष
कक्ष के भीतर
          एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के साँवले गुहान्धकार में
मजबूत सन्दूक
दृढ़, भारी-भरकम
और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है
यक्ष
या कि ओरांग-उटांग हाय

अरे ! डर यह है....
न ओरांग-उटांग कहीं छूट जाय,
कहीं प्रत्यक्ष न यक्ष हो !

करीने से सजे हुए संस्कृति-प्रभामय
अध्ययन-गृह में
बहस उठ खड़ी जब होती है—
विवाद में हिस्सा लेता हुआ मैं
सुनता हूँ ध्यान से
अपने ही शब्दों का नाद, प्रवाह और
पाता हूँ अकस्मात्
स्वयं के स्वर में
ओरांग-उटांग की बौखलाती हुंकृति ध्वनियाँ
एकाएक भयभीत
पाता हूँ पसीने से सिंचित
अपना यह नग्न मन !
हाय-हाय कोई न जान ले
कि नग्न और विद्रूप
असत्य शक्ति का प्रतिरूप
प्राकृत ओरांग-उटांग यह
मुझमें छिपा हुआ है।

स्वयं की ग्रीवा पर
फेरता हूँ हाथ कि
करता हूँ महसूस
एकाएक गरदन पर उगी हुई
सघन अयाल और
शब्दों पर उगे हुए बाल तथा
वाक्यों में ओरांग-उटांग के
बढ़े हुए नाखून !!

दीखती है सहसा
अपनी ही गुच्छेदार मूँछ
जो कि बनती है कविता
अपने ही बड़े-बड़े दाँत
जो कि बनते हैं तर्क और
दीखता है प्रत्यक्ष
बौना यह भाल और
झुका हुआ माथा
जाता हूँ चौंक मैं निज से

अपनी ही बालदार मज से
कपाल की धज स ।

और, मैं विद्रूप वेदना से ग्रस्त हो
करता हूँ धड से बन्द
वह सन्दूक
करता हूँ महसूस
हाथ मे पिस्तौल बन्दूक !!
अगर कही पेटी वह खुल जाये,
ओरांग-उटांग यदि उसमे से उठ पडे,
धांय-धांय गोली दागी जायेगी।
रक्ताल फैला हुआ सब ओर
ओरांग-उटांग का लाल लाल
खून · तत्काल···
ताला लगा देता हूँ मैं पेटी का
बन्द है सन्दूक़ !!
अब इस प्रकोष्ठ के बाहर आ
अनेक कमरो को पार करता हुआ
सस्कृति प्रभामय अध्ययन गृह मे
अदृश्य रूप से प्रवेशकर
चली हुई बहस मे भाग ले रहा हूँ !!
सोचता हूँ—विवाद मे ग्रस्त कई लोग,
कई तल
सत्य के बहाने
स्वय को चाहते हैं प्रस्थापित करना।
अह को, तथ्य के बहान।
मेरी जीभ एकाएक तालू से चिपकती
अक्ल क्षारयुक्त-सी होती है···
और मेरी आँखें उन बहस करनेवालों के
कपडो मे छिपी हुई
सघन रहस्यमय लम्बी पूँछ देखती !!
और मैं सोचता हूँ ··
कैसे सत्य हैं—
ढाँक रखना चाहते हैं बडे-बडे नाखून !!
किसके लिए हैं वे बाघनख !!
कौन अभागा वह !!

[सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद। राजनांदगांव। 'आलोचना' में प्रकाशित। चाँद का मुँह टेढ़ा है में सकलित]

एक रंग का राग

जमाने की वक्त और बेवक़्त
धड़कती धुकधुकी
नाड़ियाँ फड़कती देखकर
खुश हुए हम कि
बगासी और उमस के स्वेद मे
भीगी हुई उकताहट-उचाट खत्म हुई
और कुछ जोरदार
सनसनीखेज कुछ,
गरम-गरम चाय के साथ-साथ
मिल गयी ऐसी बात
जिससे कि ढीली रगें तन जायें
भीतर तनाव हो
व विचारो का घाव हो
कि दिल मे एक चोट हो
आये दिन ठण्डी इन रगो को
गरमी की खोज है,
वैसे यह जिन्दगी
भोजन है, मौज है !!

समाज के जितने भी निन्दा-प्रवाद है
सब हम याद हैं
हरेक का चेहरा व जीवन-रहस्य हम जानते
अन्ध कौन, बहरा कौन
एक नेत्र कौन कहाँ उट्ठा है
सब हम मालूम,
कौन किस उल्लू का कितना बडा पट्ठा है,
सब हमे मालूम
चाहो तो समाजी
शोषण-क्रिया की सब—
पाचन-क्रिया की सब—
अंतड़ियाँ
टेबल पर रख दें,
कि तुम भी निहार लो
व हम भी निरख ले
चाहो तो निज की ही
खोपड़ी की हड्डी के बक्से को खोलकर
आपके सामने

भेजा उतार दें कि भेजा उधार दें ! !

लेकिन, अब लगता है यह सब व्यर्थ है
क्योंकि पी ज़हर यह
क्योंकि जी ज़हर यह
सुन्न हुई नाडियाँ
गयी आब, पानी सब गया सूख
हृदय में उदासी की फैली है मटमैली
कीचड की खाड़ियाँ ! !
चक्के टूट गये हाय ! !
ग्राम रम्य-वृक्ष-तले
पिकनिक को निकली हुई
ज़िन्दगी की नयी बैलगाड़ियाँ
टूट गयीं निरुपाय ! !
(सौन्दर्य छूता नहीं
शिराओं में हल्की-सी मूर्छना,
चेतना निर्वीर्य ! !)
दार्शनिक मर्मी अब
कोई सरगरमी अब
छू नहीं पाती है
हमें तो अपने बैंक-नोटों की, सत्यों में,
बू खूब आती है ! !
एक मात्र उद्देश्य—
हृदय की लुन्यिा से दिमाग़ की मोरी में
पानी डाल
जमी हुई काई सब निकालना ! !
एक मात्र लक्ष्य कि विचलित न हो पायें
विवेक सताये ना,
न ज़िन्दगी को बेचैन करे वह ! !

असल तो यह है कि
कोई अर्थ मर गया देखते-ही-देखते
लेकिन वह
ज़िन्दगी का नक्शा पेश कर गया (हाय ! हाय !)
उसका यह प्रस्तुतीकरण भी सही है
संवेदन यही है, संवेदन का निवेदन यही है ! !

पूर्व-युगों में भी खूब बुराइयाँ रही आयीं
किन्तु वे भीमाकार शक्ति रूप
दिखलायी जाती थीं,

रावण व कुम्भकर्ण, शैतान
उनका ही रूप था।
उनसे डरा जाता था, उनसे लडा जाता था।
उनके विरुद्ध वह
पाप-भीरु मृदु मन
बहुत कडा रहता था समुद्धत ! !

किन्तु उसी अमगल को आज सिर्फ
सहा जाता ह्रास कह
आज वह मात्र व्यग्य-रूप है
तर्क यह—
हाय ! वह सबका अग-रूप है
सभ्यता-समाज का ही ह्रास है
इसलिए सहनीय मात्र निवेदनीय त्रास है
ह्रास मे भी खूब-खूब मजा है,
आदमी की ध्वजा है
व्यक्तिगत आलोचनाशील मन
जोडता है निन्दा-धन
जोडता है जहर और
ककड और पत्थर और
कहता मैं गुणीजन
(हृदय म वैठा है चोट्टा कि मसीहा ! !)
ऐसी आज आइडियॉलॉजी है ! !
हरेक के पीपल के पास अब वैठा हुआ एक निज
सन्त निज पीर है
लक्ष्य समाजी है
प्रतिभा का जिन्न आज खूब जिसके पास है
सत्य की सर्चलाइट वह अनायास है ! !
खेद है कि गलती सिर्फ एक हुई हमसे
कि ज़िन्दगी की रेती मे किरचे मिले काँच के
तो मन मे भी पूरा शीशा हम नही बना पाय साँच का
रत्न का टुकडा मिला किन्तु हाय
पूरा रत्न (अश का पूर्ण रूप)
कल्पना मे भी हम, ला नही पाये थे कि
खो गया टुकडा वह
खो दिये किरचे वे काँच के
ज़रा-ज़रा दर्द हुआ
किन्तु उस खण्ड का
पूर्ण अखण्ड न मिल मका
कि इतने म खो गया दर्द भी ! !

नसों और रगों व शिराओं की
स्नायु-यन्त्र-गति में मन-बुद्धि गिरफ्तार
खँडहरों में छुपे हुए
किसी तहखाने में अजाने
खोजते हैं किंवदन्त-खज़ाना
और इस पागल-सी खोज को
कहते हम सत्यानुसन्धान
—फ़जूल बात है
जब तक न चाय मिले
हमारी न होती कभी
हाय ! सुप्रभात है ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद। राजनांदगांव। भूरी-भूरी खाक-धूल में संकलित]

ज़िंदगी बुरादा तो बारूद बनेगी ही

मिर्चों की धाँसभरे बाज़ारों-सी
अटकाते-भटकाते अखबारों-सी
अर्थों-उद्देश्यों की बल खाती गलियों में
साँवला लबादा ओढ़े या
कुहरीला कुरता पहने जो
मिलते हैं अलग-अलग आकृतियोंवाले जिन
स्वार्थों के गोल तिकोने (पलक मारते आँख मारते
गोल तेलिया चेहरोंवाले) क्षण
उनसे हिल-मिल चुपचाप बात करते
सज्जन···
सुकुमारियाँ कान में कुछ कहतीं
गहरी चर्चाएँ करते विज्ञ नपुंसकगण।
उस समय,
सहज मोहक गुलाब की पखुरियाँ
धमगादड़-घमंड की-सी बन
हँसती हैं तो
बुलबुल को यह अफ़सोस
कि वह उल्लू न हुई।

बस वही कहीं
उनकी छायाओं मे पलकर
जूठे बरतन माँजते हुए पीले दुबले
बालक चाकर-से मेरे दिन
अपनी आँखो देखते खुद ही का भुस
जो लगातार बनता रहता
नापते बुरादा रोज़ ज़िन्दगी का
व सोचते रहते है
'ईंधन, केवल ईंधन
हम सिर्फ जलाऊ लकडी हैं
अन्य के लिए ! !
हम हैं अनन्त इत्यादि ! !'
तकलीफभरी बेचैन आत्मा की गठरी
दाबकर, लौटता हूँ घर, कर नौकरी।
अलग अपना एकान्त सृजन करने
लेता हूँ ओढ घना काला-काला कम्बल
वह आश्रय-स्थल
जिसके छेदो मे स प्रकाश के तारक-दल
मेरी गहरी दरगाह-दिवालों के भीतर
अँधियारे के बेमाप अकेले मे
चुपचाप इशारे करते हैं ! !
बस दूर रह गयी दुनिया
अब मैं ही मैं हूँ,
आमना सामना मेरा मुझसे सबसे है।
अब गणित चला मैदान मारने
आसमान घेरने।
कल्पना चली चन्द्र के शुक्र के
द्युति प्रस्तर बीनने।
अब चली वेदना भीषण प्रश्न पूछने
चारो तरफ बढी।
इतने मे ही मैं अकस्मात् देखता हूँ कि
सामने चौक मे बीचोबीच
नभोचुम्बी जो घण्टाघर
उसके काले लम्बे लम्बे सकेतशील
सेकण्ड मिनिट काँटो के हाथो से
दृढतापूर्वक पकडे जो झूल रहे बुधवर
विद्वद्वर, कविवर, चिन्तकवर
साहित्य और सस्कृति के रजत शखधर वे
सर्वोत्तम अभिरुचियों के स्वर्ण-अकधर वे
सब झूल रहे तत्पर ! !

उनकी छायाओं के गहरे
हिलते-डुलते काले पट्टे
कुछ यों प्रकाश काटते
कि चौंककर बहुत ध्यान से उन्हें देखता हूँ
—चेहरों पर है उद्दण्ड भयानकता
पगलाये स्वार्थों की स्वतन्त्र निर्णायकता
उन्हें देखता रहता हूँ,
हँस पडता हूँ ।।

आदतन सिर्फ आदतन
या इरादतन भी
अँधेरा मेरा खास वतन
जब आग पकडता है,
सामने अँधेरे आसमान में पहाड टकराते
भीतर के विस्फोटों से सूर्य टूटता है
ये बडी-बडी मंजिलें धधकती खडी-खडी
औ' वहीं कहीं
अधजले ठूँठ की कटी-पिटी डाल पर
बच गये घोंसलों में
पक्षिणियाँ अपने बच्चे सेती हैं
तन की गरमी से मन की गरमी देती हैं ।।
यह साफ़ बात
जिन्दगी बुरादा तो बारूद बनेगी ही
ऐश्वर्य सूर्य
धन की प्रभुमत्ता के ऐरावत चण्ड शौर्य
अपने चालक दल सहित भूमि के गर्भों में
विच्छिन्नावस्था के सारे सन्दर्भों में
केवल पुरातत्त्वविद् के चित्ताकर्षण
बन जायेंगे ।
सबसे मामूली जो सचाइयाँ हैं
कइयों को
धुँआर मौत की स्याह खाइयाँ वे
अन्यों को
वे जीने की गहरी ऊँचाइयाँ हैं
असरदार ऊँची दवाइयाँ हैं ।

[सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद । राजनाँदगाँव । अप्रकाशित]

मुझे क़दम-क़दम पर

मुझे कदम-कदम पर
चौराहे मिलते हैं
बाँहे फैलाये ।।

एक पैर रखता हूँ
कि सौ राह फूटती,
व मैं उन सब पर से गुजरना चाहता हूँ,
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने
सब सच्चे लगते हैं,
अजीब-सी अकुलाहट दिल म उभरती है,
मैं कुछ गहरे म उतरना चाहता हूँ,
जाने क्या मिल जाये ।।

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर म
चमकता हीरा है,
हर एक छाती म आत्मा अधीरा है
प्रत्येक सुस्मित मे विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी मे
महाकाव्य पीडा है,
पलभर मैं सबम स गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर म स तिर आना चाहता हूँ
इस तरह खुद ही को दिये दिये फिरता हूँ
अजीब है जिन्दगी ।।
बेवकूफ बनने के खातिर ही
सब तरफ अपने को लिय लिये फिरता हूँ,
और यह देख देख बडा मजा आता है
कि मैं ठगा जाता हूँ
हृदय मे मेरे ही
प्रसन्न चित्त एक मूर्ख बैठा है
हँस-हँसकर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत् स्वायत्त हुआ जाता है।

कहानियाँ लेकर और
मुझको कुछ देकर ये चौराहे फैलते
जहाँ जरा खडे होकर
बातें कुछ करता हूँ

'''उपन्यास मिल जाते।

दु:ख की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
ज़माने के जानदार सूरे व आयतें
सुनने को मिलती हैं!

कविताएँ मुसकरा लाग-डाँट करती हैं
प्यार बात करती हैं।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
श्रद्धाएँ चढ़ती हैं!!

घबराये प्रतीक और मुसकाते रूप-चित्र
लेकर मैं घर पर जब लौटता''
उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें
जीना ही चाहिए।

घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाँहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप-दृश्यवाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है!!

[सम्भावित रचनाकाल 1959-60। राजनाँदगाँव। सहर, दिसम्बर 1961, में 'चौराहे' शीर्षक से प्रकाशित। चाँद का मुँह टेढ़ा है में संकलित]

झरने पुराने पड़ गये

झरने पुराने पड गये
उनकी उपमा अब कोई नही देता
शायद धोबी दें
जो वहाँ कपडे फचीटते है
या किसान
जो उसमे फँसी हुई गाडी घसीटते हैं
लेकिन वे सभ्य नही हैं
इसीलिए झरने की उपमा अब लभ्य नही है।
फिर भी मैं झरने की उपमा जरूर दूंगा
उस सुदूर को
जो बहता हुआ हमारी ओर आ रहा है
हमारे पास लगातार आ रहा है,
इसलिए नही कि हम नदी या तलाब हैं,
जिसमे मिल जायेगा
बल्कि इसलिए कि हम वे टीले हैं
जिन्हे घाव-ही-घाव हैं
टूटे है तडके हैं
फिर भी ठहराव है
एक रुकाव है, इसीलिए सब तरफ चेहरे ये पीले हैं
वह आ रहा है, अनकरीब है,
हमे बहा ले जायेगा ! !
कहाँ ले जायेगा ?

तो उसी का एक किस्सा है
पुराने जमाने मे
भयानक परिपाटी-सी
एक घाटी थी।
उसकी वह माटी भी अजीब थी
बहुत ग़रीब बहुत बदनसीब थी
वहाँ कई लडाइयाँ हुई थी
खूब ठठरियाँ फैली थी
टूटी हुई हड्डियों के टुकडे
अभी भी देखे जा सकते हैं
निरखे जा सकते हैं, परखे जा सकते हैं।
लेकिन कौन इस धन्धे मे पड़े।
तो हाँ, वहाँ हजारो किसान मारे गये थे
बडे युद्धवीर थे

इसीलिए तलवार के घाट उतारे गये थे
और भी दूसरे कई-कई लोग थे
बड लडाकू थे मरण-सयोग थे।
उन्होन गढ और गढियाँ
दुर्ग और किले ढहा दिये
बडे-बडे अहकार और गर्व बहा दिये।
आज उसी एक किले के हिस्से मे
मेरा यह कालेज है
टेबल और मेज़ है
आर्ट्स और साइन्स, कॉमर्स हैं
मुझको यह हर्ष है
कि उसी किले के एक महत् सिंहद्वार के
ऊपर और नीचे के कक्षो मे
मुझको बसाया गया
क्वार्टर्स बन गये।

हाँ, तो उस पुराने जमाने मे
जिसका यह किस्सा है
उजडे हुए गाँव और
ढहे हुए बुर्जों के ढूहो म
भग्नावशेषों के अजब चक्रव्यूहो मे
एक रात अगार-चन्द्र निकल आया था
लाल-लाल गोल धधकता हुआ
अजीब पल लाया था।
कालिमा फैली थी
जिसमे वह भीषण अगार-चन्द्र
कई उलट-फेरों का घोर बल लाया था!!

घाटी मे ठठरियाँ
टूटी हुई जाँघो बीच
हड्डी के पजो बीच
घास निकल आयी थी, फूल खिल आये थे
अँधियारा मद्धिम ललाई मे
काला और भीषण था
और उस किनारे पर
पुराने दुर्गों के सारे भग्नावशेष
दायें और बायें थे!!

ढूहों की छाती पर हलकी ललाई थी
टूटी हुई सामग्री मद्धिम थी

पुरानी मुँडेर पर
उगा हुआ तान्त्रिक पीपल भी
हवाओं में
हलका-सा लाल था
अजीब-सा हाल था।

कि इतने में न जाने कहाँ से एक
उड़ता हुआ रात्रिचर पक्षी चुप
बैठ गया
बुर्ज के खुर्राट कंगूरे पर।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1959-60। राजनाँदगाँव। भूरी-भूरी खाक-धूल में संकलित]

ओ काव्यात्मन् फणिधर

1

वे आते होंगे लोग
अरे, जिनके हाथों में तुम्हें सौंपना ही होंगे
ये मौन उपेक्षित रत्न!
मात्र तब तक,
केवल तब तक
तुम छिपा चलो द्युतिमान् उन्हें
तम-गुहा-तले!
ओ, संवेदनमय ज्ञान-नाग
कुण्डली मार तुम दबा रखो
फूटती हुई रश्मियाँ!
कि सच यह मुश्किल है,
किरनों के उजियाले बादल ये निर्मल हैं,
फन तक उठते
मेरे मन तक।
वल्मीक विभासित है,
यह गुहा दमकती भीतर से,
देदीप्यमान उस मधुर रश्मि-वर्षा का
असहनीय आनन्द दबा

तुम छिपा चलो जो कुछ तुम हो !
यह काल तुम्हारा नहीं !

2
किन्तु एकत्र करो
प्रज्वलित प्रस्तरों को···
वे आते होंगे लोग
जिन्हें तुम दोगे—
देना ही होगा, पूरा हिसाब
अपना, सबका, मन का, जन का !

3
उन रत्नों के ही लिए तुम्हारी व्याकुलतर
गति सर-सर
जंगल पार
पुरों-नगरों में, आँगन के पीछे
कचरे के ढेरों में, जिनकी
मैली सतहों में फँसा-दबा
चुपचाप धँसाये गये, छिपाये गये रत्न मन के, जन के,
जो मूल्य सत्य हैं इस जग के परिवर्तन के !
वे विविध असुविधाओं के कारक होने से
नित उपेक्षिता भूमि में फिंके !

4
उनके निष्कासन आज सुन रहे हैं—
पिछवाड़े ढेरों में खड़-खड़,
कोई गड़बड़,
कंपित गति के भूचाल भीतिप्रद अनजाने !
'जी नहीं, नहीं, कुछ नहीं, यूँ ही मन में खटका—
जिस उच्च शिखर
को पश्चिम के भूगोलशास्त्रियों ने देखा,
जिस पर प्रसन्न मुद्रा में आसन जमा लिया,
कुछ महामहिम सभ्यों ने दर्शन कमा लिया,
वह हो न कहीं
भू-ज्वाल-विवर—
जी नहीं, नहीं, कुछ नहीं, यूँ ही यह मन भटका !

5
पिछवाड़े, ढेरों में खड़-खड़
कोई गड़बड़,

सर-सर करता छत चढा, फाँद दीवार बढा
वह नाग,
एक भयजनक श्याम-सवेदन-कोब्रा। कमरो मे,
लाठियाँ घूमती कोठो मे
पर, वह खपरैलो-चढा तेज बढता जाता।

6

लहराओ, लहराओ, नागात्मक कविताओ,
झाडियो छिपो,
उन श्याम झुरमुटो-तले कई
मिल जायँ कही
वे फेंके गये रत्न, ऐसे
जो बहुत असुविधाकारक थे,
इसलिए कि उनके किरण-सूत्र से होता था
पट-परिवर्तन, यवनिका-पतन
मन मे जग मे!
ओ काव्यात्मन् फणिधर, अपना फन फैलाओ!
मणिगण को धारण करो, उन्हे
वल्मीक-गुहा मे ले जाओ,
एकत्र करो ··

7

···अँधेरे मे निकलो, जगल भटको!
गति सर-सर से
खँडहर-पीपल का
बडा वास्ता है
···देखो तो उस ओर,
नदी के पार, रास्ता है!
वन-तुलसी के तल से निकलो—
पाओ वट को!!

8

उस अन्धकार-न्यग्रोध-तले वे कई सो रहे है!!
ऊपर डालो पर भूतो की-सी परछाइँ
हिलती, डुलती,
नीचे, तल मे,
पागल स्त्री के
स्तन से चिपकी
बालक झाइँ,
जगल मे दूर सियार रो रहे हैं!!

वट-शाखाओं पर द्रुततर सर-सर चढ जाओ !!

9

उन अन्धकार-शाखाओं के पत्राच्छद में
छिपकर कोई
स्वर दबा सिसकती है
दार्शनिक एक आत्मा··
जब जीवित थी,
आवरणरहित सोचती रही
अकर्मक विवेक-धी,
औ' उदरम्भरि पल-क्षण-प्रसार में अटक गयी
सारे अन्वय-व्यतिरेक-प्रमा-उपपत्ति सहित !!
वह श्याम दार्शनिक आत्मा
अपने जीवन में
छाया जीवन जीकर भी, उदर-शिश्न के सुख
भोगती रही,
आध्यात्मिक गहन प्रश्न के सुख
भोगती रही
जन-उत्पीडन विभ्राट्-व्यवस्था के सम्मुख !
उसके आशय का विष पी लो
ओ काली-काली भान-आग
ओ नागराज,
इस वट की शाखाओं पर तुम करवट बदलो !!

10

नीचे उतरो, खुरदरा अँधेरा सभी ओर
वह बडा तना, मोटी डालें,
अधजले फिँके कण्डे व राख
नीचे तल में।
वह पागल युवती सोयी है
मैली दरिद्र स्त्री अस्त-व्यस्त—
उसके बिखरे हैं बाल व स्तन है लटका-सा,
अनगिनत वासना-ग्रस्तों का मन अटका था !
उनमें जो उच्छृंखल था, विशृंखल भी था,
उसने काले पल में इस स्त्री को गर्भ दिया !
शोषिता व व्यभिचरिता आत्मा को पुत्र हुआ
स्तन मुँह में डाल, मरा बालक ! उसकी झाईं,
अब तक लेटी है पास उसी की परछाईं !!
आधुनिक सभ्यता-संकट की प्रतीक-रेखा,

उसको मैंने सपनों में कई बार देखा !!
जीने के पहले मरे समस्याओं के हल !!
ओ नागराज, चुपचाप यहाँ से चल !!

11

यह है अँधियारा कुआँ,
करौंदी की झाडी
में छिपी हुई चौडी मुँडेर
अधटूटी-सी।
वीरान महक सूखी-सूनी,
ठण्डी कन्हेर
पर लाल-लाल कुछ फूल,
कि यह क्या है !!

चुपचाप अँधेरे म उतरो !!
कुएँ का गोल तला सूखा
जिसमे कचरे के बडे-बडे हैं ढेर, अरे !!
—यह तो विचित्र है बात,
किसी ने आत्मज सद्योजात
वहाँ लाकर रक्खा, छोडा-त्यागा
शिशु रोता है वह जोर-शोर के साथ !!

12

अरे रे ! कौन अभागा वह,
जिसने यो आत्मोत्पन्न सत्य त्यागा ?
किस मौन विवशता के कारण ?
किसके भय से ?
पर, भय किसका ?
कौन-सी क्रान्ति करनेवाला था यह बालक !!
चुपचाप सरकने चलो, पास उसके पहुँचो !
निज नाग-नेत्र की कोमल द्युतियो स
गीले गुलाब पर मृदु प्रकाश डालो,
आक्रोशवती मुख गरिमा का सौन्दर्य देख
आवेगभरा उल्लास-नृत्य
तुम नाच-नाच डालो !!
सानन्द आदिवासी नर्तक-सी धूम करो !!
अत्यन्त तीव्र गति नाग-नृत्य मुद्राएँ
प्रस्तुत करो सबल !
प्रस्फूर्त-अश्रुमय नाचो, कविताओ के पल !!

13

उस शिशु-स्वर से, अर्गला टूटती है,
दरवाजे खुलते हैं,
मन मिलते-जुलते हैं।
अन्तर-आनन्द मुक्ति बन बाहर आता है,
पल-पल भविष्य उच्छृंखल होता जाता है,
आगामी कई हविष्यों के संकेत असाधारण
उसके स्वर में।

14

मेरे कोब्रा, ओ ग्रेट, पुष्ट पायथन,
तम-विशेषज्ञ, प्रज्वलन्त मन,
ओ लहरदार रफ्तार, स्याह बिजली,
भू-लोक-विषय-विज्ञान-गणितशास्त्री
तम-छायाओं द्वारा प्रकाश-पथ के ज्ञाता,
आज की श्याम भूताकृतियों के द्वारा ही
कल की प्रकाश-छवियों के ओ दर्शनकर्ता!
विष-रासायनिक, चिकित्सक,
पण्डित कर्कोटक,
ओ जिप्सी! जग-पर्यटक अथक,
तक्षक मेरे,
मेरी छाती से चिपक रक्त का पान करो,
अपने विष से मेरे आभ्यन्तर प्राण भरो,
मेरा सब दुःख पियो
सुख पियो, ज्ञान पी लो!
पर, पल-भर केवल पल-भर
मानव-रूप धरो!
वह शिशु-आक्रोश जी चलो तुम अँधियारे में।
उतरो के सूक्ष्म साँवलेपन में साहस से।
वक्ष पर रखो बालक-आत्मा,
उस ऊष्म नवल आत्मा से सम्पर्कान्वित हो
विश्लेषण करते हुए
स्वप्न देखते हुए,
पथ खोज चलो।
पथ खोज चलो—सोचते हुए—
शायद, सज्जन था व्यक्ति कि जिसके अन्तर में
एक और आत्मा प्रकट हुई
प्रज्वलनमयी।
पर उसको वह सह नहीं सका,
इसलिए कि कोरा और निरा वह सज्जन था!!

निज बालक को तम-कूप-विवर मे डाल गया ।।
उसके स्वप्नो की ज्यामिति-रेखाएँ नापो,
उसके आत्मस्थित जगत्-गणित को पहचानो,
ओ नागात्मे,
इन सब रगो को पियो, उन्हे विष मे परिणत
करके भीतर
भोगो थर-थर,
भोगो जहरीला सवेदन !
पर, उससे अधिकाधिक जाग्रत
अधिकाधिक उत्तेजित-आक्रामक हो।
सूँघते हुए वीरान हवा,
तुम, स्वप्न देखते हुए,
मन के मन मे विश्लेषण करते हुए
झाडियो से गुजरो ।।

15

रात का समय, वह गाँव, और वह औदुम्बर,
—गहरा सा एक स्याह धब्बा !
उसके तल मे श्रमिक-प्रपा,
अजलि से जल पीनेवाले
तृषितो के मुख-विगलित जल से
है भूमि आर्द्र-कोमल अब तक !
प्रशान्त पल मे
नि सग, स्तब्ध, गम्भीर सुगन्धे लहराती,
औ' वहाँ कही
साँवली सिवन्ती, श्याम गुलाब सो रहे है,
निद्रा मे खुला-खुला आँचल,
सिरहाने पत्थर है
स्तन उघरा-सा।
धीमे चलके
शिशु उसके पास रखो धीरे हलके-हलके।
तुम खडे रहो चुपचाप ।।
सिवन्ती हिली-डुली,
बालक ने भी मन की कर ली।
श्रम-गरिमा का पी दूध
सत्य नवजात
विकसता जायेगा।

16

ओ कविताओ !

जलमयी मुखाकृति पोछो मत,
रहने दो, बहने दो !!
इस तम मे कौन देखता है,
केवल कुछ तारो के सिवाय
जो अन्धकार मे चमक रहे, उस विवेक मे जो चिर-तटस्थ
अच्छे व बुरे के बीच, क्योंकि
उन दोनो के परे, सूक्ष्म
वह मात्र स्वार्थ बौना-चपटा,
आध्यात्मिक भाष्यो मे लिपटा !

17

ओ काव्यात्मन्, तुम लौट चलो,
सौंपकर भार भी, अधिकाधिक गम्भीर और
आँखो म आँसू की झाई
मानो तन है ही नही, वरन्
चलती है मन की परछाई
तुम लौटो गुहा ओर—जल्दी
ओ नागात्मन् !

18

अजीब हुआ,
वह भीतर स देदीप्यमान जो रहती थी
भू-गर्भ-गुहा
अब अँधियारी, काली व स्तब्ध
निश्चेतन, जड, दु सहा !!
अजीब हुआ !!

19

पर, शोक मत करो नागात्मन्…
आ गये तुम्हारी अनुपस्थिति मे लोग
प्रतीक्षा जिनकी थी,
ले गये ज्वलत्-द्युति प्रस्तर-घन !!
अब उन रत्नो का अर्थ दीप्त होगा,
उनका प्रभाव घर-घर मे पहुँचेगा फिर से,
उनके प्रकाश मे
दीख सकेगा भीषण मुख ·
वह भीषण मुख उस ब्रह्मदेव का
जो रहकर प्रच्छन्न स्वय,
निज अकशायिनी दुहिता-पत्नी सरस्वती
या विवेक-धी

के द्वारा ही
उद्दाम स्वार्थ या सूक्ष्म आत्मरति का प्रचार
कर, भटकाता
विक्षुब्ध जगत् का, उसके अपने मन से ही
काटकर अलग,
फेंककर पृथक्,
उन दोनों को दूर परस्पर से, तुरन्त
अपने को स्वयं चूम जाता!
उस ब्रह्मदेव का टेढ़ा मुँह
जग देख चुकेगा पूरा ही।
उस ब्रह्मदेव का दर्शन सभी कर सकेंगे,
जिसकी छत्रच्छाया में रह
अधिकाधिक दीप्तिमान होते
धन के श्रीमुख,
पर, निर्धन एक-एक सीढ़ी नीचे गिरते जाते
उस ब्रह्मदेव का विवेक-दर्शन
होगा उद्घाटित पूरा!
ओ नागात्मन्,
संक्रमण-काल में धीर धरो,
ईमान न जाने दो!!
तुम भटक चलो,
इन अन्धकार-मैदानों में सर-सर करते!!
शत उपेक्षिता भूमि में फिंके
चुपचाप छिपाये गये
शुक्र, गुरु, बुध, मंगल
कचरे की परतों-ढँके तुम्हें मिल जायेंगे!!
खोदो, जड़ मिट्टी को खोदो!
ओ भू-गर्भशास्त्री,
भीतर का बाहर का
व्यापक सर्वेक्षण कर डालो।

[सम्भावित रचनाकाल 1959-60। **कृति**, नवम्बर-दिसम्बर 1960, में प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में संकलित]

मुझसे आज सलाह न लो

मुझसे आज सलाह न लो
अशुद्ध हूँ उस दिन की तरह
जिसमें नमकीन धूल के परदे झड़ते हुए
सारा आसमान
धुंधला कर देते हैं
पर, सूरज की गरमी कम नहीं होती
उसका प्रकाश मटियाला होता है।

आज मुझसे बात न करो
क्योंकि एक अजीब हविस एक अजीब माँग
किसी बेसिर-पैरपन के सिर पर ही पाँव रख
ऊँची जो उठती है उठती ही जाती है खास आसमान तक
पर उस अजीब बेसिर-पैरपन को, सिर ही को
कुचलती नहीं, काटकर फेंकती नहीं,
उसे कायम रखती है
अपनी एक सीढ़ी के रूप में।

आज मुझसे बहस नहीं होगी
क्योंकि भीतर की सारी सम्पन्नता के बावजूद
मैं वह रेगिस्तानी मुल्क हूँ
जिसने हर बुराई
हर कमी
हर रुकावट
प्यार से कायम रक्खी है
इसलिए कि अपने से ऊपर उठना
अपने से नीचे गिरने के बराबर है।

आज मैं तुमसे मुलाकात नहीं करूँगा
क्योंकि तुम वही कहोगे
जो मैं हजारों सालों से सुनता आया हूँ।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1959-60। **साक्षात्कार**, भोपाल में फरवरी 1981 में प्रकाशित। **रचनावली** में पहली बार दूसरे सस्करण में सकलित]

ठीक है कि सिन्धु नहीं

ठीक है कि सिन्धु नही,
सिर्फ एक झरना है
किसी नदी का सुनसान तट तोड
उसे डूब मरना है ! !
सही है कि गिरता है पडता है
पथर्र.ले विजन ऊटपटांग प्रान्त-क्षेत्र मे
फिर भी वह लडता है !!
इसलिए कि जान है
व झरना है जान का !

हाँफता गाता है कोई जब
साँस उखड जाती है
टूट-टूट जाती है
टेक एक गीत की !!
किन्तु, दर्प-स्फीत उस
फुफ्फुस का जोर शानदार है
धडकन का ठाठ यों कि
बात जानदार है
अगले क्षण चाहे तो मृत्यु आय
लेकिन आज बादशाह !!
दिल के इस तख्त पर
गद्दीनशीन है
ज़िन्दगी
करे न करे उसे
कोई झुक बन्दगी
लेकिन जहाँगीरी खूब कर रही
गौर नूरेजहाँ
दिल की पवित्र लौ !!

और नज्ज़ारा
खूब है लडने का चार ओर
जूझने मरने का
तैश से हुलास से
चट्टानें तोड-ताड
राह साफ करने का
काँटे बीन डालने हमारे आस-पास से
दृश्य यह शिरा-शिरा-द्रावक है

भयंकर प्रकम्पन है
क्योंकि ये युद्धमान
वृद्ध
तरुण बाल-जन
करते वेदना-दान
विश्व को ।।
करते वेदना-दान
समस्त मनुष्य को
और वेदना-दान बहुत महत्वपूर्ण,
केवल प्राण-दान से काम नहीं चलने का
एक रोज़ फाँसी पर मैं भी चढ़ सकता हूँ
रोज़-रोज़ फाँसी पर झूलना महज नहीं ।

खून पम्प करते हुए हृदय के
वेदन-क्षम रक्तारुण मास पर
औरों का गरम-गरम
दुःख-रुधिर बूँद-बूँद गलने का
संवेदित स्पर्शमय अपरिसीम हृदय यह
रोज़-रोज़ दीखता
हाय !! हाय !!
मुझमें समाया है महाकाय
कोई दैत्य इसलिए सहन कर पाया मैं दृश्य यह ।

[अपूर्ण । सम्भावित रचनाकाल 1959-60 । साक्षात्कार, भोपाल फरवरी 1981 में प्रकाशित । रचनावली में पहली बार दूसरे संस्करण में संकलित]

एक अरूप शून्य के प्रति

रात और दिन
तुम्हारे दो कान हैं लम्बे-चौड़े
एक बिलकुल सियाह
दूसरा कतई सफ़ेद ।
हर दस घण्टे में
करवट एक बदलते हो ।

एक न एक कान

ठीक है कि सिन्धु नहीं

ठीक है कि सिन्धु नही,
सिर्फ एक झरना है
किसी नदी का सुनसान तट तोड
उसे डूब मरना है ! !
सही है कि गिरता है पडता है
पथरीले विजन ऊटपटाँग प्रान्त-क्षेत्र म
फिर भी वह लडता है !!
इसलिए कि जान है
व झरना है जान का !

हाँफता गाता है कोई जब
साँस उखड जाती है
टूट टूट जाती है
टेक एक गीत की !!
किन्तु दर्प-स्फीत उस
फुफ्फुस का जोर शानदार है
धडकन का ठाठ यो कि
बात जानदार है
अगले क्षण चाहे तो मृत्यु आय
लेकिन आज बादशाह !!
दिल वे इस तख्त पर
गद्दीनशीन है
जिन्दगी
करे न करे उसे
कोई झुक बन्दगी
लेकिन जहाँगीरी खूब कर रही
गौर नूरेजहाँ
दिल की पवित्र लौ !!

और नज्जारा
खूब है लडने का चार ओर
जूझने मरने का
तैश से हुलास से
चट्टानें तोड-ताड
राह साफ करने का
काँटे बीन डालने हमारे आस-पास से
दृश्य यह शिरा-शिरा-द्रावक है

भयंकर प्रकम्पक है
क्योंकि ये युद्धमान
वृद्ध
तरुण बाल-जन
करते वेदना-दान
विश्व को !!
करते वेदना-दान
समस्त मनुष्य को
और वेदना-दान बहुत महत्वपूर्ण,
केवल प्राण-दान से काम नहीं चलने का
एक रोज फाँसी पर मैं भी चढ़ सकता हूँ
रोज़-रोज फाँसी पर झूलना सहज नहीं।

खून पम्प करते हुए हृदय के
वेदन-क्षम रक्तारुण मांस पर
औरों का गरम-गरम
दु:ख-रुधिर बूँद-बूँद गलने का
संवेदित स्पर्शमय अपरिसीम हृदय यह
रोज़-रोज़ दीखता
हाय !! हाय !!
मुझमें समाया है महाकाय
कोई दैत्य इसलिए सहन कर पाया मैं दृश्य यह।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1959-60। साक्षात्कार, भोपाल फरवरी 1981 में प्रकाशित। रचनावली में पहली बार दूसरे संस्करण में संकलित]

एक अरूप शून्य के प्रति

रात और दिन
तुम्हारे दो कान हैं लम्बे-चौड़े
एक बिलकुल सियाह
दूसरा क़तई सफ़ेद।
हर दस घण्टे में
करवट एक बदलते हो।

एक न एक कान

जीवन्त मान्यता-सी
जिसके अनुरोधो द्वारा जगत्-चक्र की गति
अपने अनुसार मोडना चाहता है।

3

युग के जग के गहरे विक्षोभो के अनथक
भूचालो ने फाडी जमीन ही नही वरन्
जब एक धरातल नभ तक लाकर खडा किया
जीवन ही ऊँचा उठा दिया
मानव-अनुभव की सचित शिला-शैलियो के
ऊँचे त्रिकोण-से शैल शिखर पर उगा दिया
वह जगन्मनोहर मेधावी रक्ताक्त सूर्य
या उस जैसा इन्सान कौन,
जो दीख रहा ?
सच तो यह है
जा लाल-लाल भीतर प्राणो मे लहराता
जीवन-अनुभव का रुधिर ताल
उस रक्त-ताल के तल मे से
फूटा है गहरा रश्मि-जाल
सच, हृदय-रक्त के लाल थाल
मे डूबा, गहरे डूबा है,
जीवन विवेक
दुर्दान्त ज्ञान का मणि अशोक
वह मणि है या रवि-खण्ड एक
जिसकी अशान्त किरणें फिरती हैं सभी ओर
खोजती ढूँढती लगातार
जीवन-अनुभव के शैल-शिखर पर खडे हुए
अपने अखण्ड रवि का तेजस्वी बिम्ब भाल !!

4

उस मणि की किरणों ने खोज
गगा क, रेवा क्षिप्रा के
कृष्णा के कूलो के उठान
पर भव्य गूजते हुए गान,
या हृदय-रक्त
के स्वर चित्रो मे व्यक्त नया इन्सान एक
घन-तम म विद्युत-से प्रतिपल
कौंधते हुए प्रश्नो के दल
को दिनमानो-सा समाधान या मानदण्ड
सूरज के टुकडे ने—मणि ने

खोजा अपना भास्कर अखण्ड
जन-जन के संघर्षों म जीवन की उठान का आसमान।

5
मिथ्याचारों भ्रष्टाचारों की मध्य रात्रि
में सभी ओर
काले काल वीरान छोर।
खुदगर्ज़ी के बदसूरत स्याह दरख्तों की
गठियल डालों पर रहे झूल
फाँसी के फन्दों म मानव-आदर्श-प्रेत !!
जैसे सूखे जगली बबूल
वैसे निर्हेतुक जीवन की शुष्का कविता।
सत्ताधारी की पैशाचिक हड्डी के पजे की सत्ता
जीवन हत्याओं की काली यह रोमहर्षमय देश कथा
अब क्षितिज-क्षितिज पर गूँज रहा
चीखता हुआ-सा एक शोर
शोषण के तलघर म अत्याचारों की चाबुक मार घोर।

6
ये तपी जिन्दगी के पठार
के कडे कोस
चिलचिला रहे, आग-सी धूप,
अथवा विराट् युग का व्यापा है क्रुद्ध रूप।
ज्यों लौह-खण्ड के लाल सिरे पर स्वर्ण शिखा
या क्षुब्ध पहाडी मिट्टी के कण म प्रचण्ड
रवि की कणिका
धधके,
वैसे, विचार भभके
मानो वे हों गहरे जन-सगर के प्रसग
या युग-युग की अनुभव-पीडा के लाल-लाल
पत्थर के ज्वलत् कोयले के दुर्धर स्फुलिंग
विस्फोटों स उत्पन्न
कि जिन विस्फोटों द्वारा ही
मेरे जन खनते रहते, इन्सानी मिठास
के नये-नये
तालाब-कुएँ
मानव-सम्बन्धों के आशय अमृत-स्वरूप
य तपी जिन्दगी के पठार चिलचिला रह
है भव्य धूप !!

7

भूरे वीरान खँडहरों की ढूहों-खड्डों से कटी-पिटी
सुनसान भूमि में भी,
भीषण उदास टूटी भीतों के आस-पास
गुंजान शून्य में भी,
ताज़े गुलाब के फूल चमकते रहते हैं,
चम्पा की डालों में नीला आकाश फँसा रहता,
वन-मुग्ध कुन्द के तारे हमें देखते हैं।
अस्तित्व-समस्याओं के फूटे आँगन में
त्यों मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ
घन-मौलसिरी, केवड़ा, करौंदी सी अपनी
मृदु महक-छाँह डालकर
कि दीप्त किरण फेंककर
वीरानी में दिल की मिठास घोलती,
बेचैन किये रखती उदास भी करती हैं।
ज़िन्दगी और उलझा देती
वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ।

ज़िन्दगी एक जंगल है,
जिसकी पेचीदा पगडण्डी पर
ठोकर से, पैर-अँगूठे के
उखड़े नख में से बहते खून लाल ताज़े
का तेज़ दर्द भुलवा, कोई
द्युति-चुम्बन की झाँईं आकर
आत्मा विद्युन्मय करती है।
हम बीहड़ वन में सर्प भयावेष्टित
आलिंगन में आवेष्टित चलते जाते हैं।
वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ
हमको सहारती जाती हैं
अकुलाते क्षुब्ध रहित में, तीव्र न्यून म भी।

हम खँडहर के वासी हैं···
कोमल खुली-खुली आकाश-नीलिमा को पीकर
तारों की गतिविधियाँ जीकर
गहरा दिक्-बोध हमें होते रहना स्वाभाविक है,
करते जाते हैं तीखा-तीखा विश्लेषण।

रखते हैं ध्वस्त भीत के आले में दीपक,
उसकी आलोक-महक में बालक हँसकर भी
गम्भीर-गहन, एकाग्र, पीत-मुख दिखते हैं,

माना कि ज़िन्दगी बदरंग विकृताकृति-सी है,
पर, उसके दरिद्र परिदृश्यों के भीतर भी
वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ
जाने क्या-क्या कर सकती हैं,
दिल में मीठी ताक़त-सी एक कसकती है,
व्यक्तित्व महकते रहते हैं।

ज्ञानात्मक संवेदन के कोमल पारिजात
की सुगन्ध-लहरों में से लपट निकलती है,
उन लपटों में से चन्द्र-सूर्य
द्युति-जगत् निकलते रहते हैं
आगामी के।
बस, इसीलिए
वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ
यह कहती हैं—
'पार कर मुश्किलें सभी
जादुई अरुण कमल
उस दूर देश के रश्मि-विकीरणशील सरोवर का
तुम ला देना,
एकाग्र प्रयत्नों का वह कोमल अमृत पिला देना,
सन्तापग्रस्त जीवन की दुर्निवार औषधि लानी होगी
यों मर-मरकर ज़िन्दगी यहाँ पानी होगी '
बस इसीलिए
हम प्रिय-जन की
मृदु कृपा दृष्टि या कोमल स्मित
के लिए तरसते रहते हैं,
इस कारण ही
व्यक्तित्व भव्यता
जीवन-अनुशासन, समाज-परिवर्तन के
सपनों से कोमल रंग बरसते रहते हैं,
आत्मा विद्युन्मय होती है द्युति-चुम्बन से
अक्टूबर में भी और जून में भी।

8
जीवन-यथार्थ के गणितिक विश्लेषण में रम
तुम स्वयं, एक—
सब कुछ कटने पिटने के बावजूद बच रहती संख्या के अनुक्रम
में देख
गहन सौन्दर्य-स्वप्न-माया
गम्भीर-मुखी सोचने लगी।।

मीठी विशाल लहरों में जी भी अकुलाया !!
वह नित्य शेष क्या है ?
जन है !!
मन है, हम हैं, यह जीवन है
जिसके उन्मेष-अनुभवों की मिठास पीकर
मन मे रंगीन धुँधलका या
उद्दीप्त सुनहला बादल सा !!
जिसके आवेशों में बहकर
धीरे बढ़कर
नव-जिज्ञासा की किरणांगुलियों से
मेरे मन के हलके से खोले अन्ध-द्वार !
तब समझा—
मानव-मुक्ति-यत्न के रूप बहुत
प्रेरणा एक, पर है अन्वेष-स्वरूप बहुत
मैं समझ गया—
मन की किरणें ही खोज रही
यों एक नये रवि का-सा मानव का निखार !!

9

जाने किस मिठास के उजले, सब पहचान रहे पल में उदार
तुम अकस्मात् यों व्याप गयी
क्षिप्रा-तट की ठण्डी बालू के सुप्रसार
को किरणों की ऊष्मा ही जैसे माप गयी।
झरने की झरझर कंचन धारा अकस्मात्
पथ रोक गयी, पथ चीर गयी
झुरमुट-तल की एकान्त गन्ध
मुझको छूकर
वासन्तिक विश्वासों की गहरी पीर हुई।
यह देख आज मैं स्तब्ध हुआ
स्वाभाविकता की ऐसी आकस्मिकता पर *मन मुग्ध हुआ।*

10

यह सुबह-सुबह की हवा, आसमानी तलाश
में घर-आँगन के आस-पास
उसके भीतर
ताज़े मुख छू, बाँहें छूकर, ऊपर उठकर
गम्भीर मर्मरित करती है
पीपल को, त्यों
मेरे मस्तक में बात सरसराती-सी है
वह कहती है—

मैं नहीं जान पाया, तुम कब मे व्याप गयी
ऊष्मा बनकर बालू के कण को माप गयी,
...
मैं सोच इसे हो जाता हूँ यूँ ही उदास
यद्यपि बन जाती छन्दों की लम्बी लकीर भी अनायास !!

11

कब एक-दूसरे के वैयक्तिक तल पर, बोलो, गया ध्यान !!
पर, ठीक उन्हीं भीतरी घाटियों मे सहसा
बहता आया, दोनों की आँखों से ओझल,
स्नेह का एक निर्झर मुनील !!
जी के झरन मे जल मे
मानव-युग की कचन-रेख खिची,
बस एक अवश्यम्भावी भावी की मिठास ज्योतित !!
इस वर्तमान के काले ताने-बानो के सौ मकड-जाल
को दूर अलग करने म डूबे थे कि तभी
कठिन पिछले अनुभव
सारा विक्षोभी ज्ञान और
आपस मे उलझे-से अजस्र
सन्ताप-अश्रु-चिन्ता सहस्र
बातो-बातो मे दोनो के
यो उठे-घिरे, यो छँटे-छने यो भरे-झिरे
मानो विस्तृत रेगिस्तानी मीठे पानी की एक झील बन गये
व उनके आस पास
मानव-अन्तर की एक सभ्यता का-सा सुन्दर मरुद्यान हो गया
कि जिस आन्तरिक सभ्यता का अपना इतिहास
कठिन सग्राम-काव्य, रोमास, ललित-विस्तर
गुणाढ्य की छल-उद्घाटक वृहद्-कथा
हैं मानवीय माधुर्य क्षणो की द्राक्ष लता
जिसके भीतर,
उस मरुद्यान के सरवर मे से फूट पडा
निर्झर नीला
मेरे जी म बहता आया
बस वही तुम्हारे अन्तस्तल मे लहराया ।।
उसका कितना मीठा पानी
मानो असख्य अनदिखे अछूते फूलों का उसमे पराग
केसर का-सा, ईमानभरा, अनकहा गहन आत्मीय, राग
घुलता रहता ।
मानो सारा सकोच त्याग खुलते जाते
मृदु अन्तराल

आश्वासभरी ऊष्माओं के।
इस मानव-तल पर एक हुए हम दो समान,
कब एक-दूसरे के वैयक्तिक तल पर बोलो गया ध्यान ?

12

प्राकृतिक झील का जल पीकर तुम परिणत थी
मानो बलूच स्त्री पर्यटिका
भीतर थी प्रतिपल नरम आग
या अग्नि-पुष्प
अन्तर्जीवन अंगारों की वाटिका।
तब अकस्मात् गहरी उचाट
खा, तन मन में
चल पड़ने की व्यग्रता
अपने प्रति, जग के प्रति कोई उग्रता
दैनिक उथले जीवन के नित्य समानान्तर
गहरे जीवन की धाराएँ भीतर भीतर
इस द्वैतपूर्ण विघ्न को मिटा
अग्रत प्रयत्नों की उदग्रता में तुम भी
देखने लगी बेचैन स्वप्न
उस जीवन का
जिसमें व्यक्तित्व चरित्र भव्यता के युयुत्सु
प्रेरणा-उत्स धारण करने के कारण ही
निर्वासित-निष्कासित होते हैं लोग
कि वे अज्ञातवास में फिरते नंगे पाँव
अपने तन मन-जीवन पर दुःसह उज्ज्वल भावों के प्रयोग
करके वे दुर्निवार होते
धन-सत्ता की नींवें कुरेदते वे अपार होते।
तुम आसमान के नीचे धरती पर निर्मल
केवल मनुष्य, केवल मनुष्य
बनने को यों आतुर कि मुझे
भवितव्य तुम्हारा दिखा बहुत भीषण उदास
ध्वंसों का डीलडौल ऊँचा
जिसके समीप
वह नयी सड़क जो बनी
सिर्फ वह एक मील
हाँ, एक मील
करना होगा पूरा प्रयास
मरने का, मरते रहने का पूरा प्रयास।

13

जिसकी मैंने तुमको उपमा दी अकस्मात्
उस निर्झर की झरझर कंचन-रेखा सुनील
में हाथ डुबो
जिस जल को पीन गया मैं कि
वह पानी था ही नहीं, वरन् यह ज्योतिवाह
नक्षत्रों-ताराओं का था वह द्रवीभूत
तेजस् प्रवाह
युग के अनुभव-लक्ष्यों की उसमें डूबी थी नीली प्रभात
जिसकी मैंने तुमको उपमा दी अकस्मात् !

14

इन दो विभिन्न जीवन-प्रान्तों में वह, अयास
अपने-अपने व्यक्तित्वों की ले भिन्न गन्ध
अपनी-अपनी पर्वतमालाओं से ला भिन्न-रूप अनुभव-वालू
दोनों निर्झर कैसे लगते हैं आस-पास !!
जब दोनों की युग-प्रात एक, युग-निशा एक
है एक जबकि दोनों की मंजिल, दिशा एक
वे एक दूसरे को मंजिल बन गये आप ;
वे एक-दूसरे को नीले-नीले अनन्त-से लगते हैं !!
अनुभव-स्फुलिंग किंशुक-पलाश वन जगते हैं
मानो भीतर का वसन्त अगली कठिन परीक्षाओं
की गहन गभीर अपेक्षाओं से पीड़ित रहता हो
भर ऊष्म श्वास !!

15

सूखे हुए बबूलों के वन-मैदानों के आसमान
में खिला चाँद,
मीठे समीर-सा लहराया
मैदानी आत्मा का सोंधा आशीर्वाद
मुग्ध-स्मिता चाँदनी के
अज्ञात प्रदेशों के अछोर
में बहती है
विस्तार-भव्यताओं की चेतन एक गन्ध
उसकी मीठी कोमल झकोर
या कोई गहरा वक्ष-स्पर्श
या उर-स्पर्श
हममें उँडेलता अकस्मात् नवीन साक्षात्कार
मीठी उसकी पहचान नयी,
गहरी कोमल अह्-अग्नि-वेदना सजग हुई ।।

फिर भी, वह क्या ?
सप्रश्न हँसी !!
हम-तुम दोनो चुपचाप मग्न मन मे
अनुभव करते रहते नूतन जन मे
अगारी रिश्ते का पहचाना चेतन दर्दीला उठान !!

अगारी सज्ञाओं का दर्दीला उभार
भीतर-भीतर वह उठता है,
चाँदनी रात मे, बर्फानी परतो से मानो पिघल उठे
जल-अमल-रुपहली चन्द्र-धार
या गगा अकुलाते प्रकाश की
प्राण-श्वास आशाभिलाष की
बाँध रही भू-नभ को जो
गाँठो मे गहरे प्राण-पाश की।
सत्य मे स्वप्न
स्वप्न मे सत्य
की मिली-जुली सम्मिश्र गन्धवाही बयार
बहती है सूखे हुए बबूलो के मैदानो मे अपार
जो अरे, बना जाती हमको
चेतन अगारी चमत्कार।

झरबेरी के ही आस-पास
हैं मुग्ध भटकटैया के पीले फूल खिले
जगल-तुलसी की साँस-साँस
गूँजते मौन लक्ष्मण के स्वर—
'उर्मिले, अरी उर्मिले !'
बीसवी सदी की मानवीय उलझने
औ' · मानवीय प्रेरणा
ले ही आयी जब यहाँ हमे,
थूहर के सजग-कण्टकित रक्त-कुसुम-वन मे
हम अजी, नये आदमी बने ! !

वन-मैदानो की पगडण्डी
के कूल-किनारे उगे हुए
चाँदनी रात मे खिले नयन
शत शिला-सन्धियो से उकसे पुष्पित लोचन
दर्शन-आलोचन भावो मे
हैं देख रहे—
पगडण्डी पर आगे बढ़ते
ये सधे उदय जिन दोनो के

वे तिमिर-दिशा मे सुप्रभात-से होने के।
प्रस्तरी दरारो से उभरे
इन वन-फूलो की आँखो मे
शबनमी चमक बन तिरती हैं
सब व्याकुल सम्भावी सुबहें
अब अपनी बातें कौन कहे !

इन सूखे हुए बबूल-वनो के मुग्ध
चाँदनी देशों मे
हम अपने मन की ज्योत्स्ना के आवेशो मे
जीवन-अनुभव के अपने-अपने वातायन
से झाँक रहे
या एक-दूसरे को ऐसे थे देख रहे
मानो कि सामने—
मुग्ध-नयन मानवी उषस्-सौन्दर्य-दृश्य
या कोई आविष्कार नया,
अपने-जैसा ही चमत्कार !!

पीपल के नव-मर्मर रव से
निर्झर के निर्झर-अनुभव से
यूँ बहते हुए अनन्य
एकता के समीप
हम सहसा, दूर, विभक्त हुए
फिर अलग-अलग जाकर
निज पर विस्मित होकर
अनुरक्त हुए,
जीवन-गलियो-रास्तो-चौराहो की अनगिन
रेखा-रगों के बारे मे हम बोल पड़े
वे अनुभव सारे मुखर हुए,
मानो उनके छाया-शरीर
इन मुग्ध चाँदनी-देशो मे हैं विचर रहे।

16

आपस की बातचीत मे रम
अनुभव के सिन्धु-गीत मे हम
शिखरों पर पहुँचे-से ही थे कि अकस्मात्
जाने किस आकस्मिक जागृति से सन्नाहत,
आहत हम
अज्ञेय शक्ति के तड़ित् वज्र-से हम परिणत
भीतर से पहचानती हुई

गहन वेदना की पुकारती प्राण-लहर-सी उठी
कि उसको दवा लिया
यो तडित् वज्र को अपने भीतर खपा लिया
मानो कि आज सब हुआ खत्म
मिट्टी के कण-कण मे नक्षत्रो के कण-कण से हम और तुम
नि शेष हुए, बाकी न बचे
बस शेष रह गयी एक पीर
मानो यह फैली हुई धरा और आसमान
आपस म घुल, ले नया रूप
वन गये एक वह सवेदन व्याकुल समीर
बेचैनी मे जो भाग-भाग
करती सी है सीमान्त पार
योजनो दूर से मँडराती पागल पुकार-जैसी बयार ।।

दोनो की आँखो मे उदिता सज्ञा की लौ
ने एक-दूसरे को देखा—
कुछ उठती गिरती और बिलमती लहरीली सागर-रेखा
सागर सवेदन-रेखा
ने पूछा—'यह क्यो, यह सब क्यो
ओ री ! छवि की आकाश-दिशाओ, उत्तर दो'
आँखो मे किन्तु खुशी की कोमल चन्द्र-किरण
शबनम-जैसी कुछ दर्दीली पहचानो की,
मुसकरा उठी बल खाकर छायाएँ विशेष
कुछ गरबीले अभिमानो की चेहरे पर थी ।।
फिर मुक्त हास के स्वर मे डोल गये
सकोच गया उलझन मे जब कुछ बोल गये
फिर मौन कि फिर नीरवताएँ
चाँदनी-सलिल से धुली हुई
मन की गरिमा थी श्वेत शिखर-सी खिली हुई
हम भावोन्नत ज्योत्स्ना के मोहित चन्द्र हुए
जीवन की धरती
मन के नीले
आसमान से मिली हुई
बीसवी सदी की मानवीय उलझनें
और मानवीय प्रेरणा
एकान्त किनारे लायेगी किसने यह था कब कहाँ सुना
पिघले कुन्दन-सी आँचभरी वेदना लिये
सहसा स्वचेत हम हुए कि लहरायी अजीब
जगभर को, जी मे भर लेने की अकुलाहट
'मैं क्या न करूँ, क्या कर डालूँ, सब कुछ कर लूँ'

के भावो की अपन ही कानो म आहट ! !
यो लगा कि मीठा अस तोष छटपटाहटें
अव बहुत सनातन बनकर मन म उभरी हो
भू को नभ से जोडते हुए स्वर्गीय
रश्मि के नये फूलो-सी निखरी हो
वह साफ दीखती पगडण्डी-सी चमकी है
भीतर ही भीतर असि धारा दमकी है
उस एक पीर के नाते मानो सध हुए
इतिहासा क मानवी स्पश सव बँध हुए
जन प्राण दिशाएँ थी आपस म मिली हुइ
उसके बारे मे कहते थे
हम-तुम अपने-अपने मन से
मानो अनादि कहता अनन्त से
पल क्षण से।
जीवन-यथाथ के स्पर्शों मे
सत्य के नये आवेशो म
मन गगा यमुना स कृष्णा तक हो आया
लौटते हुए पैरो की ध्वनि यह कहती थी
जीवन की कितनी है प्रदीप
कितनी मीठी मानव छाया !

दो अमोल रत्नो की आभाएँ पसार
ज्यो दो विचार
आगे-आगे बढकर गभीर
निष्कप एक मे समा चलें
त्यो एक दूसरे के निष्कप बन-स हम चलते जाते
सोचते हुए
झरबेरी के ही आस-पास
जब विश्व-तृषा के स्वणपाश
तब वन-तुलसी की मजरियो मे खिलता है अपना हुलास
अपना सब कुछ
इन सूखे हुए बबूलो क वन मैदानो के आसमान म खिला चाँद
मीठ समीर-सा लहराया
मिट्टी की आत्मा का गहरा आशीर्वाद।

[सम्भावित रचनाकाल 1953 स 1960 तक। नागपुर राजनाँदगाँव। खण्ड 7 लहर दिसम्बर 1962 म अक्टूबर म भी जून म भी' शीपक स प्रकाशित। **भूरी-भूरी खाक-धूल** म सकलित]

एक टीले और डाकू की कहानी

चट्टानी कण-कण मे
मिट्टी के साथ-साथ
चमकीले जो अणु हैं,
गुण हैं वे।

विरूपाकृति कोणात्मक
टीला यह औघड है,
यद्यपि जड
परन्तु भव्य स्थिर क्षमता।

पर्वतीय शीर्ष शिला
यह टीला

असभ्य व अकथनीय पीडा की
अजब कत्थई धूल
दिशाओ के अजनबी दर्रों म
उमगती जब,
गोपनीय भावो-सा जामुनी
सन्ध्या का नीलापन सरकता है
पहाडी धरती के चेहरे पर गालो पर।
उचित किन्तु परित्याजित
उदास पगडण्डियाँ
पर्वतीय ढालो पर सँवलाती।

व सुदूर जगल मे
दीप्तिमान नारगी ज्वाला-सा
तारा टिमटिमाता है
जामुनी अम्बर मे।
मेरा यह शिला पुरुष उदास हो जाता है,
कण-कण तडपते है चट्टानी चगुल मे,
चिन्ता की एक खटक
अँधेरे मे काँपती अटकती उलझती है
भीतर के अनजाने सारे स्तर
पिराते रहते हैं।

डूब गयी सन्ध्या, अब क्या हो!!
भूखी व अन्धी आत्माओ,

अब क्या हो,
क्या हो,
आर्त पुकार उठती है—रास्ता बताओ !!
दिनभर तो चट्टानी टीले ने स्तवन किया
मन-ही-मन, दिनकर का—
ओ भास्कर ! तुम मेरे गुरु बनो,
गुरु बनो !
किन्तु सूर्य नीरव था,
निर्निमेष निरपेक्ष अनाकार ऊष्मा की श्वेत पलक
फैलाकर
चट्टानी प्रसार वह देखता रहता था।

और तब वृहद शिला-पुरुष ने आर्त-स्वर
रवि का फिर स्तवन किया—
ओ प्रतीक आत्मा के,
मेरे ही चंगुल से
मुझको तुम मुक्त करो !
चट्टानी सामंजस्य टूट जायें,
जड़ीभूत संगतियाँ लड़खड़ायें,
शिलीभूत सन्तुलन बिगड़ जायें…
अनवस्था तेजस्वी व प्रचण्ड असन्तुलन
मुझको दो
कि जिसमें ब्रह्माण्ड-धूल बनकर मैं
गहन अनन्त में
संवेदनशील पटल बन सकूँ
अनेकानेक तारा-रश्मि-उल्का प्रकाश में
उजल सकूँ,
विभिन्न गुरुत्वाकर्षण अनुभव करता हुआ
भीग सकूँ
विराट जीवन से…

परन्तु, सूरज ने भीषण अनसुनी की
टीले की धून यह शून्य अनन्त में
पसरकर फैले भी,
अपना प्रकृति-गुण (जड़िमा) न छोड़ेगी
सूरज ने इसीलिए अस्वीकार कर ही दी
उसकी सब प्रार्थना।

टीला अब और उदास होता है
परन्तु, यह अजीब है

कि चट्टानी पुर्जे वे भीतर-के भीतर से
उसे अधिक कसते हैं
ज्यादा सख्त होती है सियाह चट्टान वह।
अन्तर्व्यक्तित्व है किला एक सीस का
काला है सीसा पर
किले का गुम्बज तो
सघनित शीशे का बना हुआ बुलबुला
पार-दृश्य-दर्शी है
कि जो अपने भीतर-के-भीतर सब
चाहता समेटना
ग्रह-नक्षत्र-तारागण-नेब्यूला
दिक्‌मण्डल।।

सच यह है—
चट्टानी शरीर म मृत्कण के सिवाय भी
बहुत आँय-बाँय शाँय के सिवाय
कई और है
और है अछोर
पर धँसे हुए
चट्टानी चंगुल मे फँसे हुए
भीतर के दीप्तिमान रत्नकण,
पत्थर के कण-कण पर
हँसते हैं
हँसने मे दुखते हैं।
दुखती हुई गाँठ ज्यो झपकती है,
कहते हैं—
'हमने तो पहले कह रक्खा था
तुमने अनसुनी की'

और अब जामुनी उदास सन्ध्यावशेष-वेला मे
चट्टानी मृत्कण सब
उठी हुई चीख रोक लेते हैं,
शून्य आकारहीन
चेहरा हो जाता है खल्वाट शीश-सा
एक सिफर
साँवला।

बधिर रात,
अँधेरा, पत्थर-सा
शिला के अन्तर मे दुखते हुए रत्नकण

भीतर अँधेरे में
बार-बार चमक-चमक उठते हैं
झपक-झपक उठते हैं ।
पुन:-पुन: पीर चिलकती है
भीतर अँधेरे में ।

तमोमय शिरान्तराल में फँसे हुए
यत्र-तत्र इस प्रकार
अपने को समेटकर बैठे हैं रत्नकण
कि दल बाँध ज्योतिमान जुगनू
ज्ञानात्मक-संवेदन-इलेक्ट्रॉन बैठे हों ।

मृत्कण की चिन्ताएँ भिन्न हैं,
रत्नकण-पीड़ाएँ बिलकुल नवीन हैं ।

इतिहासिक विवरण दे
निज चरित्र न्यायोचित ठहराते
मृत्कण ये इस तरह अपने को सहलाते
किन्तु, चैन लेने नहीं देते हैं
रत्नकण ।

भूलों की मशीन-सी परम्परा भीतर की,
बहुत चोट होने पर टकराती
खोल नहीं पाती है
रत्न-किरण तथ्य खोल देते हैं
चट्टानी अन्तर में अकस्मात्
        झोल पड़ जाता है
        दर्दभरा ।

रत्न-रश्मि-रेखाएँ
भीतर अँधेरे को
ज्यामितिक रूपों में निखारतीं
विविध दिशाओं-रेखा पर अन्धकार
प्रश्न बन प्रस्तुत हो आता है !!
किन्तु, मूल्य सीमाएँ होने से
विश्लेषण प्रकाश का हो नहीं पाता है ।

इलेक्ट्रॉन-धारा प्रवाहों की धारों में
अदीक्षित भीतों में घिरे हुए मर्म सब
इनसे अधिक विकसित होते हैं कि

घर छोड देते हैं,
नाच-नाच उठते हैं अगारी पीडा मे।
अन्त प्रशान्ति सब तेजस्क्रिय होती है।

पर्वतीय शीर्ष शिला
यह टीला
तारा-नक्षत्र-द्युति-दिक्मण्डल नीचे अँधेरे मे
अकेले व सपाट अँधेरे म
अग्निमान होता है
आभ्यन्तर दीप्ति से।
अँधेरे की बहुत स्याह गहरी लकीरो से
जगह-जगह काटा गया
प्रकाश-पुज बनता है
टीला वह।

किन्तु, इन अगारी अणुओ से न टूटता
ढाँचा वह,
चट्टानी चौखटा यथा-पूर्व
केवल अँधेरे मे
भीतर सुलगती हुई
शिला
रक्ताभ जामुनी सुनील
अद्वितीय
आकर्षक लगती है
असामान्य।।

मजा यह है कि जब जब वह टीला यो
तेजोमय होता है
दिखायी नही देता है किसी को भी!
औरो का और गरीब लगता है,
अधिक हीन, अधिक हेय,
अधिक तुच्छ।
झोल खायी हुई, कुचली हुई दीखती
शिला-रूप रेखा वह।
टीले के दोस्त और रिश्तेदार
चट्टानी समाज
कन्दराएँ कगार और पहाडियाँ
कहती हैं—
वह टीला
सफल नहीं,

ढीला है, आत्मग्रस्त
मूर्ख ।

इतने में भयानक एक दुर्घटना होती है
अकस्मात् अँधेरे में
अनदिखे दिक्पथ से
कोई एक दैत्य के समान आ
टीले के सीने पर आसन जमाता है । ।

एकाएक बुझते हैं भीतर के इलेक्ट्रॉन
मुरझाते हैं आभ्यन्तर अग्निकण
अस्तमित होते हैं पॉजिट्रॉन तेजस्वी
सियाह एक कंपकंपी
थरथिर डूबती भीतर ही
सिर थाम मर्मागार चीखने लगते हैं—
'जान न लें हमें
शनाख्त न कर पायें
पकड़ में न आयें हम
इसीलिए, अँधेरे की सियाह खाई में
धँस जाओ ! धँस जाओ !
मस्तक को घुटनों में समेट लो
प्रतिभा की चमक कहीं
दिख न जाय
हाय ! हाय !'

टीले के अन्तर में
कर्पूरी एक लहर
सौ-सौ फैली हुई बाँहों में घुटने भर लेती है !
दूर-दूर दिशाओं में
टीले की छायाएँ
घूम रही थीं वे
अचानक ही दौड़कर
घुस पड़तीं
चट्टानी अन्तर के विवरों में
टीला हुआ कण्टकित
स्पन्दित आतंकित । ।

मन भर पड़ताल और रात का कुहरा है,
पत्थरी कमान का सितार आज बजता है,
दूर उधर सितार वार,

अँधेरे मे लुप्त एक
गाँव धधक रहा।
नारगी, गेरुई सिन्दूरी कत्थई
ज्वालाएँ बढ रही।
भीतर दिल जले हुए कागज़ सा मुड रहा।
टीले के सीने पर
आसन जमाये है
दस्यु एक।
उसी ने, निकाली बन्दूक और धाँय धाँय ! !
कौन ग्राम जल उठा
लुट गया कौन आज हाय, हाय !

दिक् दिक् म अग्नि बिन्दु बिन्दु की लकीर-सी
डरावने प्रकाश के अजीब डैश डैश,
वर्ण और वाक्य सब गायब हैं।
एक अभाव सब कुछ कह जाता है।
सब कुछ लिख सब कुछ कर
कोरी रही जिन्दगी
स्याही ही ढुलक गयी सपाट इस कागज़ पर
और अब सामने
काली पृष्ठभूमि के प्रसार म
भुसभुसे अभरक के चमकदार
वर्ण
उभर आय हैं—
डाकू है
मुल्क है डाकू का
समझ गये ! !
तुम्हारे ही सीने पर बैठा है
आसन जमाकर वह'

भीतरी इलेक्ट्रान
अँधेरे मे कसमसाने लगते हैं
भीतर के न्यूट्रान
फुसफुसाने लगते है
कहते हैं कि दुर्भाग्य भीतर का
दुर्योग बाहरी
दोनो एक जगह आ
मिल गये
दोना की युति हुई !
भयानक ट्रैजेडी !

छिन्न भिन्न होता है सभी कुछ सभी कुछ
पर, शिला पूर्ववत्
चौखटा न टूटता
भीतर के कण भले टूट जायें
शिला न होती भग ।

रत्नकण मृत्कण को विकेन्द्रित करते हैं,
मृत्कण और उत्तेजित होते है,
हाँफ-हाँफ करते स्वीकार दोनो यह—
चट्टानी निजत्व न होता तो
डाकू क्यो सीने पर बैठता !!
अपराध-भाव ग्रस्त
मृत्कण सब
निराशा के तेलिया काजल मे
स्याह सन जाते हैं।
दुर्भाग्य जीवन का
धुएँ के स्तूप सा लहराता उठता है
आसमान छूता है !

मृत्कण-सन्धि-रन्ध्रो से
श्याम रक्त फूटता
दु खपूर्ण भावो का।
परन्तु ये रत्नकण अचानक देदीप्यमान
कहते हैं—
'तीसरा अध्याय अब शुरू करो,
आये नया चौराहा,
अगले उलझे दूर विमार्गों पर चलकर ही
भाग्य भी बदल जाय,
सम्भवत,
सवेदन प्रेरित सब मित्र-सुहृद
मर्मों के कोप छू
ग़लतियाँ बता सकें,
पृथ्वी से तिमिर-रात्रि-नभ तक का
यमपथ भी,
दीप्तिमान कर सकें सहृदय ये मित्रगण
सम्भव है
रत्नकण कह ही यह रहे थे कि
उस समय

उस समय

गहरी उसांसों का
एक छोर छा गया;
पहाडी दरों मे सफ़ेद भाफ भर उठी
भर गये खाई मे मलिन गैस-बादल और
गुहाओ से शब्द साफ गूँजते हुए उठे
चट्टानी कगारो के गले फूटने लगे
ठूँठ बडबडा उठे
पहाडी छाती पर साँप लोटने लगे
चारो ओर विरोध-वातावरण छा गया।
डरावनी गूँज उठी—
'बदमाश टीला वह तेजस्क्रिय मूर्ख है,
लाख है, सुर्ख है,
असामान्य बनता है
अद्वितीय रहता है
जडीभूत सतहो से, पत्थरी खाल से
मिट्टी की छाल से, चट्टानी ढाँचे से
पहाडी चौखटे से विद्रोह करता है !!
तेजस्क्रिय मूर्ख वह
वस्तुत भयकर है शत्रु असाधारण।

इतने मे जबर्दस्त हवा एक आती है
उसके हैं सैकडो प्रवाह और
प्रत्येक धारा मे लाख-लाख लहरें हैं
और लहर लहर मे
भाँति-भाँति भिन्न-भिन्न
सवेदन-स्पर्श हैं
प्रत्येक स्पर्श मे
प्रजागरित स्वानुभूत ज्ञान-मर्म
एक-एक मर्म मे अनगनित अगार
सूरज के मस्कार
ऐसी है वह हवा
जिसमे सौ अग्निमान
नभोपुष्प-गन्ध है
अनेक देश-देशो का ज्वलत् जीवनानुभव
परिणति-शक्ति का परिवर्त-स्पन्द है।

अकस्मात्
टीले से लिपट हवा झूमती !!
मानो बाँहो ने पीठ
व्याकुल पकड ली हो

भीतरी दरारों म पानी की थर्राहट
चट्टानी अन्तर म
और जल प्रवाह म सैकडा दिय तैर रहे हैं
हवा के बाहुपाश म समा रहा
सूय-तारा समेत
शिला-अ तरान मे सारा आकाश वह
प्रजागरित जीवन का।
और तब प्रतीत हुआ
वह शिला
धरती पर
टूटा हुआ खण्ड है
आकाश गगा का ज्योतिमान
और वह हवा किमी
अ य ब्रह्माण्ड का
स देश नायी है।

टीले ने स्तवन किया—
नभयात्री ओ पवन
साथ तुम्हारे तो जगधात्री वर्षा है!
प्रहार हो टीले पर
तडित-पात कर डालो!!
इस तरह चूण चट्टान हो कि रेणु-अणु
भीतरी पुर्जों को तोडकर
सूरज पर चने जायें
अनेक कण प्राक्जिमा सण्टारिस जा पहुँच
अनगिनत प्रकाश वप गतिया की
यात्राए प्राप्त हा
नये-नय अनुभव उपलब्ध हा
नव नवीन द्रव्यों को ज म द
नव नवीन ब्रह्मगोल सतत समुप न।
लाल-तडित धाराएँ
इस तरह झकझोर
कि हृदय कोष गह्वर म
ज्ञान रुधिर भर जाये!
सिहर उठ सशोधन वेदना
पुन पुन
पुन -पुन सगठन वेदनात
अनवरत तेजस्वी अनवस्था
व विकसित होता हुआ गतिशील सामजस्य
अनवरत असन्तुलन

व विकसित होती हुई
गतिशील सगतियाँ
मुझको दो
टीले की देह से छुटकारा प्राप्त हो।

हवा चुप रही थी कि
वह हँस पडी थी और,
टीले ने फिर कहा—
'अपने समाज म, सच, मैं अकेला हूँ
जिनका मैं अग हूँ
जिनसे है श्रेणीगत एकता
व मुझस दूर है।
मुझे दुश्मनी निगाहो से देखते
जो मुझसे एकदम भिन्न हैं
वे मेरे मित्र हैं
परन्तु, गुणधर्म जो स्वाभाविक उनके हैं
मेरे न हो सके
इसीलिए पगु हूँ !! क्या करूँ
क्या करूँ !!

हवा हँस पडी
किन्तु, यूँ ही खडी रही
टीला कहता गया—
'भयानक बात है,
छाती पर दस्यु आ बैठा है
क्या करूँ, क्या करूँ !!
हिल नही सकता हूँ, उसको हटा नही सकता हूँ।'

हवा हँस पडी किन्तु यूँ ही खडी रही
और फिर बहुत सोच विचारकर
यह कहा—
'बन्धुवर
पहल यह जान लो कि तुमम जा मोल है
तुममे जो द्वन्द्व है
वह द्वन्द्व बाहरी स्थिति ही का बिम्ब !!
यानी कि जीवन-रक्षार्थ ही
तुम्हे ओढना पडा
जिसके न मुलझन से
उनमे ही रहने मे
कि जिनके निदान के अभाव मे यह हुआ

चूँकि जब दस्यु ने आसनार्थ
चुन लिया तुमको ही।
अपना वह मूल द्वन्द्व पहचानो।
द्वन्द्वशील तथ्यों को तत्वों को जान लो
तीव्र करो द्वन्द्व को
अग्र-गति सत्यों की विजयों का करो साफ रास्ता।
जीवन-स्थिति बदल दो
ध्यान रखो
इस महान कार्य में
तुम न अकेले हो।
अनगिनत लोगों ने द्वन्द्व ये भोगे हैं
उनने भी सर किये
मैदान अनदेखे नये-नये
पहले भी, आज भी। कल भी करेंगे वे।
इसीलिए, अतीत से भविष्य तक वहनशील
खोजो परम्परा
डूबो उस क्षिप्रा में
खोजो परम्परा
वह जो कि अपना ही अनदेखा छोर है
अकेलापन विभ्रम है
असगत, वस्तुत, पूर्णोन्मुख कार्य का अभाव है
खोजो परम्परा
और उस क्षिप्रा में लीन मग्न होने की यात्रा भ
तुम्हें यह स्वयं सूझ जायेगा कि
कौन दस्यु छाती पर बैठा है
क्यों और किस तरह
उसका इरादा क्या, रूप क्या,
लक्ष्य उद्देश्य क्या!!

हवा चुप रही
टीला भी स्तब्ध था
दर्दीली छा गयी अजीब एक खामोशी
टीला कहने को था कि बोल पडी
हवा ही यों
'तुम्हारे जो सीने पर बैठा है
डाकू वह कौन-सा विषम समाज का
वह कौन?
पहचानो
तुम्हारा ही रूप वह
तुम्हारा ही चेहरा

विश्वात्मक चेहरा है
पापों की युग-युगीन पुरानी परम्परा
दस्यु बन बैठी है
तुम्हारी छाती पर
इसीलिए कि झोल खाये हुए ही
मुनीम बनते हैं शैतानी ताकत के,
समझ गये !'

हवा आगे कहने लगी—
'निर्णयात्मक वह पल आ रहा
सन्निकट
युद्ध-संघर्ष का।
प्रतिपल कार्य का।
उसमे तुम क्रियाशील होकर के भाग लो
अपने को भाग दो
गुणों का गुणा हो जायेगा।
भीतर का झोल भभक उट्ठेगा !!'
समन्वय सामंजस्य
रूपान्तर-क्रिया है यदि
नाश पर आश्रित है।

टीला सुनता रहा ! क्या करे !!
क्या करे !!

मैं भी यह सोच रहा
कि क्या करूँ
क्या करूँ
कि इतने में पाता हूँ
वह टीला मैं स्वयं
मैं ही हूँ—खड़ा हूँ मैं शिलामूर्ति
इस पथरीले चेहरे मे शिलारूप अनगिनत चेहरे हैं
झाँकते
मूर्ख वे कि दावा जो करते हैं
भुगता न झोल कभी
बुद्धिमान वे मंच हैं
भुगतते व पार चले जाते है
मैं भी स्वयमात्म रूपान्तर क्रियाओं मे
लीन हूँ।
पार चला जाऊँगा, निश्चित है !!

[सम्भावित रचनाकाल 1960। राजनांदगांव। अप्रकाशित]

शून्य

भीतर जो शून्य है
उसका एक जबड़ा है,
जबड़े मे मांस काट खाने के दाँत हैं,
उनको खा जायेंगे,
तुमको खा जायेंगे।
भीतर का आदतन क्रोधी अभाव वह
हमारा स्वभाव है,
जबड़े की भीतरी अँधेरी खाई मे
खून का तलाब है।
ऐसा वह शून्य है
एकदम काला है, बर्बर है, नग्न है
विहीन है, न्यून है,
अपने मे मग्न है।
उसको मैं उत्तेजित
शब्दो और कार्यों से
बिखेरता रहता हूँ
बाँटता फिरता हूँ।
मेरा जो रास्ता काटने आते है,
मुझसे मिले घावो मे
वही शून्य पाते है।
उसे बढ़ाते हैं, फैलाते हैं,
और-और लोगो मे बाँटते बिखेरते,
शून्यो की सन्तानें उभारते।
बहुत टिकाऊ है,
शून्य उपजाऊ है।
जगह-जगह करवत, कटार और दराँत,
उगाता-बढ़ाता है
मांस काट खाने के दाँत।
इसीलिए जहाँ देखो वहाँ
खूब मच रही है, खूब ठन रही है,
मौत अब नये-नये बच्चे जन रही है।
जगह-जगह दाँतदार भूल,
हथियारबन्द गलती है,
जिन्हे देख, दुनिया हाथ मलती हुई चलती है।

[सम्भावित रचनाकाल 1960-61। राजनाँदगाँव। **चाँद का मुंह टेढ़ा है** मे सकलित]

मैं तुम लोगों से दूर हूँ

मैं तुम लोगो से इतना दूर हूँ
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है
कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है।

मेरी असग स्थिति मे चलता-फिरता साथ है,
अकेले मे साहचर्य का हाथ है,
उनका जो तुम्हारे द्वारा गर्हित हैं
किन्तु वे मेरी *व्याकुल आत्मा मे बिम्बित* हैं, पुरस्कृत हैं
इसीलिए, तुम्हारा मुझ पर सतत आघात है !!
सबके सामने और अकेले मे।
(मेरे रक्तभरे महाकाव्यों के पन्ने उडते हैं
तुम्हारे-हमारे इस सारे झमेले मे)

असफलता का धूल-कचरा ओढे हूँ
इसलिए कि वह चक्करदार ज़ीनों पर मिलती है
छल-छद्म धन के
किन्तु मैं सीधी-सादी पटरी-पटरी दौडा हूँ
जीवन की।
फिर भी, मैं अपनी सार्थकता से खिन्न हूँ
निज से अप्रसन्न हूँ
इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए
वह मेहतर मैं हो नही पाता
पर, रोज कोई भीतर चिल्लाता है
कि कोई काम बुरा नही
बशर्ते कि आदमी खरा हो
फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नही पाता।

रेफ्रीजरेटरो, विटैमिनो, रेडियोग्रैमो के बाहर की
गतियो की दुनिया मे
मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यो मे
पेटो की आँतो मे न्यूनो की पीडा है
छाती के कोषो मे रहितो की ब्रीडा है

शून्यों से घिरी हुई पीडा ही सत्य है
शेष सब अवास्तव अयथार्थ मिथ्या है भ्रम है

सत्य केवल एक जो कि
दु:खों का क्रम है।

मैं कनफटा हूँ हेठा हूँ
शेव्रलेट-डॉज के नीचे मैं लेटा हूँ
तेलिया लिबास में पुरज़े सुधारता हूँ
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ।

[सम्भावित रचनाकाल 1960-61। राजनाँदगाँव। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में सकलित]

मेरे लोग

अ
ज़िन्दगी की कोख में जनमा
नया इस्पात
दिल के खून में रँगकर।

आ
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव-देह धारणकर
असंख्यक स्त्री-पुरुष-बालक
बने, जग में, भटकते हैं,
कहीं जनमे
नये इस्पात को पाने।
झुलसते जा रहे हैं आग में
या मुँद रहे हैं धूल-धक्कड़ में।
किसी की खोज है उनको,
किसी नेतृत्व की।

इ
पीली धुमैली पसलियों के पंजरोंवाली
उदासी से पुती गायें
भयानक तड़फड़ाती ठठरियों की
आत्मवश स्थितप्रज्ञ कपिलाएँ
उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के समुदाय

या गो-यूथ
लेकर वे
घुसे ही जा रहे हैं
ब्रास्सिए के वस्टवाली दुकानों के पास
काफे की निकटवर्ती सडक पर,
चमचमाती खूबसूरत शान के नायलान भम्भड मे।

ई

दुतरफा पेडवाली रम्य किन्ज़वे मे
कि एलगिन रोड नुक्कड पर
खरोचें-मारते-से घिस-रहे-से
सौ खुरो की खरखराती शब्द-गति
सुनकर
खडे ही रह गये हैं लोग।
उनमे सैंकडो विस्मित,
कई निस्तब्ध।
कुछ भयभीत, जाने क्यो
समूचे दृश्य से मुँह मोड यह कहते—
'हटाओ ध्यान, हमसे वास्ता क्या है?
कि वे दु स्वप्न-आकृतियाँ
असद् है, घोर मिथ्या हैं!!'
दलिद्दर के शनिश्चर का
भयानक प्रॉपगैण्डा है!!
खुरो के खरखराते खुरचते पद-शब्द-स्वर-समुदाय
सुनकर,
दौडकर उन ओटलो पर,
द्वार-देहली, गैलरी पर,
खिडकियो मे या छतो पर
जो इक्ट्ठा है
गिरस्तिन मौन माँ-बहनें
सडक पर देखती हैं
भाव-मन्थर, काल-पीडित ठठरियो की श्याम गो-यात्रा
उदासी से रँगे गम्भीर मुरझाये हुए प्यारे
गऊ-चेहरे।
निरखकर
पिघल उठता मन!!
रुलाई गुप्त कमरे मे हृदय के उमडती-सी है।
नही आये समझ मे सत्य जो शिक्षित
सुसंस्कृत बुद्धिमानो दृष्टिमानों के
उन्हे वे हैं कि मन-ही-मन

सहज पहचान लेती !!
मग्न होकर ध्यान करती है कि
अपने बालकों को छातियों से और चिपकाती।
भोले भाव की करुणा बहुत ही क्रान्तिकारी सिद्ध होती है।

उ

उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के समुदाय
लेकर साथ
मेरे लोग
असंख्य स्त्री-पुरुष-बालक भटकते है
किसी की खोज है उनको।
अटकना चाहते है द्वार-देहली पर किसी के किन्तु
मीलो दूरियो के डैश खिचते हैं
अँधेरी खाइयों के मुँह बगासी जोर से लेकर
यूँ ही बस देख
अनपहचानती आँखो—
खुले रहते।

ऊ

गन्दी बस्तियो के पास नाले पार
बरगद है
उसी के श्याम तल मे वे
रँभाती है कई गायें।
कि पत्थर-ईंट के चूल्हे सुलगते है।
फुदक्ते हैं वही दो-चार
बिखरे बालवाले बालको के श्याम गन्दे तन
व लोहे की बनी स्त्री-पुरुष आकृतियाँ
दलिद्दर के भयानक दवता के भव्य चेहरे वे
चमकते धूप में !!
मुझको है भयानक ग्लानि
निज के श्वेत वस्त्रो पर
स्वय की शील-शिक्षा सत्य-दीक्षा के
निरोधी अस्त्र-शस्त्रो पर
कि नगरो के सुसस्कृत सौम्य चेहरो से
उचटता मन
उतारूँ आवरण—
यह साफ गहरा दूधिया कुरता
व चूने की सफेदी मे चिलकते-से सभी कपडे निकालूँगा।
किसी ने दूर से मुझको पुकारा है।

ए
गन्दी बस्तियों के पास, नाले पार
गुमटी एक,
जिसके तंग कमरे मे
ज़रा-सा पुस्तकालय वाचनालय है।
पहुँचता हूँ। अचानक ग्रन्थ
कोई खोलता ही हूँ कि
पृष्ठों के हृदय में से
उभरते काँपते हैं वायलिन के स्वर
सहज गुंजारती झनकार
गहरे स्नेह-सी।
मीठी सघन विस्तृत भरमती गूँज
जिसकी सान्द्र ध्वनि मे से
सुकोमल रश्मियों के पुंज !!
तेजोद्भास
मन खुलता, स्वयं की ग्रन्थियाँ खुलतीं।

ए
कि इतने मे फटी-सी अन्य पुस्तक
खोलता-सा हूँ कि
पृष्ठों के जिगर में से
भयानक डाँट
कोई भव्य विश्वात्मक तडित् आघात
सहसा बोध होता है
उभरता क्रोध निःस्वात्मक
सहज तनकर गरजता
जिन्दगी की कोख मे जनमा
नया इस्पात
दिल के खून मे रँगकर !!
तुम्हारे स्वर कहाँ है,
ओ !!

[सम्भावित रचनाकाल 1960-61। राजनांदगांव। *चांद का मुंह टेढ़ा है* में संकलित]

उस ? तेज़ी से वापिस क्यो नही फेंकती
अपने पूरे लहरीले रग
कि जिससे दिल
ज़रा-सा सुलगे और भभक जाय,
उस बाहर के भीतर की तसवीर
उभर आय
कि जिसकी जलती हुई भाफ
अपने-आप
हमे दे जाय
रगो मे सुलगी हुई एक सुनहली शिनाख्त,
और हम
लिये-लिये घिरा-घिरा गहरा-सा वक्त
चल पडें
यो कि एक रास्ते से लम्बे-ही-लम्बे
बिछते और तनते और निकलते चले जायें,
एक जगल से घने-ही-घने बियाबान
बनते और दृश्य बदलते चले जायें
आसमान से खुले-ही खुले
चारो ओर फैलें
एक तेज़ निगाह से सीधे-ही-सीधे
खूब पहचानें और सबको समेट लें पी लें
ब्रह्माण्ड की काल-सूचक घडियो के
मिनटो और घण्टो को
धडकन मे ले लें और जी लें

लेकिन, यह नही होता है।
हवा सिर पर से लहराती हुई
गुज़र जाती है
धमनियो मे घुस नही पाती।
पहचाने ज़रा-सी छूती है
उड जाती हैं
दिल मे बस नही पाती।
यही कारण है कि रेत के ढेर-सी दिखती है
तो किसी को यह दुनिया
पके हुए बेर-सी दिखती है
कि जिसको वह तोडे और खा जाय,
तो किसी को वह लहँगे के घेर-सी
कि जिसमे वह पैठे और समा जाय,
तो किसी को वह रीछ-सी, भालू-सी,
किसी को कद्दू-सी, आलू-सी,

किसी को बौनी-ही-बौनी,
चपटी-ही-चपटी,
तो किसी को कुछ,
तो किसी को कुछ।

और, तब इस अदने
और नाचीज को यह लगने लगता है
कि चारों तरफ फैली हुई शानदार मुग़लिया सल्तनत में
काली शेरवानी की मखमली खोल
जो पहने हुए हैं
खूबसूरती से,
(अपने-आपमें जो चमकदार गहने हुए हैं।)
उनके भीतर
हां, भीतर
एक मुस्तंद
दीवार खड़ी हुई है
(छोटी से बड़ी हुई है)
नंगी, सील-खायी और खुरदुरी
उस पर अजीब कारीगरी—
नक्शी, मीनाकारी और तसवीरें,
और, न जाने क्या-क्या,
वाह वा!!
लेकिन, पलस्तर उखड़ गये हैं,
और गड्ढे पड़ गये हैं,
और, उन गड्ढों में फलसफे का रंग
झख मारता हुआ ढंग
उन्हीं में से एक में
मेहराबदार ताक,
ताक में अँधेरा
अँधेरे में देव-देवताओं की मूर्तियाँ—
पुरानी मूर्तियाँ जो जरूरत पड़ने पर
फिर काम आ सकें,
दाम ला सकें।

इस सल्तनत में
हर आदमी उचककर चढ़ जाना चाहता है,
धक्का देते हुए बढ़ जाना चाहता है,
हरएक को अपनी-अपनी
पड़ी हुई है।
चढ़ने की सीढ़ियाँ

अँधियारे दर्रों में फैली हैं ठठरियाँ
उतरते हुए चढते हुए कुलियों की बदनसीब
जिनके कि दुखते हुए कन्धों पर हो सवार
यात्रा करते हैं बडे-बडे होशियार
पुलकभरे ठाठ से जाते हैं बदरीनाथ
आत्मिक आलोचक भावों के साथ-साथ
मरते हैं वे गरीब ! !
ज्यों-ज्यों उन कुलियों की खुशियों का खात्मा
होता है त्यों-त्यों यह पुण्यमयी होती है आत्मा।

[सम्भावित रचनाकाल 1960-62। राजनांदगांव। अप्रकाशित]

चकमक की चिनगारियाँ

1
अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर
हमारा गुप्त मन
निज में सिकुड़ता जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमटकर सिफर होना चाहता हो जल्द ! !
मानो कीमती मज़मून
गहरी, ग़ैर-कानूनी किताबों, ज़ब्त पर्चों का।
कि पाबन्दी लगे-से भेद सा बेचैन
दिल का खून
जो भीतर
हमेशा टप्प-टपकर टपकता रहता
पिराते से खयालों पर।
यही कारण कि सिमटा जा रहा-सा हूँ।
स्वयं की छाँह की भी छाँह-सा बारीक
होकर छिप रहा-सा हूँ।
समझदारी व समझौते
विकट गड़ते।
हमारे आपके रास्ते अलग होते।
व पल-भर,
मात्र आत्मालोचनात्मक स्वर प्रखर होता।

2

अधूरी और सतही ज़िन्दगी के गर्म रास्तों पर,
अचानक सनसनी भौंचक
कि पैरों के तलों को काट-खाती कौन-सी यह आग ?
जिससे नच रहा-सा हूँ,
खड़ा भी हो नहीं सकता, न चल सकता।
भयानक, हाय, अन्धा दौर
ज़िन्दा छातियों पर और चेहरों पर
कदम रखकर
चले हैं पैर !
अनगिन अग्निमय तन-मन व आत्माएँ
व उनकी प्रश्न-मुद्राएँ,
हृदय की द्युति-प्रभाएँ,
जन-समस्याएँ
कुचलता चल निकलता हूँ।
इसी से, पैर-तलुओं में
नुकीला एक कीला तेज़
गहरा गड़ गया औ' धँस गया इतना
कि ऊपर प्राण-भीतर तक घुसा आया,
लगी है झनझनाती आग,
लाखों वर्र-काँटों ने अचानक काट खाया है।
व्रणाहत पैर को लेकर
भयानक नाचता हूँ शून्य
मन के टीन छत पर गर्म।
हर पल चीखता हूँ, शोर करता हूँ
कि वैसी चीखती कविता बनाने में लजाता हूँ।

3

इतने में, अँधेरी दूरियों में से
उभरता एक
कोई श्याम, धुँधला हाथ,
लम्बा और मोटा हाथ
सहसा कनपटी पर ज़ोर से आघात।
आँखों-सामने विस्फोट,
तारा एक वह टूटा,
दमकती लाल-नीली बैंगनी
पीली व नारंगी
अजब चिनगारियाँ बिखरा
सितारा दूर वह फूटा।
कि कन्धे से अचानक सिर कटा और

उड़ गया, गायब हुआ (जो शून्य यात्रा मे स्वगत कहता—
अरे ! कब तक रहोगे आप अपनी ओट ! !)
उड़ता ही गया वह, दीर्घ वृत्ताकार ऊँचे मार्ग से
वह जा गिरा,
उस दूर जगल के
किसी गुमनाम गड्ढे मे,
(स्वगत स्वर ये—
कहाँ मिल पायेंगे वे लोग
कि जिनमे जनम लेकर भी,
उन्ही से दूर दुनिया मे निकल आये)
कि उस गुमनाम खड्डे मे
भयानक चीखती-सी 'धड्ड'—
सिर फूटा
व उसकी थाह मे से तब
अचानक ज़ोर से उछले
दमकते रत्न
बिखरे श्याम गह्वर मे।
(कि इतनी मार खायी, तब कही वे
स्पष्ट उद्घाटित हुए उत्तर)

4

परम आश्चर्य ! !
उस गुमनाम खड्डे के अँधेरे म
खुले हैं लाल-पीले-चमकते नक्शे,
खुली जुग्राफिया-हिस्टरी,
खुले हैं फलसफे के वर्क बहुतेरे
कि जिनकी पक्तियो मे से
उमड उठते
समूची क्षुब्ध पृथ्वी के
अनको क्रुद्ध गहरे सागरो
के छटपटाते साँवले छीटे
बरसते जा रहे हैं और
गीली हो रही हैं देश-देशो की
बडी बेचैन छायाएँ
(यहाँ दिल के घने बेडौल गडढो मे)

5

अचानक आसमानी फासलो मे से
गुजरते चाँद ने, वह तम विवर देखा,
लिफाफा एक नीला दूर से फेंका,

व पल ठिठका।
कि इतने में उसी बेडौल गड्ढे के अंधेरे तग कोने से
निकल बाहर
किसी तकलीफवाले एक चेहरे ने बहुत आतुर,
पढ़े अक्षर, पढ़े फिर-फिर ! !
व अर्थों के घने, कोमल
धुंधलके तैर आये और
मन की खिडकियो में से घुसे भीतर
व दिल में छा गये वे आसमानी रग।
लिखा था—
'अरे ! जन-सग-ऊष्मा के
विना, व्यक्तित्व के स्तर जुड नहीं सकते।
प्रयासी प्रेरणा के स्रोत,
सक्रिय वेदना की ज्योति,
सब साहाय्य उनसे लो।
तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी।
कि तद्गत लक्ष्य में से ही
हृदय के नेत्र जागेंगे,
व जीवन-लक्ष्य उनके प्राप्त
करने की क्रिया में से
उभर ऊपर
        विकसते जायँगे निज के
        तुम्हारे गुण
कि अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले में नहीं मिलते।'

6

सुना यह औ' गुना ही था कि
दीखा तब—
हृदय की श्याम लहरो के
अतल में कुछ
सुनहली केन्द्र थर-थर-सी,
व उन अति सूक्ष्म केन्द्रो में
निकट की दूर की
आकाश-तारा-रश्मियाँ चमकी
अनल-वर्षी।
महत् सम्भावनाओ की उजलती एक रेखा है,
जिसे मैंने
यहाँ आ खूब देखा है।
अरे ! मेरे तिमिर-गह्वर कगारो पर

अचानक खिल उठी प्राचीन-
अभिनव गन्धमय तुलसी
कि जिसके सघन-छाया-अन्तरालों से
किसी का श्याम भोला दीप्त मुखमण्डल बहुत प्यारा,
बहुत प्यारा
मुझे दिखता
कि पाता हूँ—मुझे ही देखती रहती
मनो-आकार-चित्रा वह सुनेत्रा है।

तड़पते तम-विवर के उन कगारों पर
चमेली कुन्द की कलियाँ, सुपरिचित स्मित लिये
तारों-भर व्यक्तित्व,
मन के श्याम द्वारों पर
अभी भी हैं प्रतीक्षा में।।
पुकारूँ ? क्या करूँ।। लेकिन
हृदय काला हुआ जीवन-समीक्षा में।
महकती चाँदनी की यह
प्रकाशित नीलिमा पीली
कि जिसके बीच मेरा गर्त-गह्वर-घर
भयानक स्याह धब्बे-सा।
अत:, मैं कुन्द-कलिया से विचकता हूँ,
हिचकता हूँ।
कि इतने में घनी आवाज आती है—
'तुम्हारे तम विवर के तट
पुन: अवतार धारण कर,
मनस्वी आत्माएँ और प्रतिभाएँ
पधारीं विविध देशों से
तुम्हारा निज-प्रसारण कर।'

7
नभ-स्पर्शी हवाओं में किसी पुनरागता
ध्वनि-सा तरंगित हो,
सिविल लाइन्स के सूने,
पुराने एक बरगद पास स्पन्दित हो
उसी के पत्र-मर्मर में बिखरकर मैं
तुरत अपने अकेले स्याह
कुट्ठर में पहुँचता हूँ।
बड़ा अचरज!
कि जब मैं ग़ैर-हाज़िर, तो
यहाँ पर एक हाज़िर है।—अँधेरे में,

अकेली एक छाया-मूर्ति
कोई लेख
टाइप कर रही तड-तड-तडातड-तड
व उसमे से उछलते हैं
घने नीले-अरुण चिनगारियो के दल !!
लुमुम्बा है,
वहाँ अल्जीरिया-लाओस-क्यूबा है
हृदय के रक्त-सर म, सूर्य-मणि-सा ज्ञान डूबा है
दिमागी रग फडकती है, फडकती है,
व उसमे से भभकता
तडफता-सा दु ख बहता है !!

8

इतने म
समुन्दर म कही डूबी हुई जो पुण्य-गगा वह
अचानक कूच करती सागरी तल स
उभर ऊपर
भयानक स्याह बादल-पाँत बनकर
फन उठाती है दिशाओ मे।
(व मेर कुन्द कमरे क अँधेरे म
निरन्तर गूँजती तड-तड-तडातड तेज टाइप हो रहे हैं शब्द)
बाहर धूल म भी शब्द गडते है
कि मुद्रित कर रहा है आसमानी हाथ
(तिरछी मार छीटो की !!)
घटाओ की गरज मे,
बिजलियो की चमचमाहट मे
अँधेरी आत्म-सवादी हवाओ से
चपल रिमझिम
दमकते प्रश्न करती है—
'मेरे मित्र,
कुहरिल गत युगो के अपरिभाषित
सिन्धु मे डूबी
परस्पर, जो कि मानव पुण्य धारा है,
उसी के क्षुब्ध काले बादलो को साथ लायी हूँ,
बशर्ते तय करो,
किस ओर हो तुम अब
सुनहले ऊर्ध्व-आसन के
निपीडक पक्ष म, अथवा
कही उससे लुटी-टूटी
अँधेरी निम्न-कक्षा म तुम्हारा मन,

कहाँ हो तुम ?
हृदय मे प्राकृतिक जो मूल
मानव-न्याय-सवेदन
बहुत बेचैन व्याकुल हो
तुम्हे क्या ले गया उस तट,
जहाँ उसने तुम्हारे मन व आत्मा को
समझकर श्वेत चकमक के घने टुकडे
परस्पर यो तडातड तेज दे रगडा
कि उससे आग पैदा की
व हर अगार मे से एक
जीवन-स्वप्न चमका और
तडपा ज्ञान !!

9

अचानक आसमानी फासलो मे से
चतुर सवाददाता चाँद ऐसे मुसकराता है
कि मेरे स्याह चेहरे पर
निलाई चमचमाती है !!
समुन्दर है, समुन्दर है !!
गरजती इन उफनती दूरियो मे मैं
किसी वीरान टॉवर की
अँधेरी भीतरी गोलाइयो के बीच
चक्करदार जीना एक चढता हूँ, उतरता हूँ।
धपाधप पैर की आवाज
है नाराज खुद से ही।
फिरगी, पुर्तगाली या कि ओलन्देज
या अँगरेज
दरियाई लुटेरो के लिए जो एक
तूफानी समुन्दर के गरजते मध्य मे उठकर
पुराने रोशनीघर की
अँधेरी एक है मीनार
उसमे आज मेरी रूह फिरती है

अनेको मजिलो के तग घेरो मे
घने धब्बे
कि सदियो का पुराना मैल—
लेटे धूल खाते प्रेत
जिनकी हड्डियो के हाथ मे पीले
दबे *कागज*
भयानक चिट्ठियों का जाल जासूसी।

कही पर रॉयफल का कारतूसी ढेर
फैले युद्ध के नक्शे;
समुद्री पक्षियो की उग्र जगली आँख,
भीषण गन्ध उनके घोसलो मे से
कि जिनके पख-दल की वे बनी मोटी
घनी भीते लटकती हैं।

कि मैं सब पत्र-पुस्तक पढ
पुरानी रक्त-इतिहासी भयानकता
जिये जाता।
कि इतने मे, कही से चोर आवाजें
विलक्षण सीटियाँ, खडके
अचानक मौत दरवाजे
अनेको रेडियो के गुप्त सन्देशो-भरे षड्यन्त्र
जासूसी तहलके औ' मुलाकातें।
व उनको बीच ही मे
तोडन के, मोडने के तन्त्र,
तहखाने कि जिनमे ढेर ऐटम-बम!!

कहाँ हो तुम, कहाँ हैं हम?
प्रशोषण-सभ्यता की दुष्टता के भव्य देशो मे
गरीबिन जो कि जनता है,
उसी म से कई मल्लाह आते हैं यहाँ पर भी
व, चोरी से, उन्ही से ही
मुझे सब सूचनाएँ, ज्ञान मिलता है,
कि वे तो द गये हैं, अद्यतन सब शास्त्र
मेरा भी सुविकसित हो गया है मन
व मेरे हाथ म हैं क्षुब्ध सदियो के
विविध-भाषी विविध-देशी
अनेको ग्रन्थ पुस्तक-पत्र
सब अखबार जिनमे मगन होकर मैं
जगत्-सवेदनो से आगमिष्यत् के
सही नक्शे बनाता हूँ।
मुझे मालूम,
अनगिन सागरो के क्षुब्ध कूलो पर
पहाडो जगलो मे मुक्तिकामी लोक-सेनाएँ
भयानक वार करती शत्रु मूलो पर
व मेरे स्याह बालो मे उलझता और
चेहरे पर लहरता है
उन्ही का अग्नि-क्षोभी धूम!!

मुझे मालूम,
कैसे विश्व-घटनात्मक
सघन वातावरण में कब
विचारों और भावों का कहाँ क्या काम,
कब वह वचना का एक साधक अस्त्र,
कब वह ज्ञान का प्रतिरूप ।।
यद्यपि मैं यहाँ पर हूँ
सभी देशों, हवाओं, सागरों पर अनदिखा
उड़ता हुआ स्वर हूँ···
मेरे सामने हैं प्रश्न,
क्या होगा कहाँ किस भाँति,
मेरे देश भारत में,
पुरानी हाय में से
किस तरह से आग भभकेगी,
उड़ेंगी किस तरह भक् से
हमारे वक्ष पर लेटी हुई
विकराल चट्टानें
व इस पूरी क्रिया म से
उभरकर भव्य होंगे, कौन मानव-गुण ?

अँधेरे-ध्वस्त टॉवर के
तले में भव्य चट्टानें
गरजती क्षुब्ध लहरों को पकड़कर चूम
ऐसी डूबती उनमें
कि सागर की जबर्दस्ती
उन्हें बेहद मज़ा देती।
भयानक भव्य आन्दोलन समुद्रों का
हृदय में गूँजता रहता।
गरजती स्याह लहरों मे
तड़कते-टूटते नीले चमकते काँच,
अनगिन चन्द्रमाओं के छितरते बिम्ब।
फेनायित निरन्तर एकता का बोध
जिसकी घोर आवाजें
समुन्दर के तले के अन्धकारों से उमड़ती हैं।

पुराने रोशनीघर के अँधेरे शून्य टॉवर से
अचानक एक खिड़की खोल
नीली तेज़ किरनें कुछ निकलती है।
वहाँ हूँ मैं
खड़ा हूँ,

मुसकराता फेंकता अपने
चमकते चिह्न,
मीलों दूर तक, उन स्याह लहरों पर
कि सूनी दूरियों के बीच रहकर भी
जगत् से आत्म-सयोगी
उपस्थित हूँ।

10

प्रतीकों और बिम्बों के
असम्वृत रूप में भी रह
हमारी ज़िन्दगी है यह।
जहाँ पर धूल के भूरे गरम फैलाव
पर, पसरी लहरती चादरें
बेथाह सपनों की।
जहाँ पर पत्थरों के सिर,
गरीबी के उपेक्षित श्याम चेहरों को
दिलाते याद।
टूटी गाड़ियों के साँवले चक्के
दिखें तो मूर्त्त होते आज के धक्के
भयानक बदनसीबी के।
जहाँ सूखे बबूलों की कँटीली पाँत
भरती है हृदय में धुन्ध-डूबा दुःख,
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूँ शुष्क,
आती याद मेरे देश भारत की।
अरे! मैं नित्य रहता हूँ अँधेरे घर
जहाँ पर लाल ढिबरी-ज्योति के सिर पर
कसकते स्वप्न मँडराते।

11

कि मानो या न मानो तुम···
अधूरी और सतही ज़िन्दगी में भी
जगत्-पहचानते, मन-जानते
जी-माँगते तूफ़ान आते हैं।
व उनके धूल-धुधले, वर्ण-कर्कश
गद्य-छन्दों में
तड़पते भान, दुनिया छान आते हैं।
भयानक इम्तिहानों के तजुर्बों से
बुज़ुर्गी आ गयी जिनको
कि ऐसे दर्दवाले, ज्ञानवाले

जी-पिलाते, मन-मिलाते दिल
जगत् के भव्य भावोद्दण्ड तूफानी
सुरों से सुर मिला, अगले
किन्हीं दुर्घट, विकट घटना-क्रमों का एक
पूरा चित्र-स्वर संगीत
प्रस्तुत कर
व उनके ऊष्म अर्थों के धुंधलकों में
मगन होकर
नभो-आलाप लेते हैं
व उनके मित्र, सह-अनुभव-व्यक्ति
स्वरकार या वादक—
तजुर्बेकार साज़िन्दे
ख़यालों के उमड़ते दौर में सहसा
निजी रफ़्तार इतनी तेज़ करते हैं—
थपाथप पीटते हैं ज़ोर से तबला ढपाढप, और
झंकृत नाद-गतियों को गगन में थाम
तुम-तुम-तोम तम्बूरे,
विलक्षण भोग अपनी वेदना के क्षण,
मिलाते सुर हवाओं से,
कि बिल्डिंग गूंजती है, कांप जाती है।
दिवालें ले रही आलाप,
पत्थर गा रहे हैं तेज़,
तूफ़ानी हवाएँ धूम करती गूंजती रहती।
उखड़ते चौखटों में ही
खड़ाखड़ खिड़कियाँ नचतीं,
भड़ाभड़ सब बजा करते खड़े बेडौल दरवाज़े।
व बाहर के पहाड़ी पेड़
जड़ में जम,
भयानक नाचने लगते।
विलक्षण गद्य-संगीतावली की सृष्टि होती है।
अचानक हो गयी बरख़ास्त मानो आज
अत्याचार की सरकार
जाने देश में किस ध्वस्त,
शहरी रास्तों पर भीड़ से मुठभेड़।
जमकर पत्थरों की चीख़ती बारिश
व रायफल-गोलियों के तेज़ नारंगी
धड़ाकों में उभड़ती आग की बौछार।

12·

मुझ पर क्षुब्ध बारूदी धुएँ की झार आती है

व उन पर प्यार आता है
कि जिनका तप्त मुख
 सँवला रहा है
 धूम लहरों में
कि जो मानव भविष्यत्-युद्ध में रत है,
जगत् की स्याह सडकों पर।
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता मे
सभी प्रश्नोत्तरी की तुग प्रतिमाएँ
गिराकर तोड देता हूँ हथौडे से
कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उत्तर और भी छलमय,
 समस्या एक—
 मेरे सभ्य नगरों और ग्रामो मे
 सभी मानव
 सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त
 कब होंगे?
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
उमगकर
जन्म लेना चाहता फिर से,
कि व्यक्तित्वान्तरित होकर,
नये सिरे से समझना और जीना
चाहता हूँ, सच!!

13

नही होती, कही भी खतम कविता नही होती
कि वह आवेग-त्वरित काल यात्री है।
व मैं उसका नही कर्ता,
पिता-धाता
कि वह कभी दुहिता नही होती,
परम स्वाधीन है वह विश्व-शास्त्री है।
गहन-गम्भीर छाया आगमिष्यत् की
लिए, वह जन-चरित्री है।
नये अनुभव व सवेदन
नये अध्याय-प्रकरण जुड
 तुम्हारे कारणों से जगमगाती है
 व मेरे कारणों से सकुच जाती है
कि मैं अपनी अधूरी बीडियाँ सुलगा,
खयाली सीढियाँ चढकर
पहुँचता हूँ

निखरते चाँद के तल पर,
अचानक विकल होकर तब मुझी से लिपट जाती है।

[सम्भावित रचनाकाल 1957 से 1961। राजनांदगांव। **कृति**, मई-अगस्त 1961 मे, फिर **रूपाम्बरा**, अगस्त 1965, मे प्रकाशित। **चाँद का मुंह टेढ़ा है** मे सकलित]

उन्हें युद्ध की ही करने दो बात

उन्हे युद्ध की ही करने दो बात
चाँद की बात हम करें,
सूत्र निकाले गणित जमायें
अज्ञातो को ज्ञात हम करे!!

फिर, उन ज्ञातो से अगले सब अज्ञातो तक
ऊँची नि श्रायणी लगाये
भव्य सातवें मजिल के सपनो तक ले जाये
सोपानो को सपनो तक ले जायें
सपनो की ऊँची मजिल पर
जीवन-कार्यालय मे
करें सुरक्षित भविष्य!!
सम्भव है, सपनो का ऊँचा हॉल
थामनेवाले नीचे लोहे के शहतीर
तजुर्बों के
पूरे न जमे या कोई नुक्स रहे
तो ऐसी हालत मे हम नयी परीक्षा-पद्धतियो के द्वारा
फिर से जाँचें गणित,
कि ज्ञात और भी अधिक ज्ञात!!
या अज्ञातो पर पुन नया आघात
ज्ञात के द्वारा
पुन. नये सोपान!!
स्वप्न का नया हॉल
पुन सगठित जीवन-बीमा-दफ्तर!!
नया लिफ्ट बिजली का ऊपर से नीचे तक
सतत चलायें!!
उन्ही को, अपने सपनो मे, करने दो।
उनको अपने भव्य सास्कृतिक भवनो पे रो-रो मरने दो

मरने दो।
उन्हें युद्ध की ही करने दो बात।

यह ब्रह्म-चक्र
दृढ है *उसकी अनिवार्य प्रगति की अरा*
तुम्हारे हाथ, तुम्हारे हाथ !!
मित्रो, फटे हाल रहकर भी,
मिट्टीभरे बाल रखकर भी
दिये चलो
अरे, दिये चलो
सहचारी को विचार की जीवन-धुरा
तुम्हारा लम्बा साथ
लम्बा साथ !!
हृदय को रोमिल करता रहे !!
कि सबसे मिलता-चलता रहे।
कि आये दिन वह भी
जब जलते स्टोव के पास
मित्रो से हार्दिक वार्तालाप
होता रहे !
गरमीली
नयी कार्य क्षम
अनुभव-साधित मूर्त कल्पनाओ के गहरे रग
गलियों सडको पर जा छिडकें !!
साइकिल पर वह प्रसन्न-मुख युवको का जत्था
आगे बढके
इतनी लम्बी-चौडी दुनिया को भी पायें तग।
ठीक समय बतलायें उनकी रिस्टवाच !!
उलझे कामो के सुलझाने
दिल मे मीठी ताक़त की बेचैनी का अन्दाज़
लगे कुछ गाने।

रोयें वे जो शैतानो के घर-दफ़्तर मे अहलकार
बन काम कर रहे, नित अपनी कलम घिस रहे, हार-हार-
कर रोज़ रहे हैं जीत,
सिनेमा-द्वार-टिकट का पैसा
उन्ही शैतानों-जैसा
फ़िल्म देखकर व्याकुल होकर बना रहे हैं निज
आत्मा का पूरण
रोयें वे जो रखते अपने अदृश्य अपराधी ईश्वर से
ऐसा-वैसा सरोकार !!

आँख पोछकर
उन्हे युद्ध की ही करने दो बात !!
नायट्रोजन बम, रासायनिक बमो के तब आघात।

[सम्भावित रचनाकाल 1961। राजनाँदगाँव। अप्रकाशित]

मेरे सहचर मित्र

['मेरे मित्र, सहचर' शीर्षक एक अन्य कविता जो सम्भवत इस कविता के कुछ पह
या आस पास ही (1951-52 मे) लिखी गयी थी, 'रचनावली' के पहले खण्ड मे रखी ग
है।—स०]

मेरे सहचर मित्र
जिन्दगी के फूटे घुटनो से बहती
रक्तधार का जिक्र न कर,
क्यो चढा स्वय के कन्धो पर
यो खडा किया
नभ को छूने, मुझको तुमने।
अपने से दुगुना बडा किया
मुझको क्योकर ?
गम्भीर तुम्हारे वक्षस्थल
मे अनुभव-हिम-कन्या गगा-यमुना
के जल की
पावन शक्तिमान् लहरें पी लेने दो।
ओ मित्र, तुम्हारे वक्षस्थल के भीतर के
अन्तस्तल का पूरा विप्लव जी लेने दो।
उस विप्लव के निष्कर्षों के
धागो से अब
अपनी विदीर्ण जीवन-चादर सी लेने दो
इस विप्लव की चल तडिल्लता
की शय्या पर
लोटती हुई बेचैनी की मेरी आँखे
हैं देख रही ··
प्रश्नो की दानव-आँखो मे
ये दबे-घुटे कैदी उत्तर
पर ज्यो-ज्यो उत्तर के मुख पर

उद्विग्न दृष्टि की किरणें केन्द्रित करता हूँ
वे लाल-लाल आँखो से मेरा
पीला मुख निहार कहते—
"हमको यो गलत न दो उपमा,
तुम अपनी सडी-गली महिमाओ
की निर्माल्य-मालिकाएँ
हमको मत पहनाओ
तुम देखो तो उस ओर · ।"
और, मैं आँखे फाडे देख रहा ··

उस नीले-नीले आसमान की सरहद पर
परिचिता एक कोमल चिडिया,
जो नित्य तुम्हारे घर-आँगन
रोशनदानो मे उडती थी
घर की आत्मा,
वह दूर क्षितिज पर ठहरी-सी
काली बिंदिया
उस नीले-नीले आसमान की सरहद पर
वन-पक्षिराज बन
पख पसारे उडती हुई मुझे कहती,
वह पक्षिराज मुझसे कहता—
"ओ मित्र, तुम्हारे घर-आँगन को
शैलाचल-गिरिराज-शिखर
तो होने दो
वह आसमान तो झुकने दो
उसके मुख पर
इस समय वात के पूरे नही
अधूरे तुम,
कमजोर···प्रखर होना बाकी,
अब बूटो-दबा दीन ढेला
कैलास-शिखर होना बाकी,
कैलास-शिखर पर बैठेंगे ।"

मैं ज्यो-ज्यो उत्तर के मुख पर
उद्विग्न दृष्टि की किरनें केन्द्रित करता हूँ
उत्तर का मुँह···
पहले बादल
फिर बादल मे मानव-मुख-रेखा ऊर्जस्वल
भव्याकृति, स्वेदायित,
रक्तांकित मुख-मण्डल

धीरे-धीरे आ मेरे इतने निकट कि वह
आँखों पर झुकता आता है,
इतना समीप झुकता कि
त्वचा की रेखाएँ
रक्तिम घावों में कटी-पिटी,
मेरी आँखों में उभर रहीं।
वह घावभरे चेहरे का कोई सैनिक है।
रण-मैदानों की सन्ध्या में
जब लाल विभा बैंगनी हुई
सँवलायी लाली में डूबी सरिताओं की
थर्रायी लहरों के भीतर से उचक-उचक
झल्लाहटभरी
दिली तकलीफों की बिजली
या पीड़ाभरे विचारों की
जल-मुर्ग़-मछलियों की उछाल
बेचैन कोण जब बना रही,
पीड़ा के उस सरिता-तट पर
शत हताहतों के बिखरे दल
में देख मुझे मूर्च्छित आहत
अपना गहरा साथी-सैनिक पहचान मुझे
यह जान कि मेरी अभी
धुकधुकी बाकी है
मेरे टटोलन प्राण झुक रहा आँखों में
वह उत्तर सहचर सैनिक है।
उसके मुख का
उद्वेगभरा, आनन्दभरा
वह रंग
आँख पी लेती है
मुँद जाती है
उत्तर के मात्र स्पर्श ही से
निर्णायक ठण्डी गरम झनझनाहट गहरी
तन-मन में फैल कि प्राणों में
फन फैलाकर अड़ जाती है,
रुँध जाती है
औ' अकस्मात्, जबरन, धक्के से
शिलाद्वार
वह गुहा-द्वार आत्मा का धड़ से
खुलता है।
औ' अन्तर के उस गुहा-तिमिर में
एक सुदृढ़

पत्थर के टेबल पर रक्खे
रक्ताभ दीप की लौ
कुछ हिलती-डुलती है
अँधियाले मे प्रस्फुटिता
लाल-वलय-शाली
अगार-ज्योति के नीचे
पीडा की पुस्तक
के पन्ने स्वय पलट जाते।
कालान्तर-अनुभव ग्रन्थ
देश-देशान्तर के,
जो पढता हुआ जातवेदस् उद्दण्ड
क्रान्तिदर्शी कोई
बैठा है पत्थर-कुरसी पर आजानुबाहु,
वह सहसा उठ
आँधी-बिजली-पानी के क्रुद्ध देवता-से
घुस पडे भव्य उत्तर का अभिवादन प्रचण्ड
उससे विशाल आलिंगन कर
सहसा वह बहस छेड देता
मानव समाज रूपान्तर विधि
की धाराओ मे मग्न
मानवी प्राणो के
मर्मों की व्यथा-कथा···अगार तपस्या पर
मानव-स्वभाव के प्रश्नो पर,
मानव-सभ्यता-समस्या पर।

उस गुहा-भीत से कान लगा मैं सुनता हूँ
जो बहस कि उससे ज्ञान हुआ—
यह भान कि तुमने कन्धो पर
सहसा मुझको
क्यो खडा किया नभ को छूने
अपने से दुगुना बडा किया
जिससे पैरो की उँगली पर
तनकर ऊँची गरदन कर दोनो हाथो से
मैं स्याह चन्द्र का फ्यूज बल्ब
जल्दी निकाल
पावन प्रकाश का प्राण-बल्ब
वह लगा सकूँ
जो बल्ब तुम्ही ने श्रमपूर्वक तैयार किया
विक्षुब्ध जिन्दगी की अपनी
वैज्ञानिक प्रयोगशाला मे।

उस शाला का मैं एक
अल्पमति विद्यार्थी,
जड लेखक हूँ मैं अननुभवी,
आयु मे यदपि मैं प्रौढ
बुद्धि से बालक हूँ
मैं एकलव्य जिसने निरखा··
ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही
भीतर का महा मनोमन्थन-शाली मनोज्ञ
प्राणाकर्षक प्रकाश देखा।
पथ पर मँडराते विद्यालय के शब्दो से
विद्या के स्वर-कोलाहल मे से
छनकर कुछ आये
वाक्यो से प्राप्त किया··
सब ग्रन्थाध्ययन-वंचिता मति ने सडको पर
ज्ञान के हृदय-जाग्रति-स्वप्नो को
प्राप्त किया
बचपन से ही,
आश्चर्यचकित जिज्ञासु आत्मा
चढती किरनों की चढान
नभ शिखरों तक
छुटपन से ही।
उस मुक्तिकाम बेचैनी मे
मैं उन गरीब गलियो मे घूमा-झूमा हूँ
जिन गलियो मे तुम अक्षयवट
ले शत-सहस्र भावना-विचारो के पल्लव
औ जटा-जटिल
अनुभव-शाखाएँ लिये खडे।
जाने कितने जन-कष्टो की
पीढ़ियाँ दुखो की देखी हैं तुमने
उस अक्षयवट से मैं
चिन्ता मे अकुलात

अज्ञान ह्वेल की प्रदीर्घ भीषण ठठरी-सा
मैं कहीं पड़ा होता सूने में,
किसी चोर की गठरी-सा,
रह अन्धकार के भूसे-सा
निशि-वृषभ-गले !!

खूँखार, मिनिक, सशयवादी
शायद मैं कहीं न हो जाऊँ,
इसलिए, बुद्धि के हाथों पैरों की बेडी
जजीरें खनकाकर तोडी
तुमने निर्दय औज़ारों से,
टूटती बेडियों की नोकों
से जख्म हुआ औ' खून बहा
यह जान तुरत
अपने अनुभव के गन्धक का
चुपडा मरहम मेरे व्रण पर तुमने सहसा।
भीषण स्पर्शों की तेज़ दवा
झनझना गयी,
तन-मन की ढीली रगें झटक-झटकाकर
तानी, बना गयी।
जब दीप्त तुम्हारी आँखों मे
मेरी ताकत बढ गयी स्वय,
तुम कर्मवाद के घोर दार्शनिक-से लौटे
गम्भीर-चरण चुपचाप-कदम।
मैं फिर भी अपने घावों म
उलझा-सा हूँ
जिससे कि तुम्हारे कुशल अनुभवी
प्राणों की
मुझको सहायता मिली रहे।

यह जान तुम्हारे माथे की
तीनों रेखाएँ उलझ गयी
नभ मे त्रिकाल-रेखाएँ विद्युत् की चमकी
मैंने जब नीली चकाचौंध
वह देखी तो
वे भीषण होकर गरज गयी
झूठे अवलम्बन की शहनाई मूक हुई
भावुक निर्भरता का सम्बल दो टूक हुआ,
देखा···सहसा मैं बदल गया,
भूरे नि सग रास्ते पर

आत्मा में मधुमक्खी का है छत्ता फैला ।।
मानव-व्यक्तित्व-कदम्ब-तले,
मधुमक्खी छत्ते के जाले,
तुमने सोचा कैसे ये पाले जाते हैं,
मेरे दिन, मेरी रातों में
ओ सहचर मित्र, तुम्हारे दिन हैं
रातें हैं ।
मेरे भीतर
मानव-व्यक्तित्व-कदम्ब-तले,
तरु के गम्भीर तने पर चाकू से लिक्खी
काटी खोदी,
वाक्यावलियाँ ज़िन्दगियों ने ।
ज़िन्दगी हरेक निजत्व लिये पलकें
खोले,
अपना-अपना व्यक्तित्व लिये
अलकें खोले
अन्तर के तरु की शाखा शाखा पर
प्रतिपल
चाकू से काट-काट चित्रित करती है
गहरा संवेदन ।
मानव-व्यक्तित्व-कदम्ब-तले
(गम्भीर रात्रि में) आ करके,
चुपचाप सिमिट
अकुलाहट की चाँदनी
सरल निर्व्याज मुखी
तरु-तने-खुदी वाक्यावलियाँ
पढ़ती है बहुत ध्यान से तब
पढ़ते-पढ़ते अक्षर-दल से,
उमड़ी चन्दन की ज्वालाएँ
पावनता की विक्षुब्ध
रश्मियाँ भभक उठीं,
ये खोदे गये मर्म साराश भभकते हैं
बस इसी तरह
अर्थों की गहरी ज्वालाएँ दिन रात
निकलतीं इसी तरह,
माधुरी और करुणा से भीगी रहकर भी
जी के भीतर की शिलालेख चट्टान,
गर्म रहती ही है ।
संघर्ष मार्ग-इतिहास मर्म कहती ही है
ओ मेरे सहचर मित्र,

क्षितिज के मस्तक पर नाचती हुई
दो तडिल्लताओं में मैत्री रहती ही है।

[सम्भावित रचनाकाल 1951-52 से 1961-62 तक। नागपुर-राजनाँदगाँव। एक प्रारूप **निकष** 3-4 जनवरी 1957, में प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में संकलित]

पता नहीं···

1

पता नहीं, कब, कौन, कहाँ किस ओर मिले,
किस साँझ मिले, किस सुबह मिले ! !
यह राह ज़िन्दगी की
जिससे जिस जगह मिले
है ठीक वही, बस वही अहाते मेंहदी के
जिनके भीतर
है कोई घर
बाहर प्रसन्न पीली कनेर
बरगद ऊँचा, ज़मीन गीली
मन जिन्हें देख कल्पना करेगा जाने क्या ! !
तब बैठ एक
गम्भीर वृक्ष के तले
टटोलो मन, जिससे जिस छोर मिले,
कर अपने-अपने तप्त अनुभवों की तुलना
घुलना मिलना ! !

2

यह सही है कि चिलचिला रहे फ़ासले,
तेज़ दुपहर भूरी
सब ओर गरम धार सा रेंगता चला
काल बाँका-तिरछा,
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद-छाँह वही
गहरी-गहरी सपनीली सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस् स्पृशा
स्वर्गीय उषा

लाखों आँखों से, गहरी अन्तःकरण तृषा
तुमको निहारती बैठेगी
आत्मीय और इतनी प्रसन्न,
मानव के प्रति, मानव के
जी की पुकार
जितनी अनन्य !
लाखों आँखों से तुम्हें देखती बैठेगी
वह भव्य तृषा
इतने समीप
ज्यों लालीभरा पास बैठा हो आसमान
आँचल फैला,
अपनेपन की प्रकाश-वर्षा
में रुधिर-स्नात हँसता समुद्र
अपनी गम्भीरता के विरुद्ध चंचल होगा।

3

सुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोकभरी,
जो सतत तुम्हारी थाह लिये होतीं गहरी,
इतनी गहरी
कि तुम्हारी थाहों में अजीब हलचल,
मानो अनजाने रत्नों की
अनपहचानी-सी चोरी में
धर लिये गये,
निज में बसने, कस लिये गये।

4

तब तुम्हें लगेगा अकस्मात्,
....
ले प्रतिभाओं का सार, स्फुलिंगों का समूह
सबके मन का
जो एक बना है अग्नि-व्यूह
अन्तस्तल में,
उस पर जो छायी है ठण्डी
प्रस्तर-सतहें
सहसा काँपीं, तड़कीं, टूटीं
औ' भीतर का वह ज्वलत् कोष
ही निकल पड़ा ! !
उत्कलित हुआ प्रज्वलित कमल ! !
यह कैसी घटना है···
कि स्वप्न की रचना है।

उस कमल-कोष के पराग-स्तर
पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति-पुरुष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप अत्यन्त निकट
आतुर उत्कट
तुमको कन्धे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ व कितनी दूर !!

फिर वही यात्रा सुदूर की,
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
कि वही आत्मचेतस् अन्त सम्भावना,
...जाने किन खतरों में जूझे ज़िन्दगी !!

5

अपनी धकधक
में दर्दीले फैले-फैलेपन की मिठास,
या निःस्वात्मक विकास का युग
जिसकी मानव-गति को सुनकर
तुम दौड़ोगे *प्रत्यक्ष व्यक्ति के*
चरण-तले जनपथ बनकर !!
वे आस्थाएँ तुमको दरिद्र करवायेंगी
कि दैन्य ही भोगोगे
पर, तुम अनन्य होगे,
प्रसन्न होगे !!
आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकायेगी
जिस जगह, जहाँ जो छोर मिले
ले जायेगी...
...पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले।

[सम्भावित रचनाकाल 1961-1962। राजनांदगाँव। कल्पना, मई 1962, में प्रकाशित। *चाँद का मुँह टेढ़ा है* में संकलित]



एक स्वप्न-कथा

1

एक विजय और एक पराजय बीच
मेरी शुद्ध प्रकृति
मेरा 'स्व'
जगमगाता रहता है
विचित्र उथल-पुथल में।
मेरी साँझ, मेरी रात
सुबहे व मेरे दिन
नहाते हैं, नहाते ही रहते हैं
सियाह समुन्दर के अथाह पानी मे
उठते-गिरते हुए दिगवकाश-जल मे।
विक्षोभित हिल्लोलित लहरो मे
मेरा मन नहाता रहता है
साँवले पल मे।
फिर भी, फिसलते-से किनारे को पकडकर मैं
बाहर निकलने की, रह-रहकर तडपती कोशिश में
कौध-कौध उठता हूँ,
इस कोने, उस कोने
चकाचौध-किरनें वे नाचती
सामने बगल मे।

इतने मे दीखती—
मेरी ही भाँति कही, इसी समुन्दर की
सियाह लहरो मे नगी नहाती हैं
किरनीली मूर्तियाँ
मेरी ही स्फूर्तियाँ
निथरते पानी की काली लकीरो के
कारण, कटी-पिटी अजीब-सी शकल म।
उनके मुखारविन्द
मुझे डराते है,
इतने कठोर हैं कि कान्तिमान पत्थर है
क्वार्ट्ज शिलाएँ है
जिनमें से छन-छनकर
नील किरण-मालाएँ
कोण बदलती हैं;
एक नया पहलू रोज
सामने आता है प्रश्नो के पल-पल म।

2

सागर-तट पथरीला
किसी अन्य ग्रह-तल के विलक्षण स्थानो की
अपार्थिव आकृति-सा
इस मिनिट, उस सेकेण्ड
चमचमा उठता है,
जब-जब वे स्फूर्ति-मुख मुझे देख तमतमा उठते हैं

काली उन लहरो को पकडकर अजलि मे
जब-जब मैं देखना चाहता हूँ—
क्या है वे ? कहाँ से आयी है ?
किस तरह निकली हैं
उद्गम क्या, स्रोत क्या,
उनका इतिहास क्या ?
काले समुन्दर की व्याख्या क्या, भाष्य क्या ?
कि इतने मे, इतने मे
झलक-झलक उठती हैं
जल-अन्तर मे से ही कठोर मुख आकृतियाँ
भयावने चेहरे कुछ, लहरो के नीचे से,
चिलक-चिलक उठते हैं,
मुझको अडाते हैं,
बेहावदार गुस्से मे भौंहे चढाते हैं।
पहचान मे आते-से, जान नही पाता हूँ,
शनाख्त न कर सकता।
खयाल यह आता है—
शायद है,
सागर की थाहो मे महाद्वीप डूबे हो
रहती हैं उनमे ये मनुष्य-आकृतियाँ
मुसकरा, लहरो मे, उभरती रहती है।
थरथरा उठता हूँ।
सियाह वीरानी मे लहराता आर-पार
सागर यह कौन है ?

3

जाने क्यो, काँप-सिहरते हुए,
एक भयद
अपवित्रता की हद
ढूंढ़ने लगता हूँ कि इतने मे
एक अनहद गान
निनादित सर्वत

झूलता रहता है,
ऊँचा उठ, नीचे गिर
पुन. क्षीण, पुनः तीव्र
इस कोने, उस कोने, दूर-दूर
चारो ओर गूँजता रहता है।
आर-पार सागर के श्यामल प्रसारो पर
अपार्थिव पक्षिणियाँ
अनवरत गाती हैं—
चीखती रहती हैं
ज़माने-ज़माने की गहरी शिकायतें
खूँरेज किस्सो से निकले नतीजे और
सूरे व आयतें
सुनाती रहती है
अजीब, अजीबोगरीब
दुखभरे लहज़े मे।
कोई तब कहता है—
पक्षिणियाँ सचमुच अपार्थिव हैं
कल जो अनैसर्गिक
अमानवीय दिखता था
आज वही स्वाभाविक।
इसीलिए आज जो स्वाभाविक लगता है,
निश्चित है कल वही अपार्थिव दीखेगा।
इसीलिए, उसको आज अप्राकृत मान लो।

सियाह समुन्दर के वे पाखी उड-उडकर
कन्धो पर, शीश पर
इस तरह मँडराकर बैठते
कि मानो मैं सहचर हूँ उनका भी,
कि मैंने भी, दु खात्मक आलोचन—
किरनो के रक्त-मणि
हृदय मे रक्खे हैं।
पक्षिणियाँ कहती है—
सहस्रो वर्षों से यह सागर
उफनता आया है
उसका तुम भाष्य करो
उसका व्याख्यान करो
चाहो तो उसमे तुम डूब मरो।
अतल-निरीक्षण को,
मरकर तुम पूर्ण करो।

4

मुझसे जो छूट गये अपने वे
स्फूर्ति-मुख निहारता बैठा हूँ,
उनका आदेश क्या,
क्या करूँ?

रह-रहकर यह खयाल आता है—
ज्ञानी एक पूर्वज ने
किसी रात, नदी का पानी काट,
मन्त्र पढते हुए,
गहन जल-धारा म
गोता लगाया था कि
अन्धकार—जल-तल का स्पर्श कर
इधर ढूँढ, उधर खोज
एक स्निग्ध, गोल-गोल
मनोहर तेजस्वी शिलाखण्ड
तमोमय जल मे स सहज निकाला था,
देव बना, पूजा की।
उसी तरह, सम्भव है—
सियाह समुन्दर के
अतल-तले पडा हुआ
किरणीला एक दीप्त
प्रस्तर—युगानुयुग
तिमिर श्याम सागर के विरुद्ध निज आभा की
महत्त्वपूर्ण सत्ता का
प्रतिनिधित्व करता हो, आज भी।
सम्भव है, वह पत्थर
मेरा ही नही वरन्
पूरे ब्रह्माण्ड की
केन्द्र क्रियाओ का तेजस्वी अश हो।
सम्भव है,
सभी कुछ दिखता हो उसमे से,
दूर दूर देशो म क्या हुआ,
क्यो हुआ, किस तरह, कहाँ हुआ!!
इतने म कोई आ कानो मे कहता है—
ऐसा यह ज्ञान-मणि
मरने से मिलता है,
जीवन के जगल मे
अनुभव के नये नये गिरियो के ढालो पर
वेदना झरने के,

पहली बार देखे-से, जल-तल मे
आत्मा मिलती है
(कही-कही, कभी-कभी)
अरे, राह-गलियो मे
पडा नही मिलता है ज्ञान-मणि।

हाय रे!
मेरे ही स्फूर्ति-मुख
मेरा ही अनादर करते है,
तिरस्कार करते है,
अविश्वास करते हैं!
मुझे देख, तमतमा उठते है।
क्रोधारुण उनका मुख-मण्डल देखकर लगता है—
छिडने ही वाली है युग-व्यापी एक बहस
उभरनेवाली है बेहद जद्दोजहद,
बहुत बडा परिवर्तन
सघन वातावरण होने ही वाला है,
जिसके ये घनीभूत
अन्धकारपूर्ण शत
पूर्व-क्षण
महान् अपेक्षा से यो तडप उठते है
कि मेरे ही अन्त स्थित सवेदन
मुझ पर ही
झूम, बरस, गरज, कडक उठते है।
उनका वार
बिलकुल मुझी पर है;
बिजली का हर्फ
सिर्फ मुझ पर गिर
तहस-नहस करता है,
बहुत बहस करता है।

5

मेरे प्रति उन्मुख हो स्फूर्तियाँ
कहती हैं—
तुम क्या हो?
पहचान न पायी, सच!
क्या कहना! तुम्हारी आत्मा का
सौन्दर्य अनिर्वच,
प्राण हैं प्रस्तर त्वच।

मारकर ठहाका, वे मुझे हिला देती है
सोयी हुई अग्नियाँ
उँगली से हिला-डुला
पुन जिला देती है।
मुझे वे दुनिया की
किसी दवाई में डाल
गला देती हैं!!
उनके वे बोल है कि पत्थर की वारिश है
बहुत पुराने किसी
अन-चुकाये कर्ज़ की
- खतरनाक नालिश है,
फिर भी है रास्ता, रिआयत है,
मेरी मुरव्वत है।

क्षितिज के कोने पर गरजते जाते किस
तेज़ आँधी-नुमा गहरे हवाले से
बोलते जाते हैं स्फूर्ति-मुख।
देख यो हम सबको
चमचमा मंगल-ग्रह साक्षी बन जाता है
पृथ्वी के रत्न-विवर में से निकली हुई
बलवती जल-धारा
नव-नवीन मणि-समूह
बहाती लिये जाय,
और उस स्थिति मे, रत्न-मण्डल की तीव्र दीप्ति
आग लगाये लहरो मे
उसी तरह, स्फूर्तिमय भाषा-प्रवाह मे
जगमगा उठते हैं भिन्न-भिन्न मर्म-स्वेन्द्र।
सत्य-वचन,
स्वप्न-दृग् कवियो के तेजस्वी उद्धरण,
सम्भावी युद्धो के भव्य-क्षण-आलोडन,
विराट् चित्रो मे
भविष्य-आस्फालन
जगमगा उठता है।

और, तब हा-हा खा
दुनिया का अँधेरा रोता है।
ठहाका—आगामी देवो का।
काले समुन्दर की अन्धकार-जल-त्वचा
थरथरा उठती है!!
बन्द करने की जब कोशिश होती है तो

मन का यह दरवाज़ा
करकरा उठता है
विरोध मे, खुल जाता धड्ड से
उसका सुदूर तक गूँजता धड़ाका
अँधेरी रातो में।
स्फूर्तियाँ
कहती है कि
मैं जो पुत्र उनका हूँ
अब नही पहचान मे आता हूँ,
लौट विदेशो से
अपने ही घर पर मै इस तरह नवीन हूँ
इतना अधिक मौलिक हूँ—
असल नही !!
मन मे जो बात एक कराहती रहती है
उसकी तुष्टि करने का
साहस, सकल्प और बल नही।

मुझको वे स्फूर्ति-मुख
इस तरह देखते कि
मानो अजीब हूँ,
उन्हे छोड कष्टो मे
उन्हे त्याग दु ख की खोहो मे
कही दूर निकल गया
कि मै जो बहा किया
आन्तरिक आरोहावरोहो मे,
निर्णायक मुहूर्त जो कि
घपले मे टल गया,
कि मैं ही क्यो इस तरह बदल गया !
इसीलिए, मेरी ये कविताएँ
भयानक हिडिम्बा हैं,
वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएँ
विकृताकृति-बिम्बा हैं।

6
मुझे जेल देती हैं
दुश्मन हैं स्फूर्तियाँ
गुस्से मे ढकेल ही देती है।
भयानक समुन्दर के बीचोबीच फेंक दिया जाता हूँ।
अपना सब वर्तमान, भूत, भविष्य स्वाहा कर
पृथ्वी-रहित, नभ-रहित होकर मैं

वीरान जलती हुई अकेली धड़कन ले
सहसा पछाड़ खा
चारों ओर फैले उस भयानक समुद्र की
(काले सगमूसा सी चिकनी व चमकदार)
सतहों पर छटपटा गिरता हूँ
कि माथे पर चोट जो लगती है
लहरें चूस लेती हैं रक्त को,
तैरने लगते से हैं रुधिर के रेशे वे।
इतने में, खयाल आता है कि
समुद्र के अतल-तले
लुप्त महाद्वीपों में पहाड़ भी होंगे ही
उनकी जल-खोहों तक जाना ही होगा अब।
भागती लहरों के कन्धों के साथ-साथ
आगे कुछ बढ़ता हूँ कि
नाभि-नाल छूता हूँ अकस्मात्।
मृणाल, हाँ मृणाल
जल-खोहों से ऊपर उठ
लहरों के ऊपर चढ़
बनकर वृहद् एक
काला सहस्रदल सम्मुख उपस्थित है,
उसमें है कृष्ण रक्त।
गोता लगाऊँ और
नाभि-नाल-रेखा की समान्तर राह से
नीचे जल-खोह तक पहुँचूँ तो
सम्भव है सागर का मूल सत्य
मुझे मिल जायगा।
अन्धी जल-खोहों में
क्यों न हम घूमें और
सर्वेक्षण क्यों न करें
फिरें-तिरें।
चाहे तो दुर्घटनाघात से
बूढ़ी विकराल ह्वेल-पंजर की काँख में
फँसें-मरें।

इतने में, भुजाएँ ये व्यग्र हो
पानी को काटती उदग्र हो।
अचानक खयाल यह आता है कि
काले सगमूसा-सी भयानक लहरों के
कई मील नीचे एक
बृहद् नगर

भव्य···
सागर के तिमिर-तले।
निराकार निराकार तमाकार पानी की
कई मील मोटी जो लगातार सतहे हैं
उनके ही नीचे वे जगहे हैं
जहाँ मुझे जाना है।
इसीलिए, मुझे इस तमाकार पानी से
समझौता करना है
तैरते रहना है सीमाहीन काल तक,
मुझको तो मृत्यु तक
भयानक लहरों से मित्रता रखना है।
इतने मे, हाय-हाय,
सागर की जल-त्वचा थरथरा उठती है,
लहरो के दाँत दीख पडते हैं पीसते।
दल पर दल लहरें है कि
तर्कों की बहती हुई पक्तियाँ,
दिगवकाश-सम्बन्धी थिओरम या
ऊर्ध्वोन्मुख भावो की अध पतित
उठती निसैनियाँ !!

और, ये लहरें जिस सीमा तक दौडती
जहाँ जिस सीमा पर खो-सी जाती हैं
वही, हाँ,
पीली और भूरी-सी धुन्ध है गीली-सी,
मद्धिम उजाले का मटमैला बादली परदा-सा
कि जिसके प्रसार पर
जुलूस चल पडते हैं
दिक्काल दृश्यो के।

7

स्तब्ध हूँ,
विचित्र दृश्य !
फुसफुसे पहाडो-सी पुरुषो की आकृतियाँ
भुसभुसे टीलो-सी नारी प्रकृतियाँ
ऊँचा उठाये सिर गरबीली चाल से
सरकती जाती हैं।
चेहरो के चौखटे
अलग-अलग तरह के, अजीब हैं,
मुश्किल है जानना;
पर, कई

निज के स्वयं के ही
पहचानवालों का भान हो आता है।
आसमान असीम, अछोरपन भूल,
तंग गुम्बज बन, फिर,
क्रमशः संक्षिप्त हो
मात्र एक अँधेरी खोह बन जाता है।
और, मैं मन ही मन, टिप्पणी करता हूँ कि
हो न हो
कई मील मोटी जल-परतों के
नीचे ढँका हुआ, शहर जो डूबा है
उसके सौ कमरों में
हलचलें गहरी हैं।
व उनकी कुछ छाइयाँ
ऊपर आ सिहरी हैं
सिहरती उभरी हैं...
साफ-साफ दीखती।

अकस्मात् मुझे ज्ञात होता है
कि मैं ही नहीं वरन्
अन्य अनेक जन
दु:खों के द्रोहपूर्ण
ज्ञानात्मक दीप्तिमान शिखरों पर चढ़ करके
देखते
विराट् उन दृश्यों को
कि ऐसा हो एक देव भयानक आकार का
अनन्त चिन्ता से ग्रस्त हो
विदारक समीक्षण-सर्वेक्षण करता है
विराट् उन चित्रों का।
जुलूस में अनेक मुख
(नेता और विक्रेता, अफसर और कलाकार)
अनगिन चरित्र
पर, चरितव्य कहीं नहीं
अनगिनत श्रेष्ठों की अनेक रूप-आकृतियाँ—
रिक्त प्रकृतियाँ।
मात्र महत्ता की निराकार केवलता।

उस कृष्ण सागर की ऊँची तरंगों में,
उठता गिरता हुआ मेरा मन
अपनी दृष्टि-रेखाएँ प्रक्षेपित करता है
इतने में दीखता कि

सागर की थाहों में पैर टिका देता है पर्वत-आकार का।
दैव भयानक
उठ खड़ा होता है।
सागर का पानी, सिर्फ उसके घुटनों तक है,
पर्वत-सा मुख-मण्डल आसमान छूता है
अनगिनत ग्रह-तारे चमक रहे, कन्धों पर।
लटक रहा एक ओर
चाँद
कन्दील-सा।
मद्धिम प्रकाश-रहस्य फैला है सभी ओर।
और ··सुदूर वहाँ श्याम आकाश में
चट्टानी चेहरा स्याह
नाजुक और सख्त (पर, धुँधला वह)
बोल पड़ा—
'·········
कितनी ही गर्वमयी
सभ्यता-संस्कृतियाँ
डूब गयीं।
काँपा है, थहरा है,
काल-जल गहरा है,
शोषण की अतिमात्रा,
स्वार्थों की सुख-यात्रा,
जब-जब सम्पन्न हुई,
आत्मा से अर्थ गया, मर गयी सभ्यता।
भीतर की मोरियाँ अकस्मात् खुल गयीं।
जल की सतह मलिन
ऊँची होती गयी,
अन्दर सूराख से
अपने उस पाप से
शहरों के टॉवर सब मीनारें डूब गयीं,
काला समुन्दर ही लहराया, लहराया।'

भयानक थर-थर है, ग्लानिकर सागर में
मुझे ग़श आता है,
विलक्षण स्पर्शों की अपरिचित पीड़ा में
परिप्रेक्ष्य गहरा हो,
तिमिर-दृश्य आता है—
कि इतने में
उसी अँधेरे में
हाथ में लेकर एक रहस्यमय लालटेन

नंगे पाँव, लगातार तेज़ चलता हुआ,
ढूँढता हुआ हमें
कोई लक्ष्य आता है
जिसे देख,
आभ्यन्तर ग्रन्थियाँ, बहि समस्याएँ।
चीख-चीख उठती है।

अकस्मात् मुझे दीख पडता है—
काले समुन्दर के बीच, चट्टान पर
सूनी हवाओ को सूँघता हुआ लगातार
फूटा हुआ बुर्ज या
रोशनी-मीनार
बुझी हुई
ऊँची उठती चली गयी लम्बान
वीरान ! !
पुर्तगीज़, ओलन्देज, फिरगी लुटेरो के
हाथो सधी हुई।
उस पर चढ, अँधियारा
जाने क्या गाता है,
मुझको डराता है ! !
खयाल यह आता है कि
हो न हो
इस काले सागर का
सुदूर-स्थित पश्चिम-किनारे से
जरूर कुछ नाता है
इसीलिए, हमारे पास सुख नही आता है।

इतने मे अकस्मात् तैरता आता-सा
समुद्री अँधेरे मे
जगमगाते अनगिनत तारो का उपनिवेश
विविध रूप दीपो की अनगिनत पाँतो का
रहस्य-दृश्य ! !
सागर मे प्रकाश-दीप तैरता' '
जहाज, हाँ, जहाज सर्च-लाइट फेंक घनीभूत अँधेरे मे दूर-दूर
उछलती लहरो पर जाने क्या ढूँढता।
अचानक मैं
सागर-तरगो पर भयानक लट्ठे सा
डूबता उतराता दिखायी देता हूँ कि
चमकती चादर एक तेज फैल जाती है
मेरे सब अगो पर।

एक हाथ आता मेरे हाथ !

वह जहाज
क्षोभ विद्रोहभरे सगठित विरोध का
साहसी समाज है ! !
भीतर व बाहर के पूरे दलिद्दर स
मुक्ति की तलाश म
आगामी कल नही आगत वह आज है ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1961 62। राजनाँदगाँव। कल्पना जून 1962 प्रकाशित। चाँद का मुँह टेढ़ा है म सकलित]

इतिहासिक ट्रैक्टर ओ

ऊपर के स्तर के कुछ नीचे ही
पानी है (गहरा है)
माना कि ऊपर से
मरु ही है
बालू के ढर हैं यह सच है
सूखापन एक दृढ कवच है
परन्तु उस कवच के नीचे तो
कोई कुछ सिहरा है ऊष्मामय छाती म
नीरव रुलाई पर आत्मा का पहरा है
ट्रैक्टर चलते हैं
मरुस्थल वृक्षो के पत्तो मे खो गये
निज परिणति-पीडा मे
हम सब यो जलते हैं गलते हैं
निज को ही बो गये
इतिहासिक ट्रैक्टर ओ
छाती पर चल जाओ
सौ करोड एकड की
हेकड जमीन पर
निज चेतन मृदु कठोर फल लाओ
इतिहासिक ट्रैक्टर ओ
परिवतन सत्वर हो !

[सम्भावित रचनाकाल 1961 62। राजनाँदगाव। अप्रकाशित]

कल्पना की दीप्ति

भूखों ओ, प्यासों ओ
इन्द्रिय जित सन्त बनो
बिरला को टाटा को
अस्थि मास दान दो
केवल स्वतन्त्र बना
धूल फाँक श्रम करो
साम्य स्वप्न-भ्रम हरो
परम पूर्ण अन्त बना
अमरीकी सेठवाद
भारतीय मान लो
हमारे मत प्राण लो
मानवीय जन्तु बनो !!

कल्पना की दीप्ति को तुम सँजो रक्खो
लेकिन स्वप्नों मे उसे
मत भिगो रक्खो
निज अभावों के
स्फुरित विक्षेप जितने चित्रमय
प्रक्षेप जितने
उन्हें यदि कोई गिने तो
जो तुम्हारी मूर्ति सम्मुख बन चलेगी
वह अपार दरिद्र होगी ! !
कल्पना की दीप्ति मे आगत खुला है
वास्तविकता मूर्त है ऊर्जस्वला है ! !
वास्तविकता को उठाकर देखने का चीमटा है कल्पना
वह परखने निरखने का लेन्स,
सच सही उसको जमाना साधना है,
है जरा मुश्किल ! !

बदलते रूपवाले बादलों के दृश्य-से
ये भाव दिखते, पर न रुकते हैं
ठहरते ही नही ! !
पकड़कर रूप-आकृति-रग उनके
चित्र ला देना
बहुत मुश्किल ! !

[सम्भवत अपूर्ण । सम्भावित रचनाकाल 1961-62 । अप्रकाशित]

एक हाथ आता मेरे हाथ !

वह जहाज
क्षोभ-विद्रोहभरे संगठित विरोध का
साहसी समाज है ! !
भीतर व बाहर के पूरे दलिद्दर मे
मुक्ति की तलाश में
आगामी कल नही, आगत वह आज है ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1961-62। राजनांदगांव। कल्पना, जून 1962, में प्रकाशित। चांद का मुंह टेढ़ा है में संकलित]

इतिहासिक ट्रैक्टर ओ

ऊपर के स्तर के कुछ नीचे ही
पानी है (गहरा है)
माना कि ऊपर से
मरु ही है
बालू के ढेर हैं, यह सच है
सूखापन एक दृढ़ कवच है
परन्तु उस कवच के नीचे तो
कोई कुछ सिहरा है, ऊष्मामय छाती मे
नीरव रुलाई पर आत्मा का पहरा है
ट्रैक्टर चलते हैं
मरुस्थल वृक्षों के पत्तों मे खो गये
निज परिणति-पीड़ा मे
हम सब यों जलते हैं गलते हैं
निज को ही बो गये
इतिहासिक ट्रैक्टर ओ
छाती पर चल जाओ
सौ करोड़ एकड़ की
हेकड़ जमीन पर
निज-चेतन मृदु कठोर फल लाओ
इतिहासिक ट्रैक्टर ओ,
परिवर्तन सत्वर हो।

[सम्भावित रचनाकाल 1961-62। राजनांदगांव। अप्रकाशित]

कल्पना की दीप्ति

भूखो ओ, प्यासो ओ
इन्द्रिय-जित सन्त बनो
बिरला को टाटा को
अस्थि मास दान दो
केवल स्वतन्त्र बनो
धूल फांक श्रम करो
साम्य-स्वप्न-भ्रम हरो
परम पूर्ण अन्त बनो
अमरीकी सेठवाद
भारतीय मान लो
हमारे मत प्राण लो
मानवीय जन्तु बनो !!

कल्पना की दीप्ति को तुम सँजो रक्खो
रिक्त स्वप्नो मे उसे
मत भिगो रक्खो
निज अभावो के
स्फुरित विक्षेप जितने चित्रमय
प्रक्षेप जितने
उन्हे यदि कोई गिने तो
जो तुम्हारी मूर्ति सम्मुख बन चलेगी
वह अपार दरिद्र होगी ! !
कल्पना की दीप्ति मे आगत खुला है
वास्तविकता मूर्त है ऊर्जस्वला है ! !
वास्तविकता को उठाकर देखने का चीमटा है कल्पना
वह परखने-निरखने का लेन्स,
सच सही उसको जमाना साधना है,
है जरा मुश्किल ! !

बदलते रूपवाले बादलो के दृश्य-से
ये भाव दिखते, पर न रुकते है
ठहरते ही नही ! !
पकडकर रूप-आकृति-रग उनके
चित्र ला देना
बहुत मुश्किल ! !

[सम्भवत अपूर्ण । सम्भावित रचनाकाल 1961-62 । अप्रकाशित]

एक सपना

पता नहीं जाने कब से डाल रक्खा है
शिखरों के रुँध हुए विवरों म
आत्म-चेतन अँधेरे मे
कोई मैला जाल रक्खा है
नगरो का कचरा सब पाल रक्खा है।

रामायण के जाने कब के सडे पत्ते
गयी गुजरी रोशनी के टूटे हुए कुछ स्विच
रौबदार वसीलो से फूले हुए थीसिस
मरी हुई परियो की
कुर्सियो के टूटे हुए हत्थे
शृगार-प्रसाधन का अटाला व जाँघिए
पीले पडे प्रेमपत्र भरे हुए बैंक बुक
अँगडाई लेती हुई कलाओ की मेहराब
अध-नगे वाकए
भिन्न भिन्न पोज और भिन्न रूप-कोण लिये फोटो
रौब दाब दाँव-पेच छक्के सत्ते
विदेशो के लिए सिये फैशनेबल कपडे-लत्त
भूरे पडे पासपोर्ट सडे हुए पाटमेण्टो
और इस सब शुचि सामग्री की राशि पर
भूतपूर्व ज्वालाओ के इन सब
भवनो के अन्दर
तहखाने तलघर
जिनके गहरे सावधान अँधेरे म घनघोर
मरी हुई परियो के मिले जुले कमजोर
नाजुक-नाजुक गलो से
फूट पडता एकाएक
कोई रोना नभ तक
गूँजता है अब भी
कहता है—सारी आग
जान कब की बुझ गयी,
गरम-गरम झरनो का झाग भी न बचा है
सिर्फ देह रह गयी रह गयी आदतें
हर चीज मुट्ठी म रखने की सिफ़तें
बन गयी खूँखार
इसीलिए, बचा-खुचा जो भी रह गया है
ब्याज उसका, दर उसका बहुत बढ़ गया है।।

इतने मे देखता मैं क्या हूँ कि
उन्ही ज्वालामुखियो के दल मे से एक ने
सीसे-जैसी लम्बी-लम्बी आसमानी हदो तक
लम्बी चुरुट सुलगायी
दाँतो से होठ दाब जाने किस तैश मे
चेहरे की सलवटें और रौबदार की
गडगडाते हुए वह कहने लगा—हे मूर्ख,
देख मुझे पहचान
मुझे जान
मैं मरा नही हूँ
देखते नही हो क्या
मेरी यह सिगरेट धुँआती है अब तक
मेरी आग मुझमें है जल रही अब भी।

इतने मे मेरा सपना खुल गया
उचट गयी मेरी नीद।

[सम्भवत: अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1961-62। राजनांदगांव। अप्रकाशित]

चाँद का मुँह टेढ़ा है

1

नगर के बीचोबीच
आधी रात—अँधेरे की काली स्याह
शिलाओ से बनी हुई दिवालो के घेरो पर,
अहातो के काँच-टुकडे-जमे-हुए
ऊँचे-ऊँचे कन्धो पर, सिरो पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलाई झालरें।
कारखाना-अहाते के उस पार
कलमुँही चिमनियो के मीनार
उद्गार-चिह्लाकार।
मीनारो के बीचोबीच चाँद का है टेढा मुँह
लटका,
मेरे दिल मे खटका—
कही कोई चीख, कही बहुत बुरा हाल रे !!

अजीब है !!
गगन मे करफ्यू,
धरती पर चुपचाप जहरीली छी थू,
पीपल के सुनसान घोसलो मे पैठे है
कारतूस-छर्रे
जिससे कि हवेली म
हवाओ के पल्लू भी सिहरे।
गजे-सिर चाँद की सँवलाई किरनो के जासूस
साम-सूम नगर मे धीरे-धीरे घूम-घाम
नगर के कोनो के तिकोनो म छुपे हुए
करते हैं महसूस
गलियों की हाय-हाय !!
चांद की कनखियो की किरनो ने
नगर छान डाला है।
अँधेरे को आडे-तिरछे काटकर
पीली-पीली पट्टियां बिछा दी,
समय काला-काला है।

समीप विशालाकार अँधियाले ताल पर
सूनेपन की स्याही मे डूबी हुई
चाँदनी भी सँवलाई हुई है।

शहर के बडे-बडे पुलो के
मेहराबो-नीचे बहुत नीचे उन
सिमटी हुई डरी हुई
बस्तियो के सुनसान उदास किनारो से लगकर
बहते-अटकते हुए
झरते भटकते हुए
पथरीले नालो की काली-काली धार म
धराशायी चाँदनी के होठ काले पड गये।

हरिजन-बस्ती मे, मन्दिर के पास एक
कवीठ के धड पर,
मटमैले छप्परो पर,
बरगद की ऐंठी हुई उभरी हुई जड पर
कुहासे के भूतो के लटके
चूनर के चिथरे
अँगिया व घाघरे, फटी हुई चादरें
अटक गयी जिनमे एक
व्यभिचारी टकटकी

गंजे-सिर, टेढ़े-मुंह चांद की ही कंजी आँख।

बारह का वक्त है,
भुसभुसे उजाले का फुसफुसाता षड्यन्त्र,
जमाना भी सख्त है।

पुराने-धुराने इस अजीब से-रास्ते के मोड़ पर
बरगद की घनघोर शाखाओं की गठियल
अजगरी मेहराब—
मरे हुए जमानों की
संगठित छायाओं में बसी हुई
सड़ी-बुसी बास लिये
फैली है रास्ते के मुहाने पर चुपचाप।
लोगों के आने में जाने में चुपचाप
अजगरी कमानी से गिरती है टिपटिप
फड़फड़ाते पक्षियों की बीट—
मानो समय की बीट हो।
गगन में करफ्यू,
वृक्षों में बैठे हुए पक्षियों पर करफ्यू,
धरती पर चारों ओर जहरीली छी थू।

बरगद की डाल एक
सड़क के एक ओर लटकती है इस तरह
मानो कि आदमी के जनम के बहुत-बहुत पहले,
पृथ्वी की छाती पर
जंगली मैमथ की सूँड सूँघ रही हो
हवा के लहरीले सिफरों को आज भी।
(घिरी हुई विपदा के घेरे-सी)
बरगद की घनी-घनी छाँव में
(फूटी हुई चूड़ियों की सूनी-सूनी कलाई-सी)
सूनी-सूनी गलियों में,
ग़रीबों के ठांव में—
चौराहे पर खड़ा हुआ
भैरों का सिन्दूरी महाकार
जिसके कि गेरुए खुरदुरे चेहरे पर जोरदार
पथरीले व्यंग्य का चमकदार स्मित,
देखता है—चाँद की गुप्तचर-नीति।
तजुर्बों का ताबूत ज़िन्दा यह बरगद
जानता है गलियों की ताकत।
वह देख रहा है—

भैरों की चट्टानी पीठ पर
और उसके पैरो-तले
पत्थरी सतहों पर जमी हुई ईंट पर
भभकते हैं नीले-नीले बड़े-बड़े अक्षर।

सामने है अँधियाला ताल और
स्याह उसी ताल पर
सँवलाई चाँदनी।
समय का घण्टाघर,
निराकार घण्टाघर,
गगन में चुपचाप अनाकार खड़ा है···
किन्तु, बताते हैं
जिन्दगी के कांटे
कितनी रात बीत गयी।

चप्पलों की छप-छप
रास्ते के मुहाने से अजीब-सी आवाज़,
फुसफुसाते हुए शब्द
जंगल की डालों से गुज़र रही हवाओं की सर-सर
गली को ज्यों कह जाय
इशारों के मतलब।
हवाओं की लहरों के आकार
(किन्हीं ब्रह्मराक्षसों के निराकार अनाकार)
मानो बहस छेड़ दें
बहस जैसे बढ़ जाय
निर्णय पर चली आय
वैसे, शब्द बार-बार
गलियों की आत्मा में
बोलते हैं एकाएक
अँधेरे के पेट में से
ज्वालाओं की आँत बाहर निकल आय
वैसे, अरे, शब्दों की धार एक
बिजली की टॉर्च की रोशनी की मार एक
बरगद के खुरदरे अजगरी तने पर
फूल गयी अकस्मात्।
बरगद के खुरदरे अजगरी तने को
छूने लगे कसे हुए मज़बूत हाथ दो।
इन्हें देख लगता है मानो कि दिल में
छुपी हुई बातों ने सहसा
अँधेरे से बाहर आ

भुजाएँ पसारी हो।
फैल गये हाथ दो
चिपका गये लम्बे-चौडे पोस्टर
बाँके तिरछे वर्ण और
लाल-नीले घनघोर
हडताली अक्षर !!

इन्ही हलचलो के ही कारण तो सहसा
बरगद मे पले हुए पखो की डरी हुई
चौंकी हुई अजीब-सी गन्दी-सी फड-फड।
कॉव-कॉव करते हुए पक्षियो के जमघट
अँधेरे की आत्मा स करते हुए शिकायत
उडन लग अकस्मात्
(अँधेरे के हृदय मे सन्देही शकाओ के आघात)

मद्धिम चाँदनी म एकाएक एकाएक
खपरैलो पर ठहर गयी
बिल्ली एक चुपचाप
रजनी के निजी गुप्तचरो की प्रतिनिधि
पूँछ उठाये वह,
जगली तेज
कजी
आँख
फैलाये
यमदूत-पुत्री-सी
(सभी देह स्याह, पर
पजे सिर्फ श्वेत और
खून टपकाते हुए नाखून)
देखती है मार्जार
चिपकाता कौन है
मकानो की पीठ पर
अहातो की भीत पर
बरगद की अजगरी डालो के फन्दो पर
अँधेरे के कन्धो पर
चिपकाता कौन है
चिपकाता कौन है
हडताली पोस्टर
बाँके तिरछे वर्ण और
लम्बे-चौडे घनघोर

लाल-नीले भयकर
हडताली पोस्टर !!

टेढे मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी भी खूब है।
लोहे के गज़ोवाली जाली के झरोखो के इस पार
लिपे हुए कमरे मे
काली-काली धारियो के पीले-पीले बडे-बडे चौकोन
जेल के कपडे-सी फैली है चाँदनी
जेल सुझाती हुई तिलिस्मी रोशनी।

उसी वक्त
अँधियाले ताल पर
काले घिने पखो की बार-बार
लहरो के मँडराते विस्तार।
मानो वह वे अवरुद्ध
अपावन अशुद्ध घेरे मे घिरे हुए
नपुसक चिन्ताओ की स्वार्थभरी रफ्तार !!
वह चिमगादड-दल
भटकता है प्यासा-सा
बुद्धि की आँखो मे
स्वार्थों का सीसा-सा।

बरगद को किन्तु सब इतिहास पता था।
कोलतारी सडक पर खडे हुए सर्वोच्च
गाँधी की मूर्ति पर
बैठे हुए आँखो के दो चक्र
यानी कि घुग्घू एक
उसी तरह थोडे-से फासले पर
ठीक उसके सामने,
तिलक के पुतले पर बैठा एक घुग्घू।
दोनो म ज़ोरदार बहस और बातचीत।
गाँधी के सिर पर बैठे उलूक ने
कहना शुरू किया—
"···मसान मे···
मैंने भी सिद्धि की
देखो, मूँठ मार दी
मनुष्यो पर इस तरह· "

तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू ने
देखा कि सचमुच भयानक लाल मूँठ

लाल-नील भयंकर
हड़ताली पोस्टर !!

टेढ़े मुँह चाँद की एयारी रोशनी भी खूब है।
लोहे के गजोंवाली जाली के झरोखों के इस पार
लिपे हुए कमरे में
काली-काली धारियों के पीन पीन बड़े-बड़े चौकोन
जेल के कपड़े सी फैली है चाँदनी
जल सुझाती हुई तिलिस्मी रोशनी।

उसी वक्त
अँधियाल ताल पर
कान घिन पंखों की बार-बार
लहरों के मँडराते विस्तार।
मानो अहं के अवरुद्ध
अपावन अशुद्ध घर में घिरे हुए
नपुंसक चिन्ताओं की स्वार्थभरी रफ्तार !!
वह चिमगादड़ दल
भटकता है प्यासा सा
बुद्धि की आँखों में
स्वार्थों का सीसा-सा।

बरगद को किन्तु सब इतिहास पता था।
कोलतारी सड़क पर खड़े हुए सर्वोच्च
गाँधी की मूर्ति पर
बैठे हुए आँखों के दो चक्र
यानी कि घुग्घू एक
उसी तरह थोड़े-से फासले पर
ठीक उसके सामने
तिलक के पुतले पर बैठा एक घुग्घू।
दोनों में जोरदार बहस और बातचीत।
गांधी के सिर पर बैठे उलूक ने
कहना शुरू किया—
" मसान में
मैंने भी सिद्धि की
देखो, मूँठ मार दी
मनुष्यों पर इस तरह

तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू ने
देखा कि सचमुच भयानक लाल मूठ

महल उलाँघकर, मुहल्ले पारकर
गलियो की गुहाओ म दबे-पाँव खुफिया सुराग म
गुप्तचरी ताक म लगातार खोजती है
वह कौन
कन्धो पर अँधेरे के चिपकाता कौन है
भडकील पोस्टर,
लम्बे चौडे वर्ण और
बाँके तिरछे घनघोर
लाल-नीले अक्षर !!

कोलतारी सडक क बीचोबीच खडी हुई
गाँधी की मूर्ति पर बैठे हुए घुग्घू न
एकाएक गला फाड गाना शुरू किया
हिचकी की ताल पर,
दुनिया की साँसो ने तब
मर जाना शुरू किया !!
टेलीफोन खम्भो पर थम हुए तारो न
सट्टे के ट्रक-काल-सुर मे
भर्राना और झनझनाना शुरू किया
काला स्याह कनटोप पहने हुए
आसमान बाबा ने
सकट पहचान

विम्ब क्षेप करते है
अफ़सोसभरे गहरे दुखडे
जिन्हे देख, जिन्ह सुन
किन्ही अति सस्कृत भूतो के गोल-गोल
मटको-स चेहरो ने
नम्रता के घिघियाते स्वर म
दुनिया को हाथ जोड
कहना शुरू किया—
'बुद्ध के स्तूप म
मानव के सपने
गड गये, गाड गय !!
ईसा के पख सब
झड गये झाडे गये
सत्य की देवदासी-अँगिया

चाँदनी
सडको के पिछवाड टूटे फूटे दृश्यो म
स्पृश्यो अस्पृश्या मे
गन्दगी क कोने स नाल के झाग पर
बदमस्त कल्पना सी फैली थी रात भर
सेक्स के कष्टो क कवियो के काम सी।

क्रिसमस मे मशहूर जिन्दगी रात की
सडको का श्रीमान फिरगी ईमान
सुगन्धित किरनो म
फहराता है हृदय का कामाकुल मुनसान
रगीन चमकती चीजो के सुरभित
स्पर्शों मे पुलकित
शीशो की सुविशाल झाइयो म उद्दीप्त
चादनी दिल की
खूबसूरत अमरीकी मैगजीन पृष्ठो सी
खुली थी
अधनगी तनिमा क ओष्ठो सी
खुली थी
सफद अण्डरवेअर सी ब्रसिए सी
आधुनिक प्रतीको म फली थी
नगी सी नारियो के उघरे हुए अगो क
विभिन्न पोजो म नटी थी चादनी।
करफ्यू कही नही यहाँ ।।
पसन्दगी सन्दली।।
क्रिसमस म मशहूर रात की है जिन्दगी।

अजी यह चादनी भी बडी मसखरी है
तिमजिले की एक
खिडकी मे बिल्ली के सफद धब्बे सी
चमकती हुई वह
समेटकर हाथ-पाँव किसी की ताक म
चुपचाप बैठी है।
धीरे स उतरती है रास्तो पर
चढती है छतो पर
गैलरी म घूम और खपरैलो पर चढकर
पेडो की शाखो की सहायता से आँगन म उतरकर
कमरो म हलके पाव देखती है खोजती है
जाने क्या?
सडको क पडो क गुम्बदो पर चढ़कर

महल उलाँघकर, मुहल्ले पारकर
गलियों की गुहाओं में दबे-पाँव ख़ुफ़िया सुराग़ में
गुप्तचरी ताक में लगातार खोजती है
वह कौन
कन्धों पर अँधेरे के चिपकाता कौन है
भड़कीले पोस्टर,
लम्बे-चौड़े वर्ण और
बाँके-तिरछे घनघोर
लाल-नीले अक्षर !!

कोलतारी सड़क के बीचोबीच खड़ी हुई
गाँधी की मूर्ति पर बैठे हुए घुग्घू ने
एकाएक गला फाड़ गाना शुरू किया
हिचकी की ताल पर,
दुनिया की साँसों ने तब
मर जाना शुरू किया !!
टेलीफोन खम्भों पर थमे हुए तारों ने
सट्टे के ट्रक-काल-सुर में
भर्राना और झनझनाना शुरू किया
काला स्याह कनटोप पहने हुए
आसमान बाबा ने
संकट पहचान

[illegible]
बिम्ब-क्षेप करते हैं
अफ़सोसभरे गहरे दुखड़े
जिन्हें देख, जिन्हें सुन
किन्हीं अति-संस्कृत भूतों के गोल-गोल
मटकों-से चेहरों ने
नम्रता के घिघियाते स्वर में
दुनिया को हाथ जोड़
कहना शुरू किया—
"बुद्ध के स्तूप में
मानव के सपन
गड़ गये, गाड़े गये !!
ईसा के पंख सब
झड़ गये झाड़े गये
सत्य की देवदासी-अँगिया

उतारी गयी
उघारी गयी
सपनों की आँतें सब
चीरी गयीं, फाड़ी गयीं
बाक़ी सब खोल है
ज़िन्दगी में झोल है"

एकाएक गलियों का सिन्दूरी महाकार
भैरों का विकराल, खतरनाक ठहाका
जिससे कि अकस्मात्
चाँदनी के चेहरे पर धूल का परदा
गलियों की भूरी ख़ाक
हवाओं में लहराने लगी यों
कि और-और पगलायी
और-और नंगी हुई चाँदनी।

2

अँधियाले ताल के उस पार
नगर निहारता सा खड़ा है पहाड़ एक
लोहे की नभचुम्बी शिला का चबूतरा
लोहागी कहाता है।
जिसके भव्य शीर्ष पर
बड़ा भारी खँडहर।
खँडहर-ध्वंसों में बड़ा भारी पेड़ एक
जिसके घन तने एक
लिक्खे हैं प्रेमियों ने नाम प्रेमिकाओं के,
लोहागी में शहर से बहती हुई हवाएँ
दरख़्त में घुसकर
पत्तों से कहती हैं
फुसफुसाती कहती हैं
नगर की व्यथाएँ, समाजों की कथाएँ
मोर्चों की तड़प और मकानों के मोर्चे
मीटिंगों के मर्म-राग,
अंगारों से भरी हुई प्राणों की गर्म राख।

उस समय
गलियों की थाहों में बसी हुई छायाएँ
हिलीं कुछ
मद्धिम चाँदनी में कोई चल पड़ी दो
श्याम आकृतियाँ

भैरो के सिन्दूरी भयावने मुख पर
छरहरी झाइयाँ।
अँधेरे की थाहो म छुपे हुए प्रश्नो की थर-थर
आधी-पहचानी आधी-अनजानी चिन्ता
सहसा उभरकर, पसरकर, चढ़कर
गगन-कगूरो पर
बेकाबू चाँदनी के थरथराते पल्ले-सी उडती है
गुप्त विकलता
जिन्दगी की अकुलायी थाहो के अचल
उडते है हवा मे।
गलियो के आगे बढ,
बगल म लिये कुछ
मोटे-मोटे कागजो का पुलिन्दा,
लटकाये हाथ मे
डिब्बा एक टीन का,
डिब्बे मे धरे हुए लम्बी-सी कूँची एक,
नगे पैर जमाना
कहता—
'मैं पेन्टर।'
शहर है साथ-साथ
कहता—
'मैं कारीगर'
कहता है कारीगर
बरगद की गोल-गोल
हड्डियो की पत्तेदार
उलझनो के ढाँचे मे
लटकाओ पोस्टर
गलियो के अलमस्त
फकीरो के लहरदार
गीतो के तानो मे फहराओ
चिपकाओ पोस्टर।

मजे मे आते हुए पेन्टर ने हँसकर
कारीगर से कहा तब—
'हाँ, सही-सही जगह
पोस्टर लगे हैं।
लडके ही मजदूर
पढ़ेंगे ध्यान से
रास्ते मे खडे-खडे लोग-बाग
पढ़ेंगे जिन्दगी की झल्लाई हुई आग!'

प्यारे भाई ! कारीगर,
अगर खींच सकूँ मैं—
हड़ताली पोस्टर पढ़ते हुए लोगों की तसवीर
बड़ा मज़ा आयेगा।
कत्थई खपरैलों से उठते हुए
धुएँ के रंग में
आसमान-निलाई मिलायी जाय,
सुबह की किरनों में
रात्रि के गृह-दीप-प्रकाश की आशाएँ घोलकर
हिम्मतें लायी जायँ।
स्याहियों से आँख बने,
आँखों की पुतली में धधक की लाल-लाल
पाँख बने।
एकाग्र ध्यानभरी
आँखों की किरनें
पोस्टर पर गिरें—तब
कहो भाई, कैसा हो ?"
कारीगर ने साथी के कन्धे पर हाथ रख
कहा तब—
'मेरे भी करतब सुनो तुम,
धुएँ से कजलाये कोठे की भीत पर
बाँस की तीली की लेखनी से लिखी थी
राम-कथा व्यथा की
कि आज भी जो सत्य है,
लेकिन, भाई, कहाँ अब वक़्त है ! !
तसवीरें बनाने की
इच्छा अभी बाकी है,
ज़िन्दगी भूरी ही नहीं, वह खाकी है।'
ज़माने ने नगर के कन्धे पर हाथ रख
कह दिया साफ़-साफ़—
पैरों के नखों से या डण्डे की नोक से
धरती की धूल में भी रेखाएँ खींचकर
तसवीरें बनती हैं,
बशर्ते कि ज़िन्दगी के चित्र-सी
बनाने का चाव हो,
श्रद्धा हो, भाव हो।
कारीगर ने हँसकर बगल में खींचकर
पेन्टर से कहा—'भाई
चित्र बनाते वक़्त
सब स्वार्थ त्यागे जायँ,

अँधेरे से भरे हुए
ज़ीन की सीढ़ियाँ चढ़ती-उतरती जो
इच्छा है—अन्ध है,
ऊपर के कमरे सब अपने लिए बन्द हैं;
अपने लिए नहीं वे।'
ज़माने ने नगर से कहा—
यह ग़लत है, वह भ्रम है,
हमारा अधिकार सम्मिलित श्रम
और छीनने का दम है।
शायद है, ज़िन्दगी की, मन की
तसवीरें फ़िलहाल
नहीं बना पायेंगे
अलबत्ता पोस्टर हम लगा जायेंगे
हम धधकायेंगे।
मानो या मत मानो,
इस नाज़ुक घड़ी में
चन्द्र है, सविता है
पोस्टर ही कविता है!!
वेदना के रक्त से लिखे गये
लाल-नीले अक्षरों में झलकती
सृजन की नयी परछाइयाँ,
गलियों के कोनों में गूँजती है
भावी की झाइयाँ।
धड़कती छाती की प्यारभरी गरमी में
भाफ बने आँसू के
दुर्निवार अक्षर—
चटाख से लगी हुई
कारतूस गोली के धड़ाकों से टकरा
प्रतिरोधी कविता
बनते हैं पोस्टर
ज़माने के पैग़म्बर!!
आसमान थामते हैं कन्धों पर
हड़ताली पोस्टर,
कहते हैं—
आदमी की दर्दभरी गहरी पुकार सुन
जो दौड़ पड़ता है आदमी है वह भी,
जैसे तुम भी आदमी, वैसे मैं भी आदमी।
झुर्रीदार चेहरे पर छाये हुए,
पाताली अँधेरे,से आये हुए
ज़िन्दगी के तजुर्बात

जैसे तुम्हे मिले हैं
वैसे मुझे मिले है
जैसे तुम भी आदमी
वैसे मैं भी आदमी।
धरती का नीला पल्ला कांपता है
आसमान कांपता है
हृदय म करुणा की रिमझिम।
काली इस झडी म
विचारो की विक्षोभी तडित कराहती
क्रोध की गुहाओ का मुँह खोले
शक्ति के पहाड दहाडते
काली इस झडी म
वेदना की तडित् कराहती।
मदद के लिए अब
करुणा के रोगटो म सनसनाता
दौड पडता आदमी,
व आदमी के दौडने के साथ साथ
दौडता जहान
और दौड पडता आसमान ! !
मुहल्ले के मुहाने के उस पार
बहस छिडी हुई है,
पोस्टर पहने हुए
बरगद की शाखे ढीठ
पोस्टर धारण किये
भैरो की कडी पीठ,
भैरो और बरगद म बहस खडी हुई है।
जोरदार जिरह कि कितना समय लगेगा
सुबह *होगी* कब और
मुश्किल होगी दूर कब ! !

समय का कण-कण
गगन की कलिमा से
बूंद बूंद चू रहा
तडित् उजाला बन।

[सम्भावित रचनाकाल 1963 से 1962 तक। अन्तिम सशोधन 1962 मे। नागपुर-राजनाँदगाँव। विविधा, 1957, मे प्रकाशित। चाँद का मुंह टेढ़ा है मे इसका भिन्न अन्य पाठ सकलित]

कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं

कहने दो उन्हे जो यह कहते हैं—
'सफल जीवन बिताने मे हुए असमर्थ तुम !
तरक्की के गोल-गोल
घुमावदार चक्करदार
ऊपर बढते हुए जीने पर चढने की
चढते ही जाने की
उन्नति के बारे मे
तुम्हारी ही जहरीली
उपेक्षा के कारण, निरर्थक तुम, व्यर्थ तुम ! !'

कटी-कमर भीतो के पास खडे ढेरो और
ढूहो मे खडे हुए खम्भो के खँडहर मे
बियाबान फैली है पूनो की चाँदनी,
आँगन के पुराने-धुराने एक पेड पर ।
अजीब-सी होती है, चारो ओर
वीरान-वीरान महक सुनसानो की
पूनो की चाँदनी की धूलि की धुन्ध मे ।
वैसे ही लगता है, महसूस यह होता है
'उन्नति' के क्षेत्रो मे, 'प्रतिष्ठा' के क्षेत्रो मे
मानव की छाती की, आत्मा की, प्राणो की
सोधी गन्ध
कही नही, कही नही
पूनो की चाँदनी यह सही नही, सही नहीं;
केवल मनुष्यहीन वीरान क्षेत्रो मे
निर्जन प्रसारो पर
सिर्फ एक आँख स
'सफलता' की आँख से
दुनिया को निहारती फैली है
पूनो की चाँदनी ।
सूखे हुए कुओ पर झुके हुए झाडो मे
बैठे हुए घुग्घुओ व चमगादडो के हित
जगल के सियारो और
घनी-घनी छायाओ छिपे हुए
भूतो और प्रेतो तथा
पिशाचो और बेतालो के लिए ही—
मनुष्य के लिए नही—फैली यह
सफलता की, भद्रता की,

कीर्ति-यश-रेशम की पूनो की चाँदनी।

मुझको डर लगता है,
मैं भी तो सफलता के चन्द्र की छाया म
घुग्घू या सियार या
भूत नही कही बन जाऊँ।
उनको डर लगता है,
आशका होती है
कि हम भी जब हुए भूत
घुग्घू या सियार बने
तो अभी तक यही व्यक्ति
जिन्दा क्यो ?
उसकी वह विक्षोभी सम्पीडित आत्मा फिर
जीवित क्यो रहती है ?
मरकर जब भूत बने
उसकी वह आत्मा पिशाच जब बन जाये
तो नाचेंगे साथ-साथ सूखे हुए पथरीले झरनो के तीरो पर
सफलता के चन्द्र की छाया म अधीर हो।
इसीलिए,
इसीलिए,
उनका और मेरा यह विरोध
चिरन्तन है, नित्य है, सनातन है।
उनकी उस तथाकथित
जीवन-सफलता के
खपरैलो-छेदो से
खिडकी की दरारो से
आती जब किरणें हैं
तो सज्जन वे, वे लोग
अचम्भित होकर, उन दरारो को, छेदो को
बन्द कर देते हैं,
इसीलिए कि वे किरणें
उनके लेखे ही आज
कम्यूनिज़म है गुण्डागर्दी है' विरोध है,
जिसम छिपी है कही
मेरी बदमाशी भी।

मैं पुकारकर कहता हूँ—
'सुनो, मुननवालो!
पशुओं के राज्य म जो बियाबान जगल है
उसम खडा है घोर स्वार्थ का प्रभीमकाय

वरगद एक विकराल।
उसके विद्रूप शत
शाखा-व्यूहों निहित
पत्तों के घनीभूत जाले ह, जाने है।
तले म अँधेरा है, अँधेरा है घनघोर
वृक्ष के तने से चिपट
बैठा है, खडा है कोई
पिशाच एक ज़बर्दस्त मरी हुई आत्मा का,
वह तो रखवाला है
घुग्घू के, सियारो के, कुत्तो के स्वार्थों का।
और उस जगल म, वरगद के महाभीम
भयानक शरीर पर खिली हुई फैली है पूनो की चाँदनी
सफलता की, भद्रता की,
श्रेय-प्रेय-सत्य-शिव-सस्कृति की
खिलखिलाती पूनो की चाँदनी।
अगर कही सचमुच तुम
पहुँच ही वहाँ गये
तो घुग्घू बन जाओगे
सियार बन जाओगे।
आदमी कभी भी फिर
कही भी न मिलेगा तुम्हे।
पशुओं के राज्य मे
जो पूनो की चाँदनी है
नही वह तुम्हारे लिए
नही वह हमारे लिए।

तुम्हारे पास, हमारे पास,
सिर्फ एक चीज है—
ईमान का डण्डा है,
बुद्धि का बल्लम है,
अभय की गती है
हृदय की तगारी है—तसला है
नये-नये बनाने के लिए भवन
आत्मा के,
मनुष्य के,
हृदय की तगारी म ढोते हैं हमी लोग
जीवन की गीली और
महकती हुई मिट्टी को।
जीवन-मैदानो म
लक्ष्य के शिखरो पर

नये किले बनाने में
व्यस्त हैं हमी लोग
हमारा समाज यह जुटा ही रहता है।
पहाड़ी चट्टानों को
चढ़ान पर चढ़ाते हुए
हज़ारों भुजाओं से
ढकेलते हुए कि जब
पूरा शारीरिक ज़ोर
फुफ्फुस की पूरी साँस
छाती का पूरा दम
लगन के लक्षण-रूप
चेहरे हमारे जब
बिगड़-से जाते हैं—
सूरज देख लेता है
दिशाओं के कानों में कहता है—
दुर्गों के शिखर से
हमारे कन्धों पर चढ़
खड़े होनेवाले ये
दूरबीन लगाकर नहीं देखेंगे—
कि मंगल में क्या-क्या है !!
चन्द्रलोक छाया को मापकर
वहाँ के पहाड़ों की ऊँचाई नहीं नापेंगे,
वरन् स्वयं ही वे
विचरण करेंगे इन नये-नये लोकों में,
देश-काल-प्रकृति-सृष्टि-जेता ये।
इसलिए, अगर ये लोग
सड़क-छाप जीवन की धूल-धूप
मामूली रूप-रंग
लिये हुए होने से
तथाकथित 'सफलता' के
खच्चरों व टट्टुओं के द्वारा यदि
निरर्थक व महत्त्वहीन
करार दिये जाते हों
तो कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं।

सामाजिक महत्त्व की
गिलौरियाँ खाते हुए,
असत्य की कुर्सी पर
आराम से बैठे हुए,
मनुष्य की त्वचाओं का पहने हुए ओवरकोट,

बन्दरों व रीछों के सामने
नयी-नयी अदाओं से नाचकर
झुठाई की तालियाँ देने से, लेने से
सफलता के ताले ये खुलते हैं
बशर्ते कि इच्छा हो
सफलता की,
महत्त्वाकांक्षा हो
अपने भी बरामदे
में थोड़ा-सा फर्नीचर,
विलायती चमकदार
रखने की इच्छा हो
तो थोड़ी-सी सचाई में
बहुत-सी झुठाई घोल
सांस्कृतिक अदा से, अन्दाज़ से
अगर बात कर सको—
भले ही दिमाग़ में
खयालों के मरे हुए चूहे ही
क्यों न हों प्लेग के,
लेकिन, अगर कर सको
ऐसी जमी हुई ज़बान दराज़ी और
सचाई का अंग-भंग
करते हुए झूठ का
बारीक़ सूत कात सको
तो गतिरोध और कण्ठरोध
मार्गरोध कभी भी न होगा फिर
कटवा चुके हैं हम पूँछ सिर
तो तुम ही यों
हमसे दूर बाहर क्यों जाते हो ?

जवाब यह मेरा है,
जाकर उन्हें कह दो कि सफलता के जंग-खाये
तालों और कुंजियों
की दुकान है कबाड़ी की।
इतनी कहाँ फ़ुरसत हमें—
वक़्त नहीं मिलता है
कि दुकान पर जा सकें।
अहंकार समझो या
सुपीरियारिटी काम्पलेक्स
अथवा कुछ ऐसा ही
चाहो तो मान लो

लेकिन सच है यह
जीवन की तथाकथित
सफलता को पाने की
हमको फुरसत नही,
खाली नही हम लोग !!
बहुत बिज़ी हैं हम।
जाकर उन्हे कह दे कोई
पहुँचा दे यह जवाब,
और अगर फिर भी वे
करते हो हुज्जत तो
कह दो कि हमारी साँस
जिसमे है आजकल
के रुग्ण जब्त तौर-तरीकों की तरफ
जहरीली कड आहट
ज़रा-सा तुम पी लो तो
दवा का एक डोज़ समझ,
तुम्हारे दिमाग के
रोगाणु मर जायेगे
व शरीर मे मस्तिष्क म,
जबर्दस्त संवेदन-उत्तेजन
इतना कुछ हो लेगा
कि अकुलाते हुए ही, तुम
अँधेरे क धीमे को त्यागकर
उजाले के सुनहले मैदानो मे
भागते आओगे,
जाकर उन्हे कह दे कोई,
पहुँचा दे यह जवाब !!

[सम्भावित रचनाकाल 1954 स 1962 तक। अन्तिम सशोधन 196? मे। नागपुर-राजनांदगाँव। नयी दिशा मई 1955 म और काव्यधारा, 1955, मे प्रकाशित। भूरी भूरी खाक धूल म संकलित।]

एक प्रदीर्घ कविता

[1954 से 1962 तक लिखी जाती रही इस कविता की रचना और प्रकाशन की यात्रा अपने आप मे एक तिलिस्म है। इसके इस मौजूदा सम्पूर्ण रूप मे चार स्वत स लगनेवाली और उसा

प्रकाशित होनेवाली कविताएँ समाहित हैं—'एक प्रदीर्घ कविता का प्रास्ताविक,' 'इस
में', 'डूबता चाँद कब डूबेगा' और 'कल जो हमने चर्चा की थी'। इस बात का पता इन
ओं की मूल पाण्डुलिपि खोजते-खोजते और एक बड़ी लम्बी पाण्डुलिपि के प्रकाशन को
ो की जाँच करते करते चला। यद्यपि यह पूरी कविता अपने समग्र रूप म एक ही पाण्ड-
मे कवि के हस्तलेख मे उपलब्ध है, और उसी क्रम से यहाँ प्रस्तुत की जा रही है पर कवि
ा ही इसके विभिन्न अशो को अलग अलग समय, अलग अलग शीर्षको से कई पत्र-
ाओ मे प्रकाशित कराया। फलस्वरूप कविता का समग्र रूप एक तरह से दब गया और
को उसका आभास न मिल सका। सयोग से पाण्डुलिपि मे यद्यपि पूरी कविता का कोई
नही है, पर उसके तीन खण्डो के अलग अलग नाम दिये हुए है—'प्रास्ताविक' अथवा
ादीघ कविता का प्रास्ताविक', 'इस नगरी मे और 'उपसहार'। यहाँ प्रस्तुत कविता के
खण्ड इसी के अनुरूप हैं। साथ ही पूरी कविता का एक स्वतन्त्र शीर्षक 'एक प्रदीघ
ा' भी दिया जा रहा है।—स.]

1

स्वार्थों ने अब खूब खीचकर
गुलेल मारी बहुत दूर से।
मरे डाल पर नीलकण्ठ दल
पावन सकल्पो के कोकिल
मूर्छित होकर गिरे डाल स—
खटर-पटर ऊँचे भावो की सूखी झरबेरी म उलझे।
वह गुलेल का ककर सीधा घुसा किसी म
देह छेदकर,
मस्तक म घुसकर गुल कर दी
भीतर की रोशनी उसी ने।
स्याह मौत के व्यूह अँधेरे म य भूतपूर्व मन-प्राण
अतीत विचारो के बेचारे भटक गये है
विहग चर्म की खोल शेष है।
इनके चिकने प्राणातीत तना को लेकिन
अपने घर के कोने म भर,
कैंची लेकर पख कतरत बैठे हैं स्वार्थी कारीगर।
इनके रग बिरगे कोमल रोआ स अब
भडकीले भावो क ऊनी कोट बनेग,
नयी साडियाँ, शाल बनेंगी।
महीन रेशम फूलो की वरमाला बनगी
और नया वर
सस्कृति के आदर्शों का अब चुम्बन लेगा।
कोकिल-नीलकण्ठ के गहरे चीर कलेजे
नया लिवर-आइल निकलगा
जिससे स्वास्थ्य-तन्दुरुस्ती के गाल बनेग।

स्वार्थों ने अपन आँगन म
अब सुलगायी आग
धुएँ की लता बनायी,
शत सकल्प-विशेपो की शव्-राशि राशि वह
खायी नही, वहुत श्रद्धा स चिता वनायी।
फैला धुआँ
कि जिसकी भीपण वड आहट म
मुटेल चहरा
वरगद कोटर गाँठ बन गया,
गाँठो की दुहरी गठान सा
दिल का सारा ठाठ बन गया।
नित्य उपेक्षित तुलसी का
आँगन म फिर भी एक ठूठ था—
शुष्क छरहरी शाखा ने आमूल
हरहरा आग पकड ली।
पावन सकल्पा की गहरी
चिता भस्म भी खूव उडी अव
वे सिर पैर समीर हो गयी
सिर स पैरो भभूतिया है।
मुंह म नाक कान म घुसती बुरी हवा यह
सारा वातावरण अराजक भावो का वेचैन धुआँ है।

दम घुटता है
चीख घुटी जाती है
कैसी कठिन समस्या !!
सन्ध्या वेला—श्रद्धा की आरती कर तो कैस बोलो
सुनकर साँझ-आरती के गायनालाप स्वर की
सौ लहर
स्वार्थों के कुत्तो की उठती हैं उनस भी ऊँचा-ऊँची
सामूहिक रोन के आलापो की लहरें !!
मन्दिर वाहर, धूल धुन्ध म
बरगद पर पीपल पर उतरी
सूनी-सूनी घनी तमिस्रा।
अपन को चाहे सिकोड लूँ
फिर भी उनकी चौखट म फिट होना मुश्किल,
उनके फामूलो की जजीरो को पहने
इन नक्षत्रों-ब्रह्माण्डो का चलना मुश्किल !!
गये युगो से नये युगो तक
गुजर रहे पथ बीच भयानक खाई आयी
इस खाई क भयद अँधेरे म मर-खपकर

हमने अपने तन-मन की दृढ़ता के पत्थर—
ईंटों से, प्राणो के लोहे के गाडर से,
हृदय-रक्त-मस्तिष्क-रक्त
के गारे-चूने से, खाई पर भव्य बनाया
अति विशाल मजबूत एक पुल,
अपनी आत्मा की नींवों पर उसे दिया बल,
देह-प्राण के लोहे के स्तम्भो पर थामा,
बाँहो के लोहे की मेहराबो पर तनकर
जमकर, फैला प्रदीर्घ पुल वह,
चला रास्ता !!
इस रास्ते से गडबड सामानो के ठेले
लोकविरोधी लक्ष्यो की जीपें न जायेंगी।
वहाँ दूर से
नभ-रेखा पर कुहनी टेके
इस पुल को है देख रहा वह क्षितिज
कि जिसने
अच्छे-बुरे तजुर्बे कई ज़मानो के
सब अनुभव देखे !!
नभ की मेहराबो-सा सुन्दर
यह पुल टूट जायेगा क्या !!
देगा जो सही-सही उत्तर
वह स्वय एक मेहराब नयी
हो जायेगा पुल के नीचे
इसलिए, सोचकर उत्तर दो, प्यारे भाई,
सोचो ! सोचो !!

[इस अश स्वतन्त्र रूप से 'एक समस्या' शीर्षक से 'नया खून', 26 जनवरी, 1958, में प्रकाशित हुआ था, यद्यपि कवि ने पाण्डुलिपि मे इस अश को पहले 'प्रास्ताविक' शीर्षक दिया था। बाद मे इसी के सशोधित रूप को कवि ने 'एक प्रदीर्घ कविता का प्रास्ताविक' शीर्षक दिया जो इसी शीर्षक से 'भूरी भूरी खाक धूल' मे सकलित हुआ।—स०]

2

[कविता के इस खण्ड का आरम्भिक पहला अश 'इस नगरी मे' शीर्षक से 'नया खून', 15 अगस्त 1957, मे प्रकाशित हुआ था। बाद में यह खण्ड इसी शीर्षक से 'भूरी-भूरी खाक-धूल' में सकलित हुआ।—स०]

इस नगरी में चाँद नहीं है, सूर्य नहीं है, ज्वाल नहीं है
सिर्फ धुएँ के बादल-दल हैं
और धुआँते हुए पुराने हवामहल हैं
लाख-लाख घूमती चिनगारियाँ है मुतफन्नी

मानो घुमडे हुए धूम की वे चौकन्नी
लाल निगाहे,
देख रही है अपना मौका
कैसे गफलत मे औरो को रख, खोले अपनी उन्नति का
मुंदा झरोखा
छाये हुए धूम की मानो हजार आँखे
द्वेषभरी चिनगियाँ हजारो
जहरीली है
बहुल बडे सोचनवाले स्वार्थों की आँखे नीली पीली हैं
छोटे-बडे स्वार्थों की आँखे
अपने गड्ढो म दावे रखती है जबरन
आदर्शों के मृदुल मेमने
रक्तमयी बलि यहाँ सामने
दी जायेगी आसमान मे
छा जायेगा फिर आक्रन्दन
साँझ-सवेरा
काली स्याही के सागर मे डूब नहाया
फिर वह काला होकर फैला नभ-जालो म
वैसे कुछ लोगो क हिय मे नहा-नहाकर
ऊँचा मानव आदर्शों का रूप-स्वरूप
स्याह होता है
निर्णयकारी स्वार्थों के काले महलो मे।
पद की और प्रतिष्ठाओ की
अहकारमय निष्ठाओ की
उदर-शिश्न की द्वेषभरी यह क्षुधा-पिपासा
भू से नभ तक फैल रही है धुएँ-जैसी
या कि धुएँ का यह नभचुम्बी
बरगद एसा
जिसका गठियल तला खूब है
कन्धा चौडा, लेकिन जिसको
मस्तक अथवा भाल नही है
इस नगरी म चाँद नही है, सूर्य नही है
भीतर पावन ज्वाल नही है।
इस नगरी के प्रहरी पहने है धूएँ के लम्बे चोगे
साज़िश के कुहरे मे डूबी
ब्रह्मराक्षसो की छायाएँ
गाँधीजी की चप्पल पहन घूम रही है
छिपे-छिपे कुछ फौजी टापे
बूटों की भी गूँज रही है—
उनसे तुम क्या लोग-दोग !

इस नगरी क किल कँगूरे
पर बैठ है विभिन्न स्वार्थों के बन्दर लगूर
उनस तुम क्या लोग दोग !
बुद्धि खत्मकर शीश कटाकर
मात्र उदर न सिफ पेट न
मस्तकहीन कबन्ध घूमत है राहो पर
बड ठाठ स बटन होल म फूल लगाकर
अपन मानिक क य चाकर
घर बैठ आदश घोखते
इन लोगो न धोख देकर धोखे भोग
उनसे तुम क्या लोगे-दोगे !
इस नगरी क पेडो के कोटर-कोटर म
जगली पक्षी कण्ठो म म फूट रहे ह
एक दूसरे को गाली के गीत—सवेरे।
जहरीली निन्दा की ठुमरी—रात अँधेरे।
इस नगरी के सिद्धो जैस वृद्ध बरगदो
पेडो पर है
गिद्धो और उल्लुओ क उद्दण्ड बसर
जिनम चलती हाथापाई
पानीपत की छिडी लडाई
उनमे जब जब बीच-बचाव करानेवाली
कूटनीति की धनी गिलहरी
बन्दर-बाट न हो पायी है दुनिया सिहरी
जानवरो के पीरो ने तब
नय चुनाव करान को यो
गजवाय है सौ-सौ भोग
इस नगरी क प्रहरी पहने हैं धूएँ के लम्बे चोग।

इस नगरी म अच्छे-अच्छ
लोग हुए जाते हैं देखो
शैतानो के झबरे बच्च
(*एक ज़माने म जनता के आगन मे नगे खेले थे*
जन जन की पगडण्डी पर वे जन-मन के थ
किन्तु आज उनके चेहरे पर
विद्युत वज्र गिरानेवाले
बादल की कठोर छाया है।
तारक-मण्डल पार पुरानी
ठण्डकभरी सुदूर दूरियो की परछाइ
उनके मुख पर
नन्दन-वन की रूपाकारी

लन्दन-वन की फैली झाँईं उनके मुख पर
और आज उनके लोहे के चेहरे पर है
सोने का भरपूर मुलम्मा, कैसी लीला—
श्वेत वर्फ की टोपी पहने
हुआ हिमालय हर-एक टीला
पैरो से जन-धरती कुचली
स्वर्ग उन्ही ने सिर पर थामा।
दूरी है खाई है गहरी
पृथ्वी के पैरो मे लाल बिवाई गहरी
खाई-तट पर फौजी टापें
घूम रहे है अलगावो के
वर्दीधारी सौ-सौ प्रहरी
उस खाई के पार कोट, परकोटे ऊँचे
फिर उसके भी पार पुराना एक महल है
वहाँ पहुँचना रहा कभी भी नही सहल है
जन-बस्ती से दूर अकेली
ऐसी किसी गढी को पोता
नयी सफेदी से चमकाया, वार्निश दमका
बिजली दमकी।
रात-अँधेरे बियाबान मे
बाहर अँधियारी राहो पर
बाहर तिमिरभरे रस्ते पर
तारे चमके आसमान मे
उसी गढी के सबसे ऊँचे
कमरे मे बिजली का पीला बल्ब अकेला
एक अपार्थिव प्रकाश से वह रहा दुकेला
बाहर दिखता तिमिर-पथो पर
तम-पथ-यात्री
के दृग का आराम रोकता
सबसे ऊँची बिजली का वह पूर्ण-विराम
दमकता रहता अपने भीतर।
तिमिरभरे अलगावो की अति-दूर-दूरियो का वह धाम
चमकता रहता अपने भीतर
षड्यन्त्री मस्तक की अन्तर्मुखी चेतना-सा चिर-तत्पर
किसी भयकर सत्ता के प्रतीक का झाँसा
वैसे कल जो बीच हमारे
रहे आज वे बने
भयानक फन्दा-फाँसा !!)
अपने स्वार्थी मालिक की-सी सूरत लेकर
लम्बे-लम्बे बालोवाले एक बने हैं श्वान भयकर

आंधी आखें मूंदे बैठे
या चबूतरे पर जा लेटे
खूब उन्होने रखवाली की
कइयो के घर-बार उजाड
आँतें फाडी।
एक रीछ वन और दूसरे शूकर बनकर
स्वामी के घर के पिछवाडे नाच रहे है,
और, दूसरे बने हुए पिंजरे के तोते
स्वामी द्वारा रटी हुई
सिद्धान्तावलिया बाच रह हैं।
यह मालिक है या कोई अदृश्य जादूगर
अपन आँगन बाध दिया है बडो-बडो को
गधे बनाकर कई विरोधी
उसके रथ मे घोडे बनकर जुते हुए है
कई सत्य के शोधी वोधी
फिर भी उस वल्गाधारी के
सपनो म आती है मौतें दायें-बायें
ईर्ष्याभरी भीति के सौतें आशकाएँ
जितनी अब तक हत्याएँ की
उनकी छायाएँ भीतो पर
करती हैं अनुकृति-लीलाएँ
अथवा मटियाली बाढो मे
सागर-लहरो की डाढो मे
काली लपटी हुई
जीभ-सी ह्वेल निकलती ऊँची उठकर
आशका के स्याह कगारो खडे प्राण को खा जायेगी।
स्वप्नो मे अँधियारे जगल
को उखाडती आ जायगी काला हाथी रूप धारकर
मौत अकेली
सदियो के बुजुर्ग झाडो को
नभ-आच्छादी वृक्षाकारी पर्ण-पहाडो
को उखाडती भरमायेगी
प्राक्-इतिहासिक मैमथ रूप लिये आयेगी
तुमको पाकर मौत दुकेली।
भीम मृत्यु के काले हाथी
भीम मृत्यु के काले मैमथ
दगा दे सको अगर मृत्यु को
तो असत्य का युद्ध-लौह-रथ
कुछ आगे बढ़ जाये शायद
इसीलिए तुम पूजो युद्ध, मृत्यु को पूजो

भीतर चाहे जितना भय हो
भीतर मरने का संशय हो
लेकिन बाहर बतलाओ मत
रात अँधेरे मौत आय तो
उदर-शिश्न की भाषाओं से रँगे दिमाग़ों से तुम देखो
भय के काले मृत्यु-स्तन को
भूत-पिशाच-नाच के घुँघरू खनको, खनको !
अरे मृत्यु को चकमा देकर
ढूँढ़ा अपना भी फ़ार्मूला
और कि बहादुरी से चीखो, कैसा फाँसा, कैसा फाँसा
तब तक, तब तक
अगर कहीं भी ज़रा खड़क हो
चौंको, चौंको
अख़बारों में कविताओं में
मंचों पर से भौंको, भौंको
दु:स्वप्नों में देखा यदि तुम
नारों-गूँजी भरी ठसाठस
लम्बी सड़कें चली आ रही हों
लपेटने तुमको बरबस
चीखो, चीखो, 'फ़ायर-फ़ायर
गोली दाग़ो, गोले दाग़ो'
खद्दर वर्दी पहन प्यारे जनरल डायर
नौ सौ रुपये, हज़ार रुपये
मोटर-बँगला, चिलमन-चितवन, गद्दी-तकिये
कह दो—दूँगा, कह दो—दूँगा
मुझे बचाने की सेवाएँ तुमसे लूँगा
नेता, वक्ता, लेखक, शास्त्री
मेरे बनते हुए क़िलों के हैं सब मिस्त्री
सभी हमारी विविध शराबों भीग-भीते
तब तक सब पर, तब तक सब पर
तनी हुई हैं ये संगीनें
संगीनें हैं पीछे-पीछे
कँपते हुए कदम चलते हैं आगे-आगे
जबरन चढ़ा दिये जायेंगे।
सभी विरोधी चढ़ जायेंगे
ख़ास तौर से हमने जो बनवाये हैं वे
स्याह मौत के ख़ूनी ज़ीने
इन ज़ीनों के बनवाने में बहुत ख़र्च कर
इंजीनियर लगाये हमने
नये विश्वकर्मा कारीगर सच्चे-सच्चे

इस नगरी में अच्छे-अच्छे
लोग हुए जाते हैं देखो
शैतानों के झबरे बच्चे !

इस नगरी में कौरव क घर
वीर द्रोण की थकन भरी है भूरी भूरी
पीली है सूरत अनचाहों की सेवा म
कुन्ती-पुत्र कर्ण-कृप-सात्यकि की ग्रीवा म
कुत्ते की गर्दन का पट्टा,
दुखते हिय स भीष्माचार्यों की मजबूरी
कौरव के घर !!
गिनते हैं तिथि वार, प्रतीक्षाएँ दूनी हैं
कब आयगी, कब आयगी
अन्तिम पटाक्षेप की सन्ध्याएँ सिन्दूरी
भभूतिया है, श्याम-बैंगनी है, खूनी है
वही आखिरी साझ
धुआँती हुई विषैली नगरी जब यह बुझ जायगी।
तब तक जारी हैं
राहों के अँधियारे कोनों म
अपराधों के खूनी हमले,
उजियारे में चहर मानो
प्रफुल्ल आदर्शों के फूलोंवाले गमले !
इस नगरी के जीवन की अँधियारी गलियों
म जहरीले स्वार्थों की है कानाफूसी
शिकायतों के पित्तभरे शूकर ने तब तक
रीछों के कानों म अपनी बातें ठूंसी।
उधर, स्वार्थ की हलचल-हल्लों
म पैरों के तले अचानक
रौंदे गय अनेक शुभकर
इच्छाकाक्षाओं के प्यारे भोले बालक
अपनी उन्नति, अपना ठस्सा
स्वय प्रतिष्ठाओं की भगदड, हलचल-हल्ला
अधनग स्वार्थों न खोला
जघाओं स छाती पर स पूरा पल्ला।
वह है जीना देखा, जाओ !
एक एक सीढी पर
अँधियारी ऊँचाई का कामुक सवदन पाओ
नय वचना रूपों की वह स्वप्न-सजीली
नयी रोशनीभरी गैलरी
उन्नति और प्रतिष्ठाओं की झिलमिल चिलमन

जिसमे झाँक रही कोई सौन्दर्य-वल्लरी
उसमे तुमको नयी छूट है
(अब जीने पर देखो तो
देखो तो कितने
चप्पल के स्वर
टाप बूट की भी आहट है)
गहन स्वार्थ के कुण्डो मे
उद्दण्ड ज्वार-भाट के काँटेदार ठूँठ है।
मानो आत्मा हटी देह को खूब छूट दे
और देह भी हटी कि इच्छा की अखण्ड लौ
दीप्त रक्त की लाल-ज्योति-सी वह असग लौ
मन के किसी छुपे आले मे रात-रातभर
धुप-धुप करती हुई जल रही।
कीचड-मैदानो
गारे मे ज्यो भुतही ज्योति पल रही
जीवन के कीचड-मैदानो की रातो मे
वह हड्डी के पोलेपन मे बसा फास्फोरस
पोल व्यक्तित्वो मे गहरा अहकार बस
अहकार का फास्फोरस जल उठता है
पीला-पीला चचल होकर
जल्दी-जल्दी चप्पल के स्वर
तब शब्द बूट के
शीघ्र चढ-उतर करते हैं
जीनो की, जीनो-जीनो की जल्दी-जल्दी
दूसरी-तीसरी मजिल पर
बैठी उन्नति-महिला के गालो पर इनने रोली मल दी
वह महिला किसी अन्य की थी
इसने उनको चप्पल मारी
इसने उनको घूँसा मारा
हाँफने लगे अँधियारे मे खूनी हल्ले
है काँप रही हाथापाई यो जीवन-भर
इस नगरी के कौरव के घर।

[इस खण्ड का यहाँ से आगे का अश अन्त मे एक अतिरिक्त नये अश के साथ 'डूबता चाँद कब डूबेगा' शीर्षक से 'सकेत', 1956, में प्रकाशित हुआ यही परिवर्धित अश इसी शीर्षक से 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मे स्वतन्त्र कविता की भाँति सकलित हुआ। जो अतिरिक्त अश कवि ने 'डूबता चाँद डूबेगा' शीर्षक के अन्तर्गत जोडा, उसका आगे यथास्थान निर्देश किया गया है—स०]

अँधियारे मैदानो के इन सुनसानो मे
बिल्ली की, बाघो की आँखो-सी चमक रही

ये राग-द्वेष ईर्ष्या भय-मत्सर की आँखें
हरिया तूता की जहरीली नीली-नीली
ज्वाला कुत्सा की आँखो मे
ईर्ष्यारूपी औरत को मूँछ निकल आयी
इस द्वेष-पुरुष के दो हाथो
के चार और पजे निकले
मत्सर को ठस्सदार तेज दो बौद्धिक सीग निकल आय
स्वार्थी भावो की लाल-लाल
बेचैन चीटियो को सहसा
अब नय पख निकले-निकले
अँधियारे बिल म झाक रह
सर्पों की आँखे तेज हुई
अब अहकार उद्विग्न हुआ
मानव के सब कपडे उतार
वह रीछ एकदम नग्न हुआ
ठूँठो पर बैठे घुग्घू-दल
के नेत्रचक्र घूमन लगे
इस बियावान के नभ म सब
नक्षत्र वक्र घूमने लगे।
कुछ ऐसी चलने लगी हवा
अपनी अपराधी कन्या की चिन्ता मे माता-सी बेकल
उद्विग्न रात
के हाथो मे
अँधियारे नभ की राहो पर छूट गिरी
है गर्भपात की तेज हवा
बीमार समाजो की जा थी,
दुर्घटना से ज्वाला काँपी कन्दीलो म
अँधियारे कमरो की मद्धिम पीली लौ मे
जब नाच रही भीतो पर मुतही छायाएँ
आशका की
इन माँओ के गहरे कराहत गर्भों स
मृत बालक य कितन जन्मे
बीमार समाजो के घर म।
बीमार समाजो के घर म
जितने भी हल हैं प्रश्नो के
वे हल जीने के पूर्व मरे
इनके प्रेतो के आस-पास
दार्शनिक दुखों की गिद्ध-सभा
आँखो मे काल प्रश्नभरे बैठी गुमसुम
शोषण के वीर्य-बीज स अब जन्मे दुर्दम

वह इस रस्ते से उस रस्ते
वेचैन घूमता फिरता है
वह जहां जाय एकटक उस
भवितव्य घूरता फिरता है
प्रासाद हर्म्य म पागल हो
कमरे-कमरे म भाग रही
थर्राती हुई हवाएँ य
भयप्रद सवाद लिय आती
वह दुग गया वह किला गया
अपना प्रदश वह चला गया
आ गयी गन्ध जब विजय दृप्त नव जन-जन की
हो गयी अन्ध मति शोषण की
उसक मन की दीवारो पर चढता रहता
भय-आशका का काल सप बढता रहता
रात के तिमिर म सहसा वह
पयक-अक म प्यासा वह
कस की रजाई के नीच
उसकी पसली के पास सरकता रहता है
आशका के उस द्विजिह्व स डरकर जब
वह कस स्वय की छाया स
भयभीत सोचता—कैस
धोकर उसको सफद कर दू
काली छाया को खद्दर की
कोरी सफद चादर कर दू ।
उसक मन की गुम्बद म अब मैले मैल
आशका की छिपकलिया ने बच्चे पाले
उसको मालूम कि कौन व किनकी कोखो स
जीवन स जनमे सत्य करग उसका वध
उसको मालूम कि किनकी आत्मा से उपजे
ये सत्य ढहायगे भीतें जन शोक प्रद

उसको मरना होगा अपनी आख मीच
अत्याचारी जीवन क इस भीषण तरु के
फल सी सस्कृति क कडए गूलर म चचल
कीटो-स लोक विरोधी भावो की हलचल
मुरझायेगी फूटगे पापो के सौ क्षण
मृत्यु की अँधरी मौन गुहाओ मे भीषण ।

यह सोच हुआ पागल, बाहर-भीतर सिहरा
इसलिए कस के घण्टाघर
मे ठीक रात के बारह पर
बन्दूक थमा दानव-हाथो, अब दुर्जन ने बदला पहरा
बारूदी बादल गन्धभरे
अम्बर के बुर्ज डरे-सिहरे
बन्दूको के कुन्दो पर स्याह अँगूठो ने
लोहे के घोडे खडे किये
पिस्तौलो ने अपने-अपने मुँह बडे किये
अस्त्रो को पकडे कलाइयो की मोटी नस
हाँफने लगी
एकाग्र ध्यान के माथे पर
फिर उलझी रगे कसी उभरी
पर पैरो मे काँपने लगी।
लोहे के बूटो की टापें गूँजने लगी
अम्बर के हाथ-पैर फूले
काल की जडे सजने लगी

अपने ही कृत्यो डरी रीढ-हड्डी पिचपिची हुई,
मरे साँप के तन-सी वह लुचलुची हुई।।
अपने ही कृत्यो डरा कस फिर क्रुद्ध हुआ
काराएँ भर गयी जमाना क्षुब्ध हुआ
भीतर के तम से कारा के
बाहर का अन्धकार सिहरा
लेकिन कारा के भीतर भी
मानव का अन्तस्तल स्पन्दित
अपनी बलि की तैयारी मे
ये सौ गरीब जन आनन्दित
कारा के चौकीदार कुशल
दुखती ममता का पुलकित लेकर अन्तस्तल
चुपचाप फलो के बक्से मे
युग-वीर शिवाजी को भरते
जो वेश बदल जाता दक्षिण की ओर निकल
दिन-नभ के पलने से उतार रवि-राजपुत्र
ढाँककर साँवले कपडो मे
अम्बर की श्याम टोकरी मे ले जाती है
रजनी-रूपी पन्ना दाई रवि-राजपुत्र

इस नगरी से गुपचुप बाहर ले जाती है
अँधियारे म आँखो ओझल
पार्वत्य-पठारो मैदानो
घाटियो, उठानो-ढालो पर
ये चले जा रहे
इस नगरी के पार कई
जीवन के आत्मज सत्य नये।
रातो म लाल अलावो की
नाचती हुई ज्वालाओ म
मृदु-चमक रहे जन-जन मुख पर
आलोकित य विचार है अब
ऐस कुछ समाचार हैं अब
यह घटना बार-बार होगी
शोपण के बन्दीगृह जनम
जीवन की क्षिप्र-धार होगी
तममय हिम शैल शिलाओ के सुनसाना म
आँखा-ओझल
जल की टप-टप, जल की टप टप
द्रुत भागीरथी धार होगी
जिसके तट पर के खेतो पर
उस पास नगर म, गाँवो म
जीवन के अपन करघे पर
प्राणो का सूत लिये बुनकर
बुन रहे मस्तमौला कबीर
जन जन के हित नूतन चादर
इन बेहद क मैदानो म
दुर्दान्त ऐतिहासिक स्पन्दन
के लाल रक्त से लिखते तुलसीदास आज
अपनी पीडा की रामायण
उस रामायण की पीडा के आलोको को
अपने म भर मेरे साथी
रह-रह दूर-दूर बीहड म भी
बीहड के अन्धकार मे भी जब नही सूझ कुछ पडता
जब कण्ठ फाडकर नभचुम्बी
गीतो द्वारो वे एक दूसरे को अपना
खोया अस्तित्व जनाते हैं
अनुभव की दर्दभरी भीषण चट्टानो को
लक्ष्यो की पीडा की कुदाल मे खनते और खनाते हैं
तब हम भी अपने अनुभव के
साराशो को उन तक पहुँचाते हैं जिसमें

जिस पहुँचाने के द्वारा हम, सब साथी मिल
दण्डक वन में से लंका का पथ खोज निकाल सकें
धीरे-धीरे ही सही, बढ़ें उत्थानों में
अँधियारे मैदानों के इन सुनसानों में।

['दूधिया चाँद कब डूबेगा' शीर्षक से प्रकाशित कविता में जो अतिरिक्त अंश कवि ने जोड़ा था वह यहाँ से शुरू होता है।—सं०]

अँधियारे मैदानों के इन सुनसानों में
रात की शून्यताओं का गहरापन ओढ़े
ज्यादा मोटे, ज्यादा ऊँचे, ज्यादा ऐंठे
भारी-भरकम लगनेवाले
इन किले-कगूरों-छज्जों-गुम्बद-मीनारों
पर, क्षितिज-गुहा-माँद से निकल
तिरछा झपटा,
जो गंजी साफ-सफ़ेद खोपड़ीवाला चाँद
कुतर्की वह
सिर-फिरे किसी ज्यामितिशास्त्री-सा है।
नीले-पीले में घुले सफेद उजाले की
आड़ी-तिरछी लम्बी-चौड़ी
रेखाओं से
इन अन्धकार-नगरी की बढ़ी हुई
आकृति के खींच खड़े नक्शे
वह नये नमून बना रहा
उस वक्त हवाओं में अजीब थर्राहट-सी
मैं उसको सुनता हुआ,
बढ़ रहा हूँ आगे
चौराहे पर
प्राचीन किसी योद्धा की ऊँची स्फटिक मूर्ति,
जिस पर असग चमचमा रही है,
राख चाँदनी की अजीब
उस हिमीभूत सौन्दर्य-दीप्ति
में पुण्य-कीर्ति
की वह पाषाणी अभिव्यक्ति
कुछ हिली।
उस स्फटिक मूर्ति के पास
देखता हूँ कि चल रही साँस
मेरी उसकी।
वे होंठ हिले
वे होंठ हँसे

फिर देखा बहुत ध्यान से तब
भभके अक्षर । ।
वे लाल-लाल नीले-से स्वर
बाँके टेढ़े जो लटक रहे
उसके चबूतरे पर, धधके । ।

मेरी आँखो मे धूमकेतु नाचे,
उल्काओ की पंक्तियाँ काव्य बन गयी
घोषणा बनी । ।
चादनी निखर उठी
उस स्फटिक मूर्ति पर, उल्काओ पर
मेरे चेहरे पर । ।
पाषाण-मूर्ति के स्फटिक अधर
पर वक्र-स्मित
की रेखाएँ मुझको निहारती है
उन रेखाओ म सहमा मैं बँध जाता हूँ
मरे चेहरे पर नभोगन्धमय एक भव्यता-सी ।
धीरे-धीरे मैं कदम बढा
गलियो की ओर मुड़ा
पाता हूँ ज्वलत् शब्द-रेखा
दीवारो पर चाँदनी-धुंधलके म भभकी
वह कल होनेवाली घटनाओ की कविता
जी म उमगी । ।
तब अन्धकार-गलियो की
गहरी मुस्कराहट
के लम्ब गोल गर्त-टीले
मेरे पीले चेहरे पर सहसा उभर उठे । ।
यो हर्षोत्फुल्ल ताजगी ले
मैं घर मे घुसता हूँ कि तभी
सामने खडी स्त्री कहती है—
"अपनी छायाएँ सभी तरफ़
हिल-डोल-रही.

मुसकानो के आन्दोलन मे
बोलती नही, पर डोल रही
शब्दो की तीखी तडित्
नाच उठती, केवल प्रकाश-रेखा बनकर !
अपनी खिडकी से देख रहे हैं हम दोनो
डूबता चाद, कब डूबेगा ! !

['सकेत' 1956 में प्रकाशित तथा 'चांद का मुंह टेढ़ा है' मे सकलित कविता यहाँ समाप्त होती है ।—स०]

3

[यहाँ से आगे का खण्ड पूरी कविता की मूल पाण्डुलिपि मे 'उपसहार' शीर्षक के अन्तर्गत है । यही अश 'हस', अक्टूबर 1957 मे 'कल जो हमने चर्चा की थी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और फिर बाद में 'चांद का मुंह टेढ़ा है' में भी स्वतन्त्र कविता के रूप मे सकलित हुआ ।—स०]

कल जो हमने चर्चा की थी,
हिय की ऊष्मा के उफान-से निकल रहे थे
सही-सही बातो के उत्तर।
हम ज्वालामुखियो के मुंह मे उतर रहे थे।
जीवन की सच्चाई के स्तर,
सही बात के चौडे पत्थर,
तीव्र वेदना म कैसे गडगडा रहे थे,
इन ज्वालामुखियों के भीतर ! !

धरती के अन्तर मे कैसे चिटख चिटखकर
चट्टानी सिलसिले
जिन्दगी के तथ्यो के,
ज्वलन्त रस बन पिघल रह थे
बनकर अगारी रस-गगा—
हम ज्वालामुखियो के भीतर उतर रहे थे,
फिर भी कांपी न थी हमारी अक्षम जघा।

दैनिक जीवन की अपूर्णता के मैदानो
की जमीन के नीचे, ऊँचे-ऊँचे कोने
भीतर-भीतर धँस पहाड़ो के कन्धो के,
पहले कभी नही दिख पाये ! !
ज्ञात नही था हमे कि दृढता
की टेकडी उठी है भीतर
शीश उठाये।
जबर्दस्त ईमान-शिखर वे दायें-बायें

भीतर की गरमी के अगारो से पिघले;
दुर्निवार हो उठे कि
ज्ञान-सवेदन बनकर
यो अकुलाये,
हमको हर घर मे ले निकले,
हमको हर घर मे दे आये।
उनकी ज्वलन्त धारा मे हम
अपनी विवेक-यात्रा करते।।
कहता कौन कि फॉस्फोरस या
गन्धक, कार्बन, यूरेनियम वह
द्रवीभूत हो ज़हरीला है—
जब तक जन-मानव के घर में
पावन दीप-प्रकाश
पाप-क्षालन करता हो,
तब तक उस पावन दीपक का
गहरे से भी गहरा धूआँ सुरभीला है।

तब ज्वालामुखियो की वह
उद्दण्ड गडगडाहट भी मीठी,
जब कि पहाडो की चोटी से ज्वाला फूटी,
हम ज्वालामुखियो के जीवन के उद्गम मे
पहुँच चुके थे।
तब धरती की महानाडियाँ
इडा-*पिंगला* फडक रही थी,
और सुषुम्ना के अभ्यन्तर
उन अगारी प्राण-पथो पर
हम भी घूम रहे थे मानो।
निर्णय-निश्चय—
जीवन-सचय की कुण्डलिनी,
पृथ्वी के भीतर की ज्वालामयी कमलिनी की
विवेकमय पखुरियो पर
हम जा लेटे।

अभ्यन्तर के प्रबोधकारी अग्नि सरोवर
हमने देखे।
अगारी झीलें जन-मन के अन्तस्तल की
अपनी आँखो, हमने देखी।
अजुलि भर-भर
ज्ञान-सरोवर का जल पीकर,
हम उठने को थे कि सामने

हमने देखा—
युगान्तकारी आस्थाओं का
एक विशाल भव्य अक्षयवट,
उसके सचित-अनुभव-छाया-तले खड़ी है
स्वनामधन्या
वेगवान् पीड़ा की कन्या—
भव्य कर्म-निष्ठा जन-जन्या।
उसकी युगान्तकारी भौंहे हमने देखी—
मानो आसमान पर सहसा
किन्ही दृगो की कोई भौंहे दिखें, जमाना
खड़ा ठिठक, कुहनी पर मुँह रख,
रह जाये देखता अचानक प्यासा-प्यासा।
भौंहे मानो
अपने भीतर सजग एक भवितव्य
        अचानक तुम पहचानो।
यह पहचान कि जितनी गहरी
उतना-उतना चला निखरता
आत्म-बिम्ब-सा उसका तेजस्वी मुख-मण्डल।

वेगवान् पीड़ा की कन्या
भव्य कर्म-निष्ठा जन-जन्या
सीधी, सम्मुख, सहज खड़ी है,
सस्मित निर्विकार
मानो आनन्द खड़ा हो,
अपने भीतर बसा हुआ वह
सहसा बाहर आकर, सम्मुख चन्द्र खड़ा हो !!
हमने पूछा—(यद्यपि था मालूम)
'कौन हो तुम, उत्तर दो।'
उसने कहा—'सूर्य-कन्या मैं,
पृथ्वी के भीतर रहती हूँ,
उसके अन्तर मे विवेक का बहता है रस,
आत्मा का प्रतीक है सूरज !!
इस पृथ्वी के भीतर की रज
धातु बन गयी जन-अनुभव की।
कष्ट बन गये युगान्तकारी
सकल्पो के ज्वलन्त सरसिज !!
जन-जन के आँसू के द्रव का
मूल ओसजन, मूल उदजन,
यहाँ ज्वलन्त रश्मि-पुंजो मे
प्रक्षोभित जाज्वल्यमान है।

इस पृथ्वी की पीडाओ मे
घुले सूर्य का छोटा-सा कण
रवि-अन्तर के साक्षात्कारी क्षोभ-केन्द्र से सम्बन्धित है।
यहाँ हृदय-आलम्ब भाव सब
तीव्र ज्ञान-सवेदन के ही पूर्ण बिम्ब है।
ठीक सूर्य के मूल केन्द्र स उनका उद्गम।
उसको रोक सके यो कोई,
किसका दावा ?
ज्वालामुखियो से वे फूटे
तो उनको कहते हो लावा !!
लावा कहकर निन्दा करके
कोई उसको रोक न सकते,
वह भवितव्य अटल है, उसको
अँधियार म झाक न सकते।'

ज्वालामुखियो के अतलो मे
हमने अपनी आँखो देखी
विविध सूर्य झीले
प्रतिभा के प्राणामृत की।
(कल जो हमने चर्चा की थी)

इन झीलो मे मुग्ध खिली है
लाल पँखुरियाँ—
जन-अनुभव की कमल-श्रेणियाँ !!
उन्हे देख, मेरे अन्तर मे
जाग रही पावन त्रिवेणियाँ
आकाक्षामय भूत-भविष्यत्-वर्तमान की।
इन काक्षाओ की दहली पर,
भीतर के भैरवी-राग को सुनते हुए
काल का चरण रुका है !!
अपने पथ पर लाख-लाख पीडाएँ लेकर,
पृथ्वी घूम रही है नूतन-रश्मि-जाल म !!

इन्ही ज्वलन्त रश्मियो के सुविशाल
शामियाने मे हमने
तुमको अपने प्राण दिये औ' गले लगाया,
तुमसे आलिंगन कर
हमने जो-जो कहा
सभी वह रहा
अनन्तर सही,

तुमने भी तब उन तथ्यों की बाँह गही,
की खूब प्रशंसा।

देश-देश की इतिहासिक पीडाओं के उन सत्यों की
बातें की थीं,
कल जो हमने बात-बात में रातें की थीं।

[सम्भावित रचनाकाल 1954 से 1962 तक। नागपुर राजनांदगाँव। समग्र रूप से पहली बार यहाँ प्रकाशित]

ब्रह्मराक्षस

शहर के उस ओर खँडहर की तरफ
परित्यक्त सूनी बावड़ी
के भीतरी
ठण्डे अँधेरे में
बसी गहराइयाँ जल की···
सीढ़ियाँ डूबी अनेकों
उस पुरान घिरे पानी में··
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर
डालें खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औदुम्बर।
व शाखों पर
लटकते घुग्घुओं के घोंसले
परित्यक्त, भूरे, गोल।

विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गन्ध में बसकर
हवा में तैर
बनता है गहन सन्देह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो कि
दिल में एक खटके-सी लगी रहती।

बावडी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरी कुहनी टेक
बैठी है टगर
ले पुष्प-तारे-श्वेत ।

उसके पास
लाल फूलों का लहकता झौर—
मेरी वह कन्हेर···
वह बुलाती एक खतरे की तरफ जिस ओर
अँधियारा खुला मुँह बावडी का
शून्य अम्बर ताकता है ।

बावडी की उन घनी गहराइयों म शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमडती गूँज की भी गूँज,
बडबडाहट-शब्द पागल स ।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करन के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने—
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पजे, बराबर,
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ,
फिर भी मैल
फिर भी मैल !!

और · होठों से
अनोखा स्तोत्र, कोई क्रुद्ध मन्त्रोच्चार,
अथवा शुद्ध सस्कृत गालियों का ज्वार,
मस्तक की लकीरें
बुन रहीं
आलोचनाओं के चमकत तार !!
उस अखण्ड स्नान का पागल प्रवाह···
प्राण म सवेदना है स्याह !!

किन्तु, गहरी बावडी
की भीतरी दीवार पर

तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उडते हुए परमाणु, जब
तल तक पहुँचते हैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता है, सूर्य ने
झुककर 'नमस्ते' कर दिया।
पथ भूलकर जब चाँदनी
की किरन टकराय
कही दीवार पर,
तब ब्रह्मराक्षस समझता है
वन्दना की चाँदनी न
ज्ञान-गुरु माना उसे।

अति-प्रफुल्लित कण्टकित तन-मन वही
करता रहा अनुभव कि नभ न भी
विनत हो मान ली है श्रेष्ठता उसकी !!

और, तब दुगुन भयानक ओज से
पहचानवाला मन
सुमरी-बैबिलोनी जन-कथाओ से
मधुर वैदिक ऋचाओ तक
व तब से आज तक क सूत्र
छन्दस्, मन्त्र, थियोरम,
सब प्रमेयो तक
कि मार्क्स, एंजेल्स, रसल, टाएन्बी
कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गाँधी भी
सभी के सिद्ध-अन्तो का
नया व्याख्यान करता वह
नहाता ब्रह्मराक्षस, श्याम
प्राक्तन बावडी की
उन घनी गहराइयों म शून्य।

ये गरजती, गूँजती, आन्दोलिता
गहराइयो स उठ रही ध्वनियाँ, अत:
उद्भ्रान्त शब्दो के नय आवर्त म
हर शब्द निज प्रति शब्द को भी काटता,
वह रूप अपने विम्ब से ही जूझ
विकृताकार-कृति
है बन रहा
ध्वनि लड रही अपनी प्रतिध्वनि स यहाँ।

वावडी की इन मुँडेरो पर
मनोहर हरी कुहनी टेक सुनत ह
टगर क पुष्प-तारे श्वेत
वे ध्वनियाँ !
सुनत है करौंदी के सुकोमल फूल
सुनता ह उन्ह प्राचीन औदुम्बर
सुन रहा हूँ मैं वही
पागल प्रतीको म कही जाती हुइ
वह ट्रैजडी
जो वावडी म अड गयी।
×　　×　　×
खूब ऊँचा एक जीना साँवला
उसकी अँधेरी सीढ़ियाँ
व एक आभ्यन्तर निराल लाक की।
एक चढना औ उतरना
पुन चढना औ' लुढकना
मोच पैरो म
व छाती पर अनको घाव।
बुरे अच्छे बीच क सघप
से भी उग्रतर
अच्छे व उसम अधिक अच्छे बीच का सगर
गहन किंचित् सफलता
अति भव्य असफलता !!
अतिरेकवादी पूर्णता
की य व्यथाएँ बहुत प्यारी है
ज्यामितिक सगति गणित
की दृष्टि स कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचतन सूक्ष्म नैतिक भान
अतिरकवादी पूणता की तुष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी है !!

रवि निकलता
लाल चिन्ता की रुधिर सरिता
प्रवाहित कर दिवालो पर,
उदित होता चन्द्र
व्रण पर वाध देता
श्वेत-धौली पट्टियाँ
उद्विग्न भालो पर।

सितार आसमानी छोर पर फैले हुए
अनगिन दशमलव से
दशमलव बिन्दुओं के सवत
पसरे हुए उलझे गणित मैदान मे
मारा गया वह काम आया
और वह पसरा पडा है
वक्ष-बाँह खुली फली
एक शोधक की।

व्यक्तित्व वह कोमल स्फटिक प्रासाद सा
प्रासाद मे जीना
व जीने की अकेली सीढियाँ
चढना बहुत मुश्किल रहा।
वे भाव-सगत तर्क-सगत
कार्य सामजस्य-योजित
समीकरणो के गणित की सीढियाँ
हम छोड दे उसके लिए।
उस भाव-तर्क व कार्य सामजस्य योजन
शोध मे
सब पण्डितो सब चिन्तको के पास
वह गुरु प्राप्त करने के लिए
भटका !!

किन्तु युग बदला व आया कीर्ति व्यवसायी
लाभकारी कार्य मे से धन
व धन मे से हृदय मन
और धन-अभिभूत अन्त करण मे से
सत्य की झाइं
निरन्तर चिलचिलाती थी।

आत्मचेतस किन्तु इस
व्यक्तित्व मे थी प्राणमय अनबन
विश्वचेतस बे-बनाव !!
महत्ता के चरण मे था
विषादाकुल मन!
मेरा उसी से उन दिनो होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वय जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वय का मूल्य
उसकी महत्ता!
वह उस महत्ता का
हम सरीखो के लिए उपयोग

उस आन्तरिकता का व तातावरण में महत्व ! !

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजेडी है नीच ! !

बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ' मर गया...
वह सघन झाड़ी के कँटीले
तम-विवर में
मरे पक्षी-सा
विदा ही हो गया
वह ज्योति अनजानी सदा को सो गयी
यह क्यों हुआ !
क्यों यह हुआ ! !
मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य
होना चाहता
जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य,
उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक
पहुँचा सकूँ।

[सम्भावित रचनाकाल 1956 से 1962 तक। अन्तिम संशोधन 1962 में। नागपुर-राजनांदगाँव। कवि, अप्रैल 1957, में प्रकाशित। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित]

अँधेरे में

[यहाँ इस कविता का जो पाठ प्रस्तुत है वह 'कल्पना' तथा 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में प्रकाशित पाठों से भिन्न है और कवि द्वारा इन दोनों पाठों में किये गये संशोधनों पर आधारित पाण्डुलिपि के अनुसार है।—सं]

1

ज़िन्दगी के ...
कमरों में अँधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार;

आवाज़ पैरों की देती है सुनायी
बार-बार...बार-बार,
वह नही दीखता   नही ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलिस्मी खोह मे गिरफ्तार कोई एक,
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक
और, मेरे हृदय की धक धक
पूछती है—वह कौन
सुनायी जा देता, पर नही देता दिखायी !
इतने म अकस्मात् गिरते है भीत स
फूल हुए पलस्तर,
खिरती है चूनेभरी रेत
खिसकती हैं पपडियाँ इस तरह—
खुद-ब-खुद
कोई बडा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है
दृढ हनु,
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति ।
कौन वह दिखायी जो देता, पर
नही जाना जाता ! !
कौन मनु ?

बाहर शहर के, पहाडी के उस पार, तालाव
सब तरफ अँधेरा,
प्रशान्त जल,
पर, भीतर स उभरती है सहसा
सलिल के तम श्याम शीशे म कोई श्वेत आकृति
कुहरीला कोई बडा चहरा फैल जाता है
और मुसकाता है,
पहचान बताता है,
किन्तु, मैं हतप्रभ,
नही वह समझ म आता ।

अरे ! अरे ! !

तलाव के आस-पास, अँधेरे में वन-वृक्ष
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे, अचानक
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपटकर
चीख, एक दूसरे पर पटकती है सिर कि अकस्मात्
वृक्षों के अँधेरे मे छिपी हुई किसी एक
तिलिस्मी खोह का शिला-द्वार
खुलता है धड से

....

घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी,
अन्तराल-विवर के तम मे
लाल-लाल कुहरा,
कुहरे मे, सामने, रक्तालोक स्नात-पुरुष एक,
रहस्य साक्षात् ।।

तेजोप्रभावमय उसका ललाट देख,
मेरे अग-अग म अजीब एक थर-थर।
गौरवर्ण, दीप्त-दृग, सौम्यमुख
सम्भावित स्नेह-सा प्रिय रूप देखकर
विलक्षण शका,
भव्य आजानुभुज देखते ही साक्षात्
गहन एक सन्देह ।

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज-सम्भावनाओ, निहित प्रभाओ, प्रतिभाओ की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय मे रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा ।

किन्तु, वह फटे हुए वस्त्र क्यो पहने है ?
उसका स्वर्ण-वर्ण मुख मैला क्यो ?
वक्ष पर इतना बडा घाव कैसे हो गया ?
उसने कारावास-दु ख झेला क्यो ?
उसकी इतनी भयानक स्थिति क्यो है ?
रोटी उसे कौन पहुचाता है ?
कौन पानी देता है ?

फिर भी, उसके मुख पर स्मित क्यों है ?
प्रचण्ड शक्तिमान क्यो दिखायी देता है ?

प्रश्न थ गम्भीर, शायद खतरनाक भी,
इसीलिए बाहर क गुजान
जगलो से आती हुई हवा न
फूंक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी'
कि मुझको यो अँधेरे म पकडकर
मौत की सजा दी !
किसी काल 'डँश' की घनी काली पट्टी ही
आँखो पर बँध गयी,
किसी खडी पाई की सूली पर मैं टाँग दिया गया,
किसी शून्य बिन्दु के अँधियारे खड्डे म
गिरा दिया गया मैं
अचेतन स्थिति म !

2

सूनापन सिहरा
अँधेरे म ध्वनियो क बुलबुले उभरे,
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर, धँसाती हुई सिर,
छटपटा रही हैं शब्दो की लहरें
मीठी हैं दु:सह ! !
अरे, हाँ, साँकल ही रह-रह
बजती है द्वार पर।
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिए ही
बुलाता है, बुलाता है (हृदय को सहला
मानो किसी जटिल प्रसग मे सहसा
होठो पर होठ रख, कोई सच-सच बात
सीधे-सीधे कहने को तडप जाय, और फिर
वही बात सुनकर धँस जाय मेरा जो
इस तरह, साँकल ही रह-रह, बजती है द्वार पर)

आधी रात, इतन अँधेरे म, कौन आया मिलने ?
विमन प्रतीक्षातुर कुहरे म घिरा हुआ
द्युतिमय मुख—वह प्रमभरा चेहरा—
भोला-भाला भाव—
पहचानता हूँ बाहर जो खडा है ! !

यह वही व्यक्ति है, जी हाँ !
जो मुझे तिलिस्मी खोह में दिखा था।
अवसर-अनवसर
प्रकट जो होता ही रहता,
मेरी सुविधाओं का न तनिक खयालकर।
चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित,
चाहे जिस रूप में
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत;
इशारे से बताता है, समझाता रहता,
हृदय को देता है बिजली के झटके ! !
अरे, उसके चेहरे पर खिलती है सुबहें,
गालों पर चट्टानी चमक पठार की
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें,
उसे देख, प्यार उमडता है अनायास !
लगता है—दरवाज़ा खोलकर
बाँहों में कस लूँ,
हृदय में रख लूँ
घुल जाऊँ, मिल जाऊँ लिपटकर उससे।
परन्तु, भयानक खड्डे के अँधेरे में आहत
और क्षत-विक्षत, मैं पडा हुआ हूँ,
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूँ ज़रा भी
(यह भी तो सही है कि
कमज़ोरियों से ही मोह है मुझको)
इसीलिए, टालता हूँ उस मेरे प्रिय को
कतराता रहता,
डरता हूँ उससे।
वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक, खुरदरे कगार-तट पर,
शोचनीय स्थिति में ही छोड देता मुझको।
कहता है—'पार करो पर्वत-सन्धि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो।'
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा,
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से,
बजने दो साँकल ! !
उठने दो अँधेरे में ध्वनियों के बुलबुले,
वह जन · वैसे ही
आप चला जायेगा आया था जैसे।
खड्डे के अँधेरे में मैं पडा रहूँगा
पीडाएँ समेट ! !

क्या करूँ, क्या नहीं करूँ मुझे बताओ,
इस तम-शून्य में तैरती है जगत् समीक्षा
की हुई उसकी
(सह नहीं सकता)
विवेक विक्षोभ महान् उसका
तम अन्तराल में (सह नहीं सकता)
अँधियारे मुझमें द्युति-आकृति-सा
भविष्य का नक्शा दिया हुआ उसका
सह नहीं सकता!
नहीं, नहीं, उसको मैं छोड़ नहीं सकूँगा
सहना पड़े मुझे चाहे जो भले ही।
कमज़ोर घुटनों को बार-बार मसल
लड़खड़ाता हुआ मैं
उठता हूँ दरवाज़ा खोलने,
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोंछता हूँ हाथ से,
अँधेरे के ओर छोर टटोल-टटोलकर
बढ़ता हूँ आगे,
पैरों से महसूस करता हूँ धरती का फैलाव,
हाथों से महसूस करता हूँ दिशाएँ
साँसों से अनुभव करता हूँ दुनिया,
मस्तक अनुभव करता है आकाश,
दिल में तड़पता है अँधेरे का अन्दाज़,
आँखें ये तथ्य को सूँघती-सी लगतीं,
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी।
आत्मा में, भीषण
सत्-चित्-वेदना जल उठी, दहकी।
विचार हो गये विचरण-सहचर।
बढ़ता हूँ आगे,
चलता हूँ सँभल-सँभलकर,
द्वार टटोलता,
ज़ंग-खाया, जमा हुआ, ज़बरन
सिटकनी हिलाकर
ज़ोर लगा, दरवाज़ा खोलता,
झाँकता हूँ बाहर...

सूनी है राह, अजीब है फैलाव,
सर्द अँधेरा।
ढीली आँखों से देखते हैं विश्व
उदास तारे।

हर बार सोच और हर बार अफसोस
हर बार फिक्र
के कारण बढे हुए दर्द का मानो कि दूर वहाँ, दूर वहाँ
अँधियारा पीपल देता है पहरा।
हवाओ की नि मग लहरो म कांपती
कुत्तो की दूर-दूर अलग-अलग आवाज़,
टकराती रहती सियारो की ध्वनि स।
काँपती हैं दूरियाँ गूंजते हैं फासल
(बाहर कोई नही, कोई नही बाहर)

इतने मे अँधियारे सूने मे कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है
'वह चला गया है,
वह नही आयेगा आयेगा ही नही
अब तेरे द्वार पर।
वह निकल गया है गाँव म शहर म!
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर!
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक)
वह तेरी गुरु है
गुरु है'

3

समझ न पाया कि चल रहा स्वप्न या
जाग्रति शुरू है।
दिया जल रहा है
पीतालोक-प्रसार म काल गल रहा है
आस-पास फैली हुई जग-आकृतियाँ
लगती हैं छपी हुई जड चित्र कृतियो-सी
अलग व दूर-दूर
निर्जीव!!
यह सिविल लाइन्स है। मै अपन कमरे मे
यहाँ पडा हुआ हूँ।
आँख खुली हुई हैं,
पीटे गये बालक-सा मार खाया चहरा
उदास इकहरा,
सलेट-पट्टी पर खीची गयी तसवीर,
भूत-जैसी आकृति—

क्या वह मै हूँ ?
मैं हूँ ?

रात के दो हैं,
दूर-दूर जगल मे सियारो का हो-हो,
पास-पास आती हुई घहराती गूँजती
किसी रेलगाडी के पहियो की आवाज़ !!
किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयानक सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,
कही कोई रेल-एक्सीडेण्ट न हो जाय।
चिन्ता के गणित अक
आसमानी सलेट-पट्टी पर चमकते
खिडकी से दीखते।
....

हाय ! हाय ! तॉल्सतॉय
कैसे मुझे दीख गये
सितारा के बीच-बीच
घूमते व रुकते
पृथ्वी को देखते।

शायद, तॉल्सतॉय-नुमा
कोई वह आदमी
और है,
मेरे किसी भीतरी धागे का आखिरी छोर वह,
अनलिखे मेरे उपन्यास का
केन्द्रीय सवेदन
दबी हाय-हाय-नुमा,
शायद, तॉल्सतॉय-नुमा।

प्रोसेशन ?
निस्तब्ध नगर के मध्य-रात्रि-अँधेरे मे सुनसान
किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत तान-धुन,
मन्द-तार उच्च-निम्न स्वर-स्वन
उदास-उदास ध्वनि-तरगें हैं गम्भीर,
दीर्घ लहरियाँ !!

गैलरी मे जाता हूँ, देखता हूँ रास्ता
वह कोलतार-पथ अथवा

मरी हुई खिंची हुई कोई काली जिह्वा
विजली के द्युतिमान दिय या
मरे हुए दाँता का चमकदार नमूना !!

किन्तु, दूर सडक के उस छोर
शीतभरे थर्राते तारो के अँधियाले तल म
नील तेज-उद्भास
पास-पास पास-पास
आ रहा इस ओर !
दवी हुई गम्भीर स्वर-स्वप्न तरगें,
उदास तान-धुन शत-ध्वनि-सगम-सगीत
समीप आ रहा !!

और, अव
गैसलाइट पाँतो की विन्दुएँ छिटकी
वीचोवीच उनके
सावले जुलूस-सा क्या-कुछ दीखता !!

और अव
गैसलाइट निलाई म रँगे हुए अपार्थिव चेहरे,
वैण्ड-दल,
उनके पीछे काल-काले बलवान घोडो का जत्था
दीखता,
घना व डरावना अवचेतन ही
जुलूस म चलता।
क्या शोभा-यात्रा
किसी मृत्यु-दल की ?

अजीव !!
दोनो ओर, नीली-गैसलाइट-पाँत
चल रही, चल रही।
नीद मे खोये हुए शहर की गहन अवचेतना मे
हलचल (पाताली तल मे
चमकदार साँपो की उडती हुई लगातार
लकीरो की वारदात !!
सब सोये हुए हैं।
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा
रोमाचकारी यह जादुई करामात !!)

विचित्र प्रोसेशन,

गम्भीर विवक मार्च
कलाबत्तूवाली काली जरीदार ड्रेस पहने
चमकदार बैण्ड-दल—
अस्थि-रूप, यकृत-स्वरूप, उदर-आकृति
आँतो के जालो से उलझे हुए, बाजे वे दमकते हैं भयकर
गम्भीर गीत-स्वन-तरगे
ध्वनियो के आवर्त मँडराते पथ पर।
बैण्ड के लोगो के चेहरे
मिलते है मेरे देखे हुओ स,
लगता है उनमे कई प्रतिष्ठित पत्रकार
इसी नगर के !!
बडे-बडे नाम अरे, कैसे शामिल हो गये इस बैण्ड-दल मे !!
उनके पीछे चल रहा
सगीन-नोको का चमकता जगल,
चल रही पदचाप, तालबद्ध दीर्घ पाँत
टैंक-दल, मोर्टार, आर्टिलरी, सन्नद्ध,
धीरे-धीरे बढ रहा जुलूस भयावना,
सैनिको के पथराये चेहरे
चिढे हुए, झुलसे हुए, बिगडे हुए गहरे !
शायद, मैंने उन्हे पहले कही तो भी देखा था।
शायद, उनमे मेरे कई परिचित !!
उनके पीछे यह क्या !!
कैवलरी !!
काले-काले घोडो पर खाकी मिलिट्री ड्रेस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी-गेरुआ
आधा भाग कोलतारी भैरव,
भयानक !!
हाथो म चमचमाती सीधी खडी तलवार
आबदार !!
कन्धे से कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा।
कमर म, चमडे के कवर मे पिस्तौल,
रोषभरी एकाग्र दृष्टि मे धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल
कई और सेनापति सनाध्यक्ष
चेहरे वे मेरे जाने-बूझे-से लगते,
उनके चित्र समाचार-पत्रो मे छपे थे,
उनके लेख देखे थे,
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थी
भई वाह !
उनमे कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण

मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान्
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय !!
यहाँ ये दीखते हैं भूत पिशाच-काय ।
भीतर का राक्षसी-स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,
छुपे हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आये हैं,
यह शोभा-यात्रा है किसी मृत्यु-दल की ।

(विचारों की फिरकी
सिर में है घूमती ।)

इतने में प्रोसेशन में से कुछ मेरी ओर
आँखें उठीं रोषभर,
हृदय में मानो कि संगीन नोकें ही घुस पड़ीं बर्बर,
सड़क पर उठ खड़ा हो गया कोई शोर—
"मारो गोली, दागो स्साले को एकदम
दुनिया की नज़रों से हटकर
छुपे तरीक़े से
हम जा रहे थे कि
आधी रात अँधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खतम करो एकदम ।"

रास्ते पर भाग-दौड़ धका-पेल !!
गैलरी से भागा मैं पसीने से सराबोर !!

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-भिन्न
हो गये सब चित्र ।

जागते में फिर से याद आने लगा वह स्वप्न,
फिर से याद आने लगे अँधेरे में चेहरे,
और, तब मुझे प्रतीत हुआ भयानक
गहन मृतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलती,
परन्तु, दिन में
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यन्त्र

विभिन्न दफ्तरो-कार्यालयो, केन्द्रो मे, घरो मे।
हाय, हाय! मैंने उन्हे देख लिया नगा,
इसकी मुझे और सजा मिलेगी।

4

अकस्मात्
चार का गजर कही खडका,
मेरा दिल धडका,
उदास मटमैला मन रूपी वल्मीक
विचलित।
अगिनत काली-काली हायफन-डैशो की लकीरो की हलचल
सब ओर विखराव।
मैं अपने कमरे म यहाँ लेटा हुआ हूँ।
काले-काले शहतीर छत के
हृदय दबोचते।
यद्यपि आँगन मे नल ज़ोर मारता,
खूब खखारती पानी की धारा।
किन्तु, न शरीर मे बल है
अँधेरे मे गल रहा दिल यह।

एकाएक मुझे भान होता है जग का,
अखबारी दुनिया का फैलाव,
फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर,
पत्ते न खडकें
सेना ने घेर ली हैं सडकें।
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धकधक।
यह सब क्या है?
किसी जन-क्रान्ति के दमन निमित्त यह
मार्शल लॉ है!!

दम छोड रहे भाग गलियो मे मेरे पैर,
साँस लगी हुई है,
जमाने की जीभ निकल पडी है,
कोई मेरा पीछा कर रहा है लगातार।
भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड,
चौराहा दूर से ही दीखता,
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार
नहीं होगा फ़िलहाल।

दीखता है सामने ही अन्धकार स्तूप-सा
भयंकर बरगद—
सभी उपेक्षितों समस्त वंचितों,
ग़रीबों का वही घर वही छत
उसके ही तल खोह अँधेरे में सो रहे
गृहहीन कई प्राण।
अँधेरे में डूब गये
डालों में लटके जा मटमैले चिथड़े
किसी एक अति दीन
पागल के धन वे।
हाँ, वहाँ रहता है सिरफिरा कोई एक।

किन्तु, आज इस रात बात अजीब है!
वही जो सिरफिरा पागल क़तई था
आज एकाएक वह
जागरित बुद्धि है, प्रज्वलत्-धी है।
छाड सिरफिरापन,
बहुत ऊँचे गले से,
गा रहा कोई पद कोई गान
आत्मोद्बोधमय!!

खूब भई, खूब भई,
जानता क्या वह भी कि
सैनिक प्रशासन है नगर में वाक़ई!
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी!!

(करुण रसाल व हृदय के स्वर है
गद्यानुवाद यहाँ उनका दिया जा रहा)

' ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!
उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में क़नात से तन गये,
किसी व्यभिचार के बन गये बिस्तर,

दु:खों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना,
अपने ही ख़यालों में दिन-रात रहना,

असग बुद्धि व अकेले म सहना,
जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया !!

बताओ तो किस किस के लिए तुम दौड गय,
करुणा के दृश्यो स हाय ! मुँह मोड गय,
बन गय पत्थर,

बहुत बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवित रह गय तुम !!

लोकहित पिता को घर स निकाल दिया,
जन मन करुणा सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियर कुत्तो को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य   त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य   मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड दिया,
तर्कों के हाथ उखाड दिय,
जम गय, जाम हुए, फँस गये,
अपने ही कीचड मे धँस गये !!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल म
आदर्श खा गये।

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया, और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश अरे, जीवित रह गय तुम !!"

मेरा सिर गरम है,
इसीलिए भरम है।
सपनो म चलता है आलोचन,
विचारो के चित्रो की अवलि म चिन्तन।
निजत्व—भाफ है बेचैन,
क्या करूँ, किसस कहूँ,
कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन ?

वैदिक ऋषि शुन शेप के

शापभ्रष्ट पिता अजीगर्त समान ही
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ,
वही उसे अकस्मात् मिलता था रात में।
पागल था दिन म
सिरफिरा विक्षिप्त मस्तिष्क।

हाय, हाय !
उसने भी यह क्या गा दिया,
यह उसने क्या नया ला दिया,
प्रत्यक्ष,
मै खडा हो गया खुद ही के सामने
निज की ही घन छाया-मूर्ति-सा गहरा
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे।
छि पागलपन है,
वृथा आलोचन है।

गलियो मे अन्धकार भयावह···
मानो मेरे कारण ही लग गया
मार्शल लॉ वह,
मानो मेरी निष्क्रिय सज्ञा ने सकट बुलाया,
मानो मेरे कारण ही दुर्घट
हुई यह घटना।

चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओ घटनाओ का
बाहरी दुनिया म,
उतनी ही तेज़ी से भीतरी दुनिया म
चलता है द्वन्द्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है।
आज उस पागल ने मेरी चैन भुला दी,
मेरी नीद गँवा दी।

मैं इस बरगद के पास खडा हूँ।

मेरा यह चेहरा
धुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, साँवले जल से,
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरो के
तिमिर अतल से
धुलता है मन यह।

रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गम्भीर महान अस्तित्व
महकता है लगातार

किन्तु वे उद्यान कहाँ हैं,
अँधेरे म पता नही चलता।
मात्र सुगन्ध है सब ओर,
पर, उस महक-लहर म
कोई छुपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता
छटपटा रही है छटपटा रही है।

5

एकाएक मुझे भान !!
पीछे से किसी अजनबी ने
कन्धे पर रक्खा हाथ।
चौंकता मैं भयानक
एकाएक थरथर रेंग गयी सिर तक,
नही, नही। ऊपर स गिरकर
कन्धे पर बैठ गया बरगद-पात एक,
क्या वह सकेत, क्या वह इशारा ?
क्या वह चिट्ठी है किसी की ?
बरगद-आत्मा का पत्र है वह क्या ?
कौन-सा इगित ?

भागता मैं दम छोड,
घूम गया कई मोड !!
बन्दूक धाँय-धाँय
मकानो के ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गरुआ।
भागता मैं दम छोड
घूम गया कई मोड।
घूम गयी पृथ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर, किसी एक मुँदे हुए घर की
पत्थर-सीढी दिख गयी, उस पर
चुपचाप बैठ गया सिर पकडकर !!
दिमाग़ में चक्कर,
चक्कर · भँवरें
भँवरों के गोल-गोल केन्द्र म दीखा
स्वप्न सरीखा—

भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे
अँधियारी, एकान्त
प्राकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के साँवले तल म
तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर
तेजस्क्रिय रेडियो-एक्टिव रत्न भी बिखरे,
झरता है जिन पर प्रबल प्रपात एक ।
प्राकृत जल वह आवेगभरा है,
द्युतिमत् मणियो की अग्नियो पर से
फिसल फिसलकर बहती है लहरें,
लहरो के तल म स फूटती हैं किरनें,
रत्नो की रगीन रूपो की आभा
फूट निकलती
खोह की बेडौल भीते हे झिलमिल !।

पाता हूँ निज को खोह के भीतर,
विलुब्ध नेत्रो से देखता हूँ द्युतियाँ,
मणि तेजस्क्रिय हाथा म लेकर
विभोर आँखो से देखता हूँ उनको
पाता हूँ अकस्मात्
दीप्ति मे वलयित रत्न वे नही हैं
अनुभव, वेदना विवेक निष्कर्ष,
मेरे ही अपने यहाँ पडे हुए है
विचारो की रक्तिम अग्नि के मणि वे
प्राण-जल प्रपात मे घुलते हैं प्रतिपल
अकेले म किरणो की गीली है हलचल
गीली है झिलमिल !।

हाय हाय ! मैंने उन्हे गुहा वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वचित
जनोपयोग से वर्जित किया, और
निपिद्ध कर दिया
खोह मे डाल दिया !।
व खतरनाक थ
(बच्चे भीख माँगते) खैर
यह न समय है,
जूझना ही तय है ।

6

सीन बदलता है,

सुनसान चौराहा साँवला फैला,
बीच में वीरान गेरुआ घण्टाघर,
ऊपर कत्थई बुजुर्ग गुम्बद,
साँवली हवाओं में काल टहलता है।
रात में पीले हैं चार घड़ी-चेहरे,
मिनिट के काँटों की चार अलग गतियाँ
चार अलग कोण,
कि चार अलग सकत,
(मनस् में गतिमान चार अलग गतियाँ)
खम्भों पर बिजली की गर्दनें लटकीं,
शर्म से जलते हुए बल्बों के आस-पास
बेचैन खयालों के पखों के कीड़े
उड़ते हैं गोल-गोल
मचल-मचलकर।
घण्टाघर तले ही
पंखों के टुकड़े बीट व तिनके!
गुम्बद-विविर में बैठे हुए बूढ़े
असम्भव पक्षी
बहुत तेज नजरों से देखते हैं सब ओर,
मानो कि इरादे
भयानक चमकते।
सुनसान चौराहा,
बिखरी हैं गतियाँ, बिखरी है रफ्तार,
गश्त में घूमती है कोई दुष्ट इच्छा।
भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झोंक में
अँधेरे में सुलगाता सिगरेट अचानक
ताँबे-से चेहरे की ऐंठ झलकती।
पथरीली सलवट
दियासलाई की पल-भर लौ में
भयानक दीखती।
पर, उसके चेहरे का रंग बदलता है हर बार,
मानो अनपेक्षित कहीं न कुछ हो
जाने क्या हो जाय, जाने क्या हो जाय!!
वह ताक रहा है
संगीन-नोकों पर टिका हुआ
साँवला बन्दूक-जत्था
गोल त्रिकोण एक बनाये खड़ा जो
चौक के बीच में!!
एक ओर
टैंकों का दस्ता भी खड़े-खड़े ऊँघता,

परन्तु अडा है !!

भागता मै दम छोड,
घूम गया कई मोड।
भागती है चप्पल, चटपट आवाज
चाँटो-सी पडती।
पैरो के नीचे का कीच उछलकर
चेहरे पर, छाती पर पडता है सहसा,
ग्लानि की मतली।
गलियो का गोल-गोल खोह-अँधेरा
चेहरे पर, आँखो पर करता है हमला।
अजीब उमस-बास
गलियो का रुँधा हुआ उच्छ्वास।
भागता हूँ दम छोड,
घूम गया कई मोड।
धुँधले-से आकार कही-कही दीखते,
भय के ? या घर के ? कह नही सकता
आता है अकस्मात् कोलतार रास्ता
लम्बा व चौडा व स्याह व ठण्डा,
बेचैन आँखें ये देखती है सब ओर।
कही कोई नही है,
नही कही कोई भी।
श्याम आकाश मे, सकेत-भाषा-सी तारो की आँखे
चमचमा रही है।
मेरा दिल *ढिबरी-सा टिमटिमा रहा है।*
कोई मुझे खीचता है रास्ते के बीच ही।
जादू से बँधा हुआ चल पडा उस ओर।
सपाट सूने मे ऊँची-सी खडी जो
तिलक की पाषाण-मूर्ति है नि सग
स्तब्ध जडीभूत
देखता हूँ उसको परन्तु, ज्यो ही मै पास पहुँचता
पाषाण-पीठिका हिलती-सी लगती
अरे, अरे, यह क्या !!
कण-कण काँप रहे जिनमे से झरते
नीले 'इलेक्ट्रॉन'
सब ओर गिर रही चिनगियाँ नीली
मूर्ति के तन से झरते हैं अगार।
मुसकान पत्थरी होठो पर काँपी,
आँखो म बिजली के फूल सुलगते।

इतने म यह क्या !!
भव्य ललाट की नासिका म से
वह रहा खून न जाने कब से
लाल-लाल गरमीला रक्त टपकता
(खून के धब्बो से भरा अँगरखा)
मानो कि अतिशय चिन्ता के कारण
मस्तक-कोष ही फूट पडे सहसा
मस्तक रक्त ही वह उठा नासिका म से।
हाय, हाय, पित पित ओ,
चिन्ता म इतन न उलझो
हम अभी ज़िन्दा हैं ज़िन्दा,
चिन्ता क्या है !!
मैं उस पाषाण-मूर्ति के ठण्डे
पैरो को छाती से बरबस चिपका
रुआँसा-सा होता
देह म तन गये करुणा के काँटे
छाती पर, सिर पर, बाँहो पर मेरे
गिरती हैं नीली
बिजली की चिनगियाँ,
रक्त टपकता है हृदय म मेरे
आत्मा म बहता-सा लगता
खून का तालाब।
इतने म छाती के भीतर ठक-ठक
सिर म है धड-धड !! कट रही हड्डी !!
फिक्र जबर्दस्त !!
विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा
चल रहा बसूला
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर,
कोई बडा भारी हठ उठ खडा हुआ है।

इतने म आसमान काँपा व धाँय-धाँय
बन्दूक धडाका
बिजली की रफ्तार पैरो म घूम गयी।
खोहो-सी गलियो के अँधेरे म एक ओर
मैं थक बैठ गया,

[illegible]

सून म काँप रही, काँप रही दूर तक

कराहों की लहरों में पाशव प्राकृत
वेदना भयानक थरथरा रही है।

मैं उसे सुनने का करता हूँ यत्न
कि देखता क्या हूँ—
सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढ़कर
कोई एक, अपने
हाथ-पैर समेटे
काँप रहा, हिल रहा !! वह मर जायगा !!
इतने में वह सिर खोलता है सहसा
बाल बिखरते,
दीखते हैं कान कि
फिर मुँह खोलता है, वह कुछ
बुदबुदा रहा है,
किन्तु, मैं सुनता ही नहीं हूँ।
ध्यान से देखता हूँ—वह कोई परिचित,
जिसे खूब देखा था, निरखा था कई बार
पर, पाया नहीं था।
अरे हाँ, वह तो ··
विचार उठते ही दब गये
सोचने का साहस सब चला गया है।
वह मुख—अरे, वह मुख, वे गांधी जी !!
इस तरह पंगु !!
आश्चर्य !!
नहीं, नहीं, व जाँच-पड़ताल
सुराग़रसी-सी कुछ
करते हैं चुपचाप।
रूप बदलकर।

अँधेरे की स्याही में डूबे हुए देव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो जाता हूँ पास कि
बिजली का झटका
कहता है—"भाग जा, हट जा
हम हैं गुज़र गये ज़माने के चेहरे
आगे तू बढ़ जा।"
किन्तु, मैं देखा किया उस मुख को।
गम्भीर दृढ़ता की सलवटें वैसी ही,
शब्दों में गुरुता।

वे कह रहे हैं—
दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गा
यदि बाँग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा"
वे कह रहे हैं—
' मिट्टी के लोदे म किरणीले कण-कण
गुण हैं,
जनता के गुणो से ही सम्भव
भावी का उद्भव"
गम्भीर शब्द वे और आगे बढ गय,
जाने क्या कह गये !!
मैं अति उद्विग्न !

एकाएक उठ पडा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी।
नाक पर चश्मा, हाथ म डण्डा
कन्धे पर बोरा, बाँह म बच्चा।
आश्चर्य !! अद्भुत ! यह शिशु कैसे !!
मुसकरा उस द्युति-पुरुष ने कहा तब—
' मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था।
सँभालना इसको, सुरक्षित रखना"

मैं कुछ कहने को होता हूँ, इतने मे वहाँ पर
कही कोई नही है, कही कोई नही है।
और ज्यादा गहरा व और ज्यादा अकेला
अँधेरे का फैलाव !
बालक लिपटा है मेरे इस गल से चुपचाप,
छाती स कन्धे स चिपका है नन्हा-सा आकाश
स्पर्श है सुकुमार प्यारभरा कोमल,
किन्तु, है भार का गम्भीर अनुभव।
भावी की गन्ध और दूरियाँ अँधेरी,
आकाशी तारो को साथ लिये हुए मैं
चला जा रहा हूँ
घुसता ही जाता हूँ फासलो की खोहो की तहो म।

सहसा रो उठा कन्धे पर वह शिशु
अरे, अरे, वह स्वर अतिशय परिचित !!
पहले भी कई बार कही तो भी सुना था,

उसमे तो स्फोटक क्षोभ का आवेग,
गहरी है शिकायत
क्रोध भयकर।
मुझ डर यदि कोई वह स्वर सुन न।
हम दोनो फिर कही नही रह सकगे।
मैं पुचकारता हूँ बहुत दुलारता
समझान क लिए तब गाता हूँ गाने
अधभूली लोरी ही होठो स फूटती।
मै चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश
और-और चीखता है क्रोध स लगातार!!
गीने गील अगार टपकते है मुझ पर।

किन्तु न जान क्यो वहुत प्रसन्न हूँ।
(जिसको न मै इस जीवन म कर पाया
वह कर रहा है)
मै शिशु पीठ को थपथपा रहा हू
आत्मा है गीली।
पैर आगे बढ रहे मन आग जा रहा।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी सोच मे
हृदय की थाह म रक्त का तालाब
रक्त मे डूबी है द्युतिमान मणियाँ
रुधिर स फूट रही लाल लाल किरण
अनुभव रक्त मे डूबे है सकल्प
और ये सकल्प
चलते है साथ साथ।
अँधियारी गलियो म चला जा रहा हू।

इतने म पाता हूँ अधेरे म सहसा
कन्धे पर कुछ नही!! वह शिशु
चला गया जाने कहा
और अब उसके ही स्थान पर
मात्र हैं सूरजमुखी फूल गुच्छे।
उन स्वण पुष्पो से प्रकाश विकीरण
कन्धो पर सिर पर गालो पर तन पर
रास्ते पर फैले है किरणो के कण कण।
भई वाह यह खूब!!
इतने मे गली एक आ गयी और मै
दरवाजा खुला हुआ देखता।
जीना है अधेरा।

कही कोई ढिबरी सी टिमटिमा रही है।
मैं बढ रहा हूँ
कन्धो पर फूलो के लम्बे वे गुच्छे
क्या हुए, कहाँ गय ?
कन्धे क्यो वज़न से दुख रहे सहसा।
ओ हो !!
बन्दूक़ आ गयी
वाह वा !!
वज़नदार रायफ़ल,
भई खूब !!

खुला-खुला कमरा है साँवली हवा है,
झाँकते है खिडकी से, अँधेरे मे टँके हुए सितारे
फैली है बर्फीली साँस सी, वीरान
तितर बितर सब फैला है सामान।
बीच मे ही कोई ज़मीन पर पसरा,
फैलाये बाहे ढह पडा आखिर।
मैं देह के चेहरे पर फैलाता टॉर्च कि यह क्या—
खूनभरे बाल म उलझा है माथा,
भौहो के बीच म गोली का सूराख,
खून का परदा-सा गालों पर फैला
होठो पर सूखी है कत्थई धारा,
फूटा है चश्मा, नाक है सीधी,
ओफ्फो ! एकान्त प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हाँ,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था
गलियो के अँधेरे का, हृदय म भार था
पर, कार्य-क्षमता स वचित व्यक्तित्व
चलाता था अपना असग अस्तित्व।
सुकुमार मानवीय हृदयो के अपने
शुचितर विश्व के मात्र थे सपने।
स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जा
हलचल करता था रह-रह दिल म,
किसी को भी दे नही पाया था वह तो।
शून्य के जल मे डूब गया नीरव
हो नही पाया उपयोग उसका।
किन्तु न जाने किस झोक म क्या कर गुज़रा कि
सन्देहास्पद समझा गया और
मारा गया वह बधिको के हाथो।

मुक्ति का इच्छुक तृषार्त अन्तर
मुक्ति के यत्नों के साथ निरन्तर
सबका था प्यारा
अपने में द्युतिमान।
उसका यों वध हुआ
मर गया एक युग,
मर गया एक जीवनादर्श !!
इतने में मुझको ही चिढ़ाता है कोई।
सवाल है—मैं क्या करता था अब तक
भागता फिरता था सब ओर।
(फ़िजूल है इस वक्त कोसना खुद को)
एकदम ज़रूरी—दोस्तों को खोजूँ
पाऊँ मैं नये नये सहचर
सकमक सत चित् वेदना भास्वर !!

ज़ीने से उतरा
एकाएक विद्रूप रूपों से घिर गया सहसा
पकड़ मशीन सी
भयानक आकार घेरते हैं मुझको
मैं आततायी सत्ता के सम्मुख।

एकाएक हृदय धड़ककर रुक गया क्या हुआ !!
भयानक सनसनी।
पकड़कर कालर गला दबाया गया।
चाँटे से कनपटी टूटी कि यह क्या
त्वचा उखड़ गयी गाल की पूरी।
कान में भर गयी
भयानक अनहद-नाद की भन भन।
आँखों में तैरीं
रक्तिम तितलियाँ, चिनगियाँ नीली।
सामने उगते-डूबते धुँधले
कुहरिल वर्तुल
जिनका कि चक्रिल केन्द्र ही फैलता जाता
उस फैलाव में दीखते मुझको
धँस रहे, गिर रहे बड़े-बड़े टावर
घघराला धूआँ गेरुई ज्वाला।
हृदय में भगदड़—
सम्मुख दीखा
उजाड़ बंजर टीले पर सहसा
रो उठा कोई, रो रहा कोई

भागता कोई सहायता देने।
(अन्तर्तत्त्वों का पुनर्प्रबन्ध और पुनर्व्यवस्था
पुनर्गठन-सा होता जा रहा)

दृश्य ही बदला, चित्र बदल गया
जबरन ले जाया गया मैं गहरे
अँधियारे कमरे के स्याह सिफर में।
टूटे-से स्टूल पर बिठाया गया हूँ।
शीश की हड्डी जा रही तोडी।
लोहे की कील पर बडे हथौडे
पड रहे लगातार।
शीश का मोटा अस्थि-कवच ही निकाल डाला।
देखा जा रहा—
मस्तक-यन्त्र में कौन-से विचारों की कौन-सी उर्जा,
कौन-सी शिरा में कौन-सी धकधक,
कौन-सी रग में कौन सी फुरफुरी,
कहाँ है पश्यत्-कैमरा जिसमें
तथ्यों के जीवन दृश्य उतरते,
कहाँ-कहाँ सच्चे सपनों के आशय
कहाँ-कहाँ क्षोभक स्फोटक सामान!
भीतर कहीं पर गडे हुए गहरे
तलघर अन्दर
छुपे हुए छापाखाने को खोजो।
जहाँ कि चुपचाप खयालों के पर्चे
छपते रहते हैं (बाँटे जाते)
इस संस्था के मन्त्री को खोजो
शायद, उसका ही नाम हो आस्था,
कहाँ है सरगना इस टुकडी का
कहाँ है आत्मा?
(और, मैं सुनता हूँ चिढी हुई ऊँची
खिझलायी आवाज़)
स्क्रीनिंग करो   मिस्टर गुप्ता,
क्रास एक्जामिन हिम थॉरोली!!

चाबुक-चमकार
पीठ पर यद्यपि
उखडे चर्म की कत्थई-रक्तिम रेखाएँ उभरी
पर, यह आत्मा कुशल बहुत है,
देह में रेंग रही संवेदना के
झनझन तारों को जबरन

समेटकर सब वह
वेदना-विस्तार करके इकट्ठा
मेरा मन यह, ज़ोर लगाकर,
बलात् उनकी छोटी-सी कड़ढी
गठान बाँधता सख्त व मजबूत
मानो कि पत्थर।
ज़ोर लगाकर,
उसी गठान को हथेलियो से
करता है चूर-चूर,
धूल मे बिखरा देता है उसको।
मन यह हटता है देह की हद से
जाता है कही पर अलग जगत् मे।
विचित्र क्षण है,
सिर्फ हूँ जादू,
मात्र मैं बिजली
यद्यपि खोह म खूँटे स वँधा हूँ,
दैत्य है आस-पास
किन्तु मैं बहुत दूर मीलो के पार वहाँ
गिरता हूँ चुपचाप पत्र के रूप मे
किसी एक जेब मे
वह जेब ··
किसी एक फटे हुए मन की।

समस्वर, समताल,
सहानुभूति की सनसनी कोमल !!
हम कहाँ नही है,
सभी जगह मन।
निजता हमारी !
भीतर-भीतर बिजली के जीवित
तारो के जाले,
ज्वलन्त तारो की भीषण गुत्थी,
बाहर-बाहर धूल-सी भूरी
जमीन की पपड़ी।
अग्नि को लेकर मस्तक हिमवत्,
उग्र प्रभजन लेकर, उर यह
बिलकुल निश्चल।
भीषण शक्ति को धारण करके
आत्मा की पोशाक दीन व मैली।
विचित्र रूपो को धारण करके
चलता है जीवन, लक्ष्यो के पथ पर।

रिहा !!
छोड दिया गया !!
अब छाया-मुख कई करते हैं पीछा,
श्यामाकार न छोडते है मुझको,
जहाँ गया, जहाँ रुका, जहाँ चला, वहाँ पर
भौंहो के नीचे के रहस्यमय छेद
मारते हैं सगीन—
दृष्टि की पत्थरी चमक है पैनी।

मुझे अब खोजने होंगे साथी—
काले गुलाब व स्याह सिवन्ती,
श्याम चमेली,
सँवलाये कमल जो खोहो के जल मे,
भूमि के भीतर पाताल तल मे
खिले हुए कब से भेजते है सकेत
सुझाव-सन्देश भेजते रहते !!

इतने मे सहसा दूर क्षितिज पर
दीखते हैं मुझको
बिजली की नगी लताओ से झर रहे
सफ़ेद नीले मोतिया चम्पई फूल गुलाबी,
उठते हैं वही पर हाथ अकस्मात्
अग्नि के फूलो को समेटने लगते।
मैं उन्हे देखने लगता हूँ एकटक,
अचानक विचित्र स्फूर्ति से मैं भी
जमीन पर पडे हुए चमकीले पत्थर
लगातार चुनकर
बिजली के फूल बनाने की कोशिश
करता हूँ। रश्मि-विकीरण—
मेरे भी प्रस्तर करते है प्रतिक्षण।
तेजस्क्रिय मणि-रत्न रत्न हैं ये भी।
बिजली के फूलो की भाँति ही
यत्न हैं वे भी,
किन्तु, असन्तोष मुझको है गहरा,
शब्दाभिव्यक्ति—अभाव का सकेत।
काव्य-चमत्कार उतना ही रगीन
परन्तु, ठण्डा।
मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय, पर
अतिशय शीतल।
मुझको तो बेचैन बिजली की नीली

ज्वलन्त बाहो म बाहो को उलझा
करनी है उतनी ही प्रदीप्त लीला
आकाश-भर म साथ-साथ उसके घूमना है मुझको
मेरे पास न रग है बिजली का गोर कि
भीमाकार हूँ मेघ मैं काला
परन्तु, मुझमे है गम्भीर आवेश
अथाह प्रेरणास्रोत का सयम ।
अरे इन रगीन पत्थर-फूलो स मेरा
काम नही चलेगा !!
क्या कहूँ,
मस्तक-कुण्ड म जलती
सत्-चित्-वेदना—सचाई व गलती—
मस्तक-शिराओ मे तनाव दिन-रात ।

अब अभिव्यक्ति के सारे खनरे
उठाने ही होग ।
तोडने होग ही मठ और गढ सब ।
पहुँचाना होगा दुर्गम पहाडो क उस पार
तब कही दखने मिलेगी हमको
नीली झील की लहरीली थाह
जिसम कि प्रतिपल कापता रहता
अरुण कमल एक,
धँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल म ।
जादुई झील को करनी ही होगी मेरी प्रतीक्षा ।

7

चाद उग आया है
गलियो की आकाशी लम्बी-सी चीर म
तिरछी है किरणो की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीच
मिट्टी के गोल चबूतरे पर, नीली
चाँदनी म कोई दिया सुनहला
जलता है मानो कि स्वप्न ही साक्षात् ।
मकानो के बडे-बडे खँडहर जिनके कि सूने
मटियाले भागो मे खिलती ही रहती
महकती रातरानी फूलभरी जवानी मे लज्जित
तारो की टकटकी अच्छी न लगती ।

भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़,
टूटी हुई भीतों के उस पार कहीं पर
बहस गरम है
दिमाग मे जान हे, दिलों म दम है
सत्य से सत्ता के युद्ध का रग है,
पर, कमजोरियां सब मेरे सग हैं,
पाता हूँ सहसा—
अँधेरे की सुरग गलियो म चुपचाप
चलते हैं लोग बाग
दृढ-पद गम्भीर,
बालक युवागण
मन्द गति नीरव
किसी निज भीतरी बात म व्यस्त है,
कोई आग जल रही कहीं तो भी अन्तस्थ।

विचित्र अनुभव ! !
जितना मैं लोगों की पांतों को पारकर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे म रहता हूँ अकेला,
पश्चात पद हूँ।
पर, एक रेला और
पीछे से चला और
अब मेरे साथ है।
आश्चर्य ! ! अद्भुत ! !
लोगो की मुटि्ठयां बँधी ह।
उँगली सन्धि मे फूट रही किरने
लाल लाल,
यह क्या !!
मेरे ही विक्षोभ मणियो को लिय वे,
मेरे ही विवेक-रत्नो को लकर,
बढ रहे लोग अँधेरे म सोत्साह।
किन्तु मैं अकेला
बौद्धिक जुगाली म अपने स दुकेला।

गलियो के अँधेरे म मैं भाग रहा हूँ,
इतने म चुपचाप कोई एक
दे जाता पर्चा,
कोई गुप्त शक्ति
हृदय म चुपचाप करती है चर्चा !!

मैं बहुत ध्यान से पढ़ता हूँ उसको।
आश्चर्य !
उसम तो मेरे ही गुप्त विचार व
दबी हुई सवेदनाएँ व अनुभव
पीडाएँ जगमगा रही है।
यह सब क्या है !!

आसमान झाँकता है उन स्याह लकीरो के बीच बीच
वाक्यो की पाँतो मे आकाश-गगा-सी फैली
शब्दो के व्यूहो म झिलमिल नक्षत्र
और उन तारक दलो म तो खिलता है आगन
जिसम कि चम्पा के फूल चमकते
और उन पुष्पो के अन्तस्तल म
प्राण समस्या का कोई हल है।

पर्चा पढते हुए उडता हूँ हवा मे,
चक्रवात-गतियो मे घूमता हूँ नभ भर,
जमीन पर एक साथ
सर्वत्र सचेत उपस्थित।
प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मै काम मे,
प्रत्यक चौराहे, दुराहे व राहो के मोड पर
सडक पर खडा हूँ,
मनाता हूँ, मानता हूँ, मनवाता अडा हूँ !!

और तब दिक्काल दूरियाँ
अपने ही देश के नक्शे सी टँगी हुई
रँगी हुई लगती !!
स्वप्नो की कोमल किरनो का पानी
घनीभूत सघनित द्युतिमान
शिलाओ म परिणत,
ये सब दृढीभूत कर्म-शिलाएँ हैं
जिनस कि स्वप्नो की मूर्ति बनेगी
सस्मित सुखकर
जिसमे स उद्गत क्रियाशील किरनें
ब्रह्माण्ड भर मे नापेंगी सब कुछ !
सचमुच, मुझको तो जिन्दगी-सरहद
सूर्यो के प्रागण पार भी जाती-सी दीखती !!
मैं परिणत हूँ,
कविता मे कहन की आदत नही, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नही सकता।

पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को।

8

एकाएक हृदय धड़ककर रुक गया, क्या हुआ !!
नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान,
हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेश।
साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं,
साथ-साथ सोते हैं, खाते हैं, पीते हैं
जन मन-उद्देश्य !!
पथरीले चेहरों की खाकी ये कसी ड्रेस
घूमते हैं यन्त्रवत्,
वेपहचान-से लगते हैं वाकई
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी !!

सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं,
उनके खयाल से यह सब गप है
मात्र किंवदन्ती।
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल-बद्ध ये सब लोग
नपुंसक भोग शिरा-जालों में उलझे,
प्रश्न की उथली-सी पहचान
राह से अनजान
वाक् रुदन्ती।
चढ़ गया उर पर कहीं कोई निर्दयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

भव्याकार भवनों के विवरों में छिप गये
समाचार-पत्रों के पतियों के मुख स्थूल।
गढ़े जाते संवाद,
गढ़ी जाती समीक्षा,
गढ़ी जाती टिप्पणी जन मन-उर-शूल।
बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारों का उद्भास।
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं।

नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

धुएँ के ज़हरीले मेघों के नीचे ही हर बार
द्रुत निज विश्लेष गतियाँ,
एक सूक्ष्म पल में शत साक्षात्कार।
टूटते हैं धोखों से भरे हुए सपने।
रक्त में बहती हैं ज्ञान की किरनें
विश्व की मूर्ति की आत्मा ही ढल गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

राह के पत्थर-ढोकों के अन्दर
पहाड़ों के झरने
तड़पने लग गये।
मिट्टी के लोंदे के भीतर
भक्ति की *अग्नि का उद्रेक*
भड़कने लग गया।
धूल के कण में
अनहद नाद का कम्पन
खतरनाक ! !
मकानों की छत से
गाडर कूद पड़े
धम से !
घूम उठे खम्भे
भयानक वेग से चल पड़े हवा में।
दादा का सोटा भी करता है दाँव पेच,
गगन में नाच रही कक्का की लाठी।
यहाँ तक कि बच्चे की पेंम भी उड़ती,
तेज़ी से लहराती घूमती
मुन्ने की सलेट-पट्टी।
एक एक वस्तु या एक एक प्राणाग्नि-बम है,
ये परमास्त्र हैं, प्रक्षेपास्त्र हैं, यम हैं।
शून्याकाश में से होते हुए वे
अरे अरि पर ही टूट पड़े अनिवार।
यह कथा नहीं है यह सब सच है, हाँ भई ! !
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ! !

किसी एक बलवान तम श्याम लुहार ने बनाया
कण्डों का वर्तुल ज्वलन्त मण्डल।

स्वर्णिम कमलो की पाखुरी-जैसी ही
ज्वालाएँ उठती हैं उससे,
और उस गोल-गोल ज्वलन्त रेखा मे रक्खा
लोहे का चक्का
चिनगियाँ स्वर्णिम नीली व लाल-लाल
फूलो सी खिलती ।
कुछ बलवान जन साँवले मुख के
चढा रहे लकडी के चक्के पर जबरन
लाल-लाल लोहे की गोल-गोल पट्टी
घन मार घन मार,
उसी प्रकार अब
आत्मा क चक्के पर चढाया जा रहा
सकल्प शक्ति के लोहे का मजबूत
ज्वलन्त टायर ! !
अब युग बदला है वाकई,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ।

गेरुआ मौसम, उडते हैं अगार,
जगल जल रहे जिन्दगी के अब
जिनके कि ज्वलत् प्रकाशित भीषण
कूलो से बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल म
सचेत होकर सैकडो सदियाँ ज्वलन्त अपने
बिम्ब प्रसारित करती है प्रतिपल ।
वेदना-नदियाँ
जिनम कि डूबे हैं, युगानुयुग से
पिताओ की चिन्ता का उद्विग्न रग भी
विवेक-पीडा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिसमे श्रमिक का सन्ताप ।
माँओ के आँसू ।

मानो कि ज्वाला-पखुरी-दल म घिरे हुए वे सब
अग्नि-कमल के कन्द्र म बैठे ।
द्रुत वेग बहती है शक्तिया निश्चयी ।
कही आग लग गयी,
कही गोली चल गयी ! !

× × ×

एकाएक फिर स्वप्न-भग

नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

धुएँ के ज़हरीले मेघों के नीचे ही हर बार
द्रुत निज विश्लेष-गतियाँ,
एक सूक्ष्म पल में शत साक्षात्कार।
टूटते हैं धोखों में भरे हुए सपने।
रक्त में बहती है ज्ञान की किरनें
विश्व की मूर्ति की आत्मा ही ढल गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी।

राह के पत्थर-ढोकों के अन्दर
पहाड़ों के झरने
तड़पने लग गये।
मिट्टी के लोंदे के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भड़कने लग गया।
धूल के कण में
अनहद नाद का कम्पन
खतरनाक ! !
मकानों की छत से
गार्डर कूद पड़े
धम से !
घूम उठे खम्भे
भयानक वेग से चल पड़े हवा में।
दादा का सोंटा भी करता है दाँव-पेंच,
गगन में नाच रही कक्का की लाठी।
यहाँ तक कि बच्चे की पेंमे भी उड़ती,
तेज़ी से लहराती घूमती
मुन्ने की सलेट-पट्टी।
एक-एक वस्तु या एक-एक प्राणाग्नि-बम है,
ये परमास्त्र हैं, प्रक्षेपास्त्र हैं, यम हैं।
शून्याकाश में से होते हुए वे
अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार।
यह कथा नहीं है, यह सब सच है, हाँ भई ! !
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ! !

किसी एक बलवान तम-श्याम लुहार ने बनाया
कण्डों का वर्तुल ज्वलन्त मण्डल।

स्वर्णिम कमलों की पाँखुरी-जैसी ही
ज्वालाएँ उठती हैं उससे,
और उस गोल-गोल ज्वलन्त रेखा मे रक्खा
लोहे का चक्का
चिनगियाँ स्वर्णिम नीली व लाल-लाल
फूलो-सी खिलती।
कुछ बलवान जन सांवले मुख के
चढा रहे लकडी के चक्के पर जबरन
लाल-लाल लोहे की गोल-गोल पट्टी
घन मार घन मार,
उसी प्रकार अब
आत्मा के चक्के पर चढाया जा रहा
सकल्प-शक्ति के लोहे का मजबूत
ज्वलन्त टायर ! !
अब युग बदला है वाकई,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

गेरुआ मौसम, उडते हैं अगार,
जगल जल रहे जिन्दगी के अब
जिनके कि ज्वलत् प्रकाशित भीषण
कूलो स बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल मे
सचेत होकर सैंकडो सदियाँ ज्वलन्त अपने
बिम्ब प्रसारित करती हैं प्रतिपल।
वेदना-नदियाँ
जिनम कि डूबे हैं, युगानुयुग से
पिताओ की चिन्ता का उद्विग्न रग भी
विवेक-पीडा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिसम श्रमिक का सन्ताप।
माँओ के आँसू।
वह जल पीकर,
मेरे युवको मे व्यक्तित्वान्तर,
विभिन्न क्षेत्रो मे कई तरह स करते हैं सगर,
मानो कि ज्वाला-पखुरी-दल म घिरे हुए व सब
अग्नि-कमल के केन्द्र मे बैठे।
द्रुत-वेग बहती हैं शक्तियाँ निश्चयी।
कही आग लग गयी,
कही गोली चल गयी ! !
× × ×
एकाएक फिर स्वप्न-भग

नपुसक श्रद्धा
सडक के नीचे की गटर म छिप गयी,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

धुएँ क जहरीले मेघा के नीच ही हर बार
द्रुत निज विश्लप-गतियाँ,
एक सूक्ष्म पल म शत साक्षात्कार।
टूटत है धोखो स भरे हुए सपन।
रक्त म बहती है ज्ञान की किरने
विश्व की मूर्ति की आत्मा ही ढल गयी,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

राह के पत्थर-ढाको क अन्दर
पहाडो क झरन
तडपने लग गये।
मिट्टी के लादे के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भडकन लग गया।
धूल के कण म
अनहद नाद का कम्पन
खतरनाक ! !
मकानो की छत से
गाडर कूद पडे
धम से !
घूम उठे खम्भे
भयानक वेग स चल पडे हवा म।
दादा का सोटा भी करता है दाँव-पेंच,
गगन म नाच रही कक्का की लाठी।
यहाँ तक कि बच्चे की पेमे भी उडती,
तेजी स लहराती घूमती
मुन्ने की सलट-पट्टी।
एक-एक वस्तु या एक एक प्राणाग्नि-बम है,
ये परमास्त्र ह, प्रक्षपास्त्र है, यम हैं।
शून्याकाश म से होते हुए वे
अरे, अरि पर ही टूट पडे अनिवार।
यह कथा नही है, यह सब सच है, हाँ भई ! !
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी ! !

किसी एक बलवान तम श्याम लुहार ने बनाया
कण्डो का वर्तुल ज्वलन्त मण्डल।

स्वर्णिम कमलो की पाँखुरी-जैसी ही
ज्वालाएँ उठती हैं उससे,
और उस गोल-गोल ज्वलन्त रेखा मे रक्खा
लोहे का चक्का
• चिनगियाँ स्वर्णिम नीली व लाल-लाल
फूलो-सी खिलती।
कुछ बलवान जन साँवले मुख के
चढा रहे लकडी के चक्के पर जबरन
लाल-लाल लोहे की गोल-गोल पट्टी
घन मार घन मार,
उसी प्रकार अब
आत्मा के चक्के पर चढाया जा रहा
सकल्प-शक्ति के लोहे का मजबूत
ज्वलन्त टायर ! !
अब युग बदला है वाकई,
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी।

गेरुआ मौसम, उडते हैं अगार,
जगल जल रहे ज़िन्दगी के अब
जिनके कि ज्वलत् प्रकाशित भीषण
कूलो से बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल मे
सचेत होकर सैकडो सदियाँ ज्वलन्त अपने
बिम्ब प्रसारित करती हैं प्रतिपल।
वेदना-नदियाँ
जिनमे कि डूबे हैं, युगानुयुग से
पिताओ की चिन्ता का उद्विग्न रग भी
विवेक-पीडा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिसमे श्रमिक का सन्ताप।
माँओ के आँसू।
वह जल पीकर,
मेरे युवको मे व्यक्तित्वान्तर,
विभिन्न क्षेत्रो मे कई तरह से करते हैं सगर,
मानो कि ज्वाला-पखुरी-दल मे घिरे हुए वे सब
अग्नि-कमल के केन्द्र मे बैठे।
द्रुत-वेग बहती है शक्तियाँ निश्चयी।
कही आग लग गयी,
कही गोली चल गयी ! !
× × ×
एकाएक फिर स्वप्न-भग

बिखर गये चित्र कि मैं फिर अकेला।
मस्तिष्क-हृदय में गहरे व बारीक छेदों से भर गये।
पर, उन रध्रों के दुखों में गहरा
प्रदीप्त ज्योति का रस बस गया है।
मैं उन सपनों का खोजता हूँ आशय,
अर्थों की वेदना घिरती है मन म।
अजीब झमेला।
घूमता है मन उन भावों के घावों के आस-पास
आत्मा में चमकीली प्यास भर गयी है।
जग भर दीखती हैं सुनहली तसवीरें मुझको
मानो कि कल रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा
प्रेम कर लिया हो मनोहर मुख से
जीवन भर के लिए!!
मानो कि उस क्षण
अतिशय मृदु किन्हीं बाँहों ने आकर
कस लिया था मुझको
उस स्वप्न स्पर्श की, चुम्बन-घटना की याद आ रही है,
याद आ रही है!!
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी?

कमरे में सुबह की धूप आ गयी है,
गैलरी में फैला है सुनहला रवि-छोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी?
हाय! यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गयी क्योंकर?

सब ओर विद्युत्तरंगीय हलचल
चुम्बकीय आकर्षण।
प्रत्येक वस्तु का निज निज आलोक,
मानो कि अलग-अलग फूलों के रंगीन
अलग-अलग वातावरण हैं बेमाप,
प्रत्येक अर्थ की छाया में दूसरा, आशय
झिलमिला रहा-सा
डेस्क पर रखे हुए महान् ग्रन्थों के लेखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रेक्षक,
मेरे इस कमरे में आकाश उतरा,
मन यह गगन की वायु में सिहरा।
उठता हूँ, जाता हूँ, गैलरी म खडा हूँ।
एकाएक वह व्यक्ति
सामने

गलियों में, सड़कों पर, लोगों की भीड़ में
चला जा रहा है।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में।
धड़कता है दिल
कि पुकारने को खुलता है मुँह
कि अकस्मात्
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया किसी जन-यूथ में
उठी हुई बाँह यह उठी हुई रह गयी ! !

अन-खोजी निज समृद्धि का वह परम उत्कर्ष,
परम अभिव्यक्ति
मैं उसका शिष्य हूँ
वह मेरी गुरु है,
गुरु है ! !

वह मेरे पास कभी बैठा ही नहीं था,
वह मेरे पास कभी आया ही नहीं था,
तिलिस्मी खोह में देखा था एक बार,
आखिरी बार ही।
पर, वह जगत् की गलियों में घूमता है प्रतिपल
वह फटे-हाल रूप।
विद्युल्लहरिल वही गतिमयता,
उद्विग्न ज्ञान-तनाव वह
सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटे हाल रूप ! !
परम अभिव्यक्ति
अविरत घूमती है जग में
पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ
वह है।
इसीलिए मैं हर गली में
और हर सड़क पर
झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र,
व हर एक आत्मा का इतिहास,
हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक प्रक्रिया, क्रियागत परिणति ! !
खोजता हूँ पठार   पहाड़   समुन्दर

जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भवा।

[सम्भावित रचनाकाल 19 ›7 स 1962 तक। अन्तिम सशोधन 1962 म। नागपुर-राजनांदगांव। कल्पना, नवम्बर 1964, म 'आशका के द्वीप अँधेरे म' शीर्षक से प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** म सकलित]

चुप रहो मुझे सब कहने दो

खा जानेवाली आँखो से दखकर मुझे
उसने शब्दो की धार बहाना शुरू किया।
हतबुद्धि देखता हूँ उसमे
काला पानी चुपचाप चमकता है।
उसम से किरनो के भाल अनगिनत निकलत ह।
गन्दे थर साफ दीखते हैं
जिनम डूबा
वह चाँद थिरकता तिरता है
धीरे-धीरे!!
आखिर यह क्यो ऐसा क्यो है?
उज्ज्वल मन गहरे डूब रहे क्या गटरो म?
मैं लेकर एक उसाँस स्वय म घिरता हूँ।

वह कहता गया साँस लेकर—
"ओ घोर निराशा के अघोरपन्थी
तुम स्वय स्व-कल्पित एक किंवदन्ती
या म्यूनिसिपल लावारिस लाशो की काली-
काली मोटर ट्रक रोमहर्षयन्ती!!"

उसके कुहरीले फैलावो म से उड आती तसवीरे
उन तसवीरो के भीतर मैं उड जाता हूँ
उडते-उडते पाता कि सरहदे मेरी
घूम फैल जाती
सूने नीले ब्रह्माण्डो के उस पार और
मैं वहाँ दु ख की लाल अग्नि के जगल म

मारा फिरता
या कभी कभी सवेदित ज्ञान स्वप्न मण्डल
मे जाग्रत हो
चुपचाप डोलता फिरता हूँ
शनि के उस पार युरेनस के भी परे कही
नैपच्यून लाँघ प्लूटो के उन
अँधियारे बर्फिस्तानो म
तब वढी हुई दाढी मे मूरख लगता हूँ
भावुक होकर रो पडता हूँ
अपने शून्यो के रास्तो पर।
मेरे दु खो-आनन्दो का पृथ्वी स निस्सम्वन्ध
खटकता रहता है।

वह कहता था, मैं सुनता था,
आँखो मे चित्राकृतियाँ वनती मिटती थी
उन तसवीरो के भीतर के अवकाशो म
मैं उड जाता
मेरी सरहदें अनको ब्रह्माण्डो को घर फैल जाती
या एकाएक सिमटती थी
मुझम।
मैं कभी दु ख की लाल अग्नि के जगल म
मारा फिरता।
या कभी ज्ञान निर्वैयक्तिक देदीप्यमान
फूटता क्षितिज के कोन से
आनन्द गहन
मैं मात्र एक सवेदन की दिग्-व्यापी
लहरीली सत्ता।
कि इतने मे शून्य म किसी
श्रद्धास्पद शिखरो स धीमी-धीमी गड-गड
नील-नील कुछ ऊँचे ज्वालामुखी-शिखर
उनके भीतर के अन्ध उदर दीखे
जिनकी लहरीली नलिकाओ-सी दीर्घ गुहाओ म
अन्ध गुहाओ म
भटका फिरता
बिखराये बाल एक पागल
जो अवचेतन उत्तेजन म ही नाच-नाच उठता
शब्दो के बडे-बडे पत्थर
जोश स उठा
फेंकता ज़ोर म यो कि शिखर
वह गड-गड करता है,

वड-वड करता है,
पर, लोग जानते, वह भूकम्प न कर सकता
वह भूतपूर्व ज्वालामुखियो का रूपक है।
इसलिए, शिखर पर बना अग्नि-मन्दिर
उसके चबूतरे पर
शब्दो की छाया म
मित्रो की चलती जोरदार पिकनिक ! !

इतने मे समाचार मिलता—
वह आदर्शो का पर्वत है,
वह एक राष्ट्रपति—जिसके प्रागण म
है महत्-जनो का भोज हर्ष-वन म।
फिर, उसी राष्ट्रपति द्वारा ही अन्त मे
भव्य भाषण
परितृप्त उदर को
उपदेशात्मक प्रवचन है
अगले क्षण जिसको भूलना है।
भई वाह ! ! कहाँ से ये फोटो उतरे
उन महत्-जनो के मुझ पर छा जाते चेहरे
पीले-भूरे, चौकोर और श्यामल
गठियल दुहरे ! !
वे स्निग्ध, सुपोषित, सस्कृत मुख
अपने झूठे प्रतिबिम्ब गिराते हैं।
लाखो आँखो से उन्ह देखता रहता हूँ।
उनके स्वप्नो म घुसकर मुझ स्वप्न आते।

है बँधे खडे,
ये महत्, बृहत्
जिनके मुँह स प्रज्वलित गैस सी साँस-आग
वे इस जमीन म गडे खडे,
मशहूर करिश्मोवाले गहरे स्याह तिलिस्मी तेज बैल
तगडे-तगडे
अपने-अपने खूँटो से सारे बँधे खडे,
यह खूँटा स्वर्ण-धातु का है
रत्नाभ दीप्ति का है,
आत्मिक ज्योति का है,
स्वार्थिक प्रीति का है।

बस, इसीलिए जो कुछ भी उनने किया
धूल बन गया,

जो कुछ भी उनने छुआ
भूल बन गया,
देदीप्यमान रेडियम मनोहर भावों का
क्रमश. काले जड सीसे मे
परिवर्तित होता गया
कि वह प्रतिकूल बन गया
वे बडे-बडे पर्वत अँधियारे कुएँ बन गये
जो कल थे कपिला गाय आज तेंदुए बन गये।
हाय हाय, यह श्याम कथानक है
आदमी बदल जाने की यह प्रक्रिया भयानक है।

किसी अंगिरस, वशिष्ठ की स्थापित संस्था
मे एकाएक आलमारी पर टेबल कुर्सी पर
खुली खिडकियो मे से सहसा आ धमकी
पुच्छल सेना
है गजब चाँदमारी अजीब हाथो
हर रोज धडाके खतरनाक
किसको डाँटो, किसको निकाल दो, किसे रखो
किसको रोको
किसको पूछें, किससे जूझें !!
वे सब अच्छे, वे सब ओछे।

नैतिक शब्दावलि ?
मन्दिर-अन्तराल मे भी श्वानो का सम्मेलन
तो आत्मा के संगम का प्रश्न नही उठता
यह है यथार्थ की चित्रावलि।

बस इसीलिए
व्यक्तित्व-देह से धुआँ धुआँ—
तेलिया शनिश्चर-चित्र उठ खडा हुआ
उसने जिसको छू लिया
बदलकर वही
अपनी खुद की कड ुई
जलती बू-बास बना
क्या किया जाय
इस दुनिया की हड्डियाँ खोलकर भी
समस्या सुलझ नही सकती।
यह लाभ-लक्ष्य की अर्थवादिनी सत्ता की
अनिवार समस्या है।

इसलिए, जिन्दगी की गाडी
के चक्के शून्य अधर मे सिर्फ घूमते हैं,
रास्ता न जरा भर तै होता।
मंजिल ?
आदर्श लक्ष्य ?
वे मात्र किंवदन्ती
वे मात्र मनोरम दन्त-कथा
जिसके सूने महलो के दालानो कमरो
के अन्धकार मे एक
बडे सिर का बालक
कुछ पाने लाने दौड रहा हाँफता हुआ।
भोले-भाले ये सभी हाँफते हुए दौडते है
ये पाँव शून्य मे चलते है
आकाश काटते वही वही
हाँ, वही वही ! !
इस भीषण अप्राकृतिक जगत मे तुम जागे
इस वस्तुस्थिति से सामंजस्य-यत्न
जितना भी अधिक किया
इस जग को और-और ज्यादा अजीब पाया
जिसमे तुम और-और ज्यादा अजनबी बने
अपने को बदनसीब पाया।
जितनी ही अधिक मित्रता की
उतनी ही अधिकाधिक शत्रुता रखी
अपने ही से।
अपने से जुदा हुए
निज की छाया दो भागो मे बँट गयी
अपना सिर अलग-अलग दो एंगल मे तन गया
हाथो के भीतर से फूटे दो नये हाथ
उग आये नये अजनबी पंजे खतरनाक
जीने के लिए स्वयं से पृथक् भिन्न होकर
तुम किसी जिन्न की छोटी खटिया पर
अपने को उसकी बराबरी मे करने
सही सही लेटने
निज के से ज्यादा लम्बे पैर
काट डाले
अपने ही ज्यादा लम्बे हाथ
छाँट डाले।
जब पहना बण्डा कोट अजीबोग़रीब
पैण्ट भी तंग
वह रूप-रंग देखकर

हास्यास्पद अपने को तुम खुद मसखरे दिखे
आश्चर्य कि अन्यो का तुम खरे दिखे उस समय
सुन्दर, तीखे, कुशाग्र दीखे ।
अस्तित्व मात्र की रक्षा की इस उलझन पर
तब आत्म ग्लानि की लहर न क्योकर फूट पडे ।
फिर आत्म व्यर्थता भाव नही क्योकर उमडे
फिर क्यो न रहे अस्तित्व
भीति से ग्रस्त
और फिर क्यो न बने जिन्दगी
दुश्चिन्ता की फैण्टेसी
तब क्यो न यहाँ जिन्दापन
अनसधा अनफला थका इरादा हो
दिलभरे खयालो का बारीक बुरादा हो ।

तब क्यो न दिखे काला काला फैलाव दूरियो का
सिर पर
लहराता स्याह सिफर इस ओर उस हाथ !!
गम्भीर
तुम्हारा चहरा—गोल स्याह धब्बा
जो चला हमेशा साथ, हमेशा साथ ।
तुम किसी भयकर उपग्रह के
टेकडी-शीश पर खडे-खडे
आपस मे ही कट मरे
या कि निज से खूनाखून लडे ।

काली सूनी उस अन्तरिक्ष-शैया
पर लेटा है निश्चिन्त
भयानक विचित्र
है वह कौन !!
हाँ, नि सग विराट्
ले रहा भीषण खर्राटे
तुम सन्नाकर सुन रहे भयानक सन्नाटा !!
हाँ, वही शून्य का जोर
तुम्हारी वर्तमानता का वह अद्भुत शोर
अनहद नाद !!
जिसको सुनकर किस तरफ न जाने,
कहाँ बढे
अपने भीतर तुम स्वय सुई से गडे-अडे !
इसलिए, सभी से चिढ़े चिढ़े
भीतर है एक अजब अटकाव,

कहाँ है ठौर, कहाँ है गाँव !!

थर्राता रहता अजीब बे-सरहद बर्फीला जाडा
वह दुष्ट ब्रह्म कर रहा ज़बर्दस्ती वसूल
हमसे तुमसे
यह मास-किराया
कष्ट-रक्त-भाडा
धरती पर रहने का।
अब किससे टटा करो, कहाँ अब जावू
(अपनो से ऐंठा करो)
ज़िन्दगी एक कबाडा है,
भूतो का बाडा है।
सच तो यह है
तुमम जो भी अच्छा था सब सड गया
इसलिए तरक्की कर वह कुर्सी पर चढ़ गया
इस ज़िन्देपन का गन्दापन
चढ गया धडकते दिल पर वह
चमडे की मोटी परतो-सा मढ गया !
क्या किया !!
जब रन्दे और बसूले से खुद को छीला
तब अपना खून पिया।
इसलिए, अनाशा की गहरी शैम्पेन
विनाशक नशा
स्वय के गहन बोध की देन
ज़हरीला दु ख वहा
अपना ही खून पिया।

तुम खूब करो विश्लेषण जग का जीवन का
और डूब मरो
नि सग बुद्धि अँधियारे मे चलती है
उसको चलने दो
और ऊब मरो।
तुम करो आत्म-साक्षात्कार यह सम्भव है
पर, निज चरित्र-साक्षात्कार ही दुर्लभ है
चिन्तन की शक्ति और चित्रण का शिल्प लिये
तुम खूब मरो।

जितने आगे, जितने ऊँचे, जितने ऊपर
उतने-उतने तुम किसी पार के परे
परे के किसी पार के परली तरफ

पराये हो
फासलो बीच खोये
अपने कन्धो पर बोझ बने
पृथ्वी पर भारभूत छाये।

अनगिनत धडकती हुई छातियो को
चढने की सीढियाँ समझ
रख वज्र-कठोर पैर तुम चढते चले गये
अँधियारा जीना उन्नति का
पर, उसके काले रेलिंग पर
पलभर आँखे गीली करनी चाही
इसलिए कि खुद ही जुदा हुए
उन अपनो से
वे अपने जो
अवचेतन करुणा बनकर मन मे रहते है।
तब अनुपयोग मे विवेक
डाला फेंक
अटाले मे
जिन्दा उलझन बन जिये तडपते हुए घुटाले मे।

हाँ, इसीलिए,
तुम उठते हो अँधियारे मे
भीतर के कमरे का सब फर्श खोदते हो,
उस भूमि-विवर के अतल अँधेरे मे रखते
सुन्दर सस्मित मूर्तियाँ सुकोमल भावो की
जो प्राप्त हुई थी सहसा जीवन-यात्रा मे।
फिर, मिट्टी से वह गडढा पूर, एक-सा कर
सारी जमीन, छाबते उसे।
पत्थर का फर्श जमा देते हो उस पर फिर।
फिर, ठीक उसी गड्ढे पर पलँग डाल लेटते
बदलते रहते हो करवटे।
मूर्तियाँ भूमि मे गडी-धँसी
पर, धडकन मे आ फँसी ! !
अपनी खुद की मातमपुर्सी
तुम करते रहते हो।
आगे चलकर, आदतन भूल जाते अपनी
वे सब निधियाँ—
विस्मरण-भूमि है शिलामयी।
पर, जब-जब उस भू के उर से
वेदना उठी

उसके सारे सम्बन्ध-सूत्र
सन्दर्भ-सूत्र काटे ।
वेदना-चित्र तब सिर्फ अधर में लटक गया
सवेदन के परिपार्श्व सभी मिट गये
उसके अनन्त कारक-कारण
भूमिगत हुए,
मन भटक गया ।

तब कहते पाये गये कि
दिव्य सृष्टि-कर्ता
है मर्कट-मन !
विघटन में, रचना में उसकी विचित्र आकृति
मुंह चिढा रही ।
वह कवि भी है,
ब्रह्माण्ड रेडियो-स्टेशन के बरामदे में
उसका फोटो, द्युति-छवि भी है
पर, कविताएँ गडबडा रही ।
प्रतिपल स्वतन्त्र व्यक्तित्व
स्व-निर्भर, लीलाशील, पूर्ण सत्ता
बडबडा रही ।

सच तो यह है, उस मर्कट को
तुम स्वय वहन करते हो अपने कन्धे पर
झुकती उदास पीठ पर ढो रहे उसे
उस राक्षस को
जिसके दल में
लोहे की चक्करदार मशीनी पेचीदा रफ़्तार-धड़क
पीली कजी आँखो में
खूनी-लाल खडी पाई-सी
लौ है लाल-भडक ! !
वह उप काल का जगन्मनोहर
हिरन मार आया,
पर, *ठीक* सामने
दुबला श्यामल जन-समाज-सम्मर्द देखकर
एक सौ दस डिग्री
उसको बुखार आया ।
उसकी सारी उँगलियाँ खून से रँगी
कपडो पर लाल-लाल धब्बे
उसके बचाव के लिए मुसकरा
कलाकार *आया* ।

चुप रहो, मुझे सब कहने दो
फिर नहीं मिलेगा वक्त
जमाना और-और नाजुक होता है
और-और वह सख्त।

वह कहता था—
वह लाल-कत्थई बँगला,
जिसकी छाया म तुम बैठे हो
वह किसका है ?
जेकेरेण्डा के ऊँचे-ऊँचे पेड
गुलमुहर वृक्ष,
कि जिनकी डालो म चिडियो की किलबिल है
वे किसके सूचक है ?
देखते नही ?
उन पेडो की छायाओ म हैं स्फटिक मूर्तियाँ भी,
वे किसकी हैं ?
उस बँगले क भीतर है छुपी हुई मञ्जिलें
अनेको तहखाने
हैं गुप्त सीढियाँ
भूमि-गर्भ मे से मीलो तक चली गयी
देशो-देशो मे जा निकली।
वे इसी शहर के सबसे ऊँचे टॉवर के
माथे पर की
घडियाल-आँख के भीतर के
भाग मे घुसी,
वे मानव-मस्तक के अन्दर
के कमरे मे आ निकली हैं !
उन गुप्त सीढियो के रास्तो पर चलती हैं
काले लिबास मे ढँकी हुई गहरी छाँहे
हाथों मे लालटेन मद्धिम
जेबो मे धन
आजादी को खरीदन का ऊधम
धन स व आग की घनी मार से दम
निकालने का विक्रम ! !
वे छाँहे तो दुनिया के आर-पार जाती-सी
बाँहे हैं
उसकी बाँहे
जो उस बँगले मे अदृश्य बनके बैठा है।
वे गुप्त सीढियाँ रूपक छुपे तरीको के।
दिल के भीतर जो बिजलीघर

छापाखाना,
हर बार खयाल-मशीनों के
उलझे-उलझे पुर्जों का लगातार चलना,
रफ़्तारों के ताते, तांतों की रफ्तारे
उन सबको अपने कब्ज़े मे
रखने के छुपे-छुपे रास्ते
उस बँगले के भीतर से चलते हैं।

उसके दासो के अनुदासो के उपदासो ने ही
अपने दासो को उपदासो को अनुदासो को भी
देश-देश मे इस स्वदेश मे, आसमान मे भी
मानव-मस्तक की राहो मे छाँहो के ज़रिये
मनानुशासन, जीवन-शोषण, समय-निरोधन के
सब कार्यो मे लगा दिया है सभी अनुचरो को।

इस बँगले के पिछवाड़े जहाँ घास-गुच्छे
पीपल के नरम-नरम बच्चे
हाँ वहाँ श्याम पाषाण-मूर्ति
यक्ष की ! !
उस श्याम यक्ष के मुख पर तो
इतिहास तुम्हारा ही चरित्र-पक्ष है
अंकित ! !
वह एक मूर्त प्रतीक तुम्हारे-जैसे लोगो का ! !
मेरे प्रिय हो,
इसलिए कह रहा हूँ
ये सब जो यहाँ दिखायी देते है
उनकी व्याख्या
यह जो हुई एक हत्या इस बँगले मे
वह नित्य अनाख्या है उसका सारा
है ज्ञान निषिद्ध
वर्जित तत्सूचक अभिव्यक्ति
प्रतिषिद्ध तत्सदृश अन्य भाव।
तुम स्वय यहाँ,
अपने अनजाने मे,
मूर्ति बन विराजित हो।

है बहुत-बहुत बेकार बोझ-सी एक चीज़

जो रोज खटकती रहती है
जो पिछडेपन की एक असुविधा सी
वह भीतर की आत्मा
जो फटे हाल बेकार भटकती रहती है
आवाज़ दे रही सी
उसको पहले
औचित्य प्रदर्शक घोर दार्शनिक की
बौद्धिक अधीनता म रक्खा
पर, वह पिछडेपन-सी
जब गडबड करने लगी
उसे मरवा डाला
औचित्य प्रदर्शक घोर दाशनिक वह
विक्षिप्त हुआ ।

इतने म परदा गिरा, उठा
घनघोर दृश्य चेहरे पर छान लगा,
विक्षिप्त दार्शनिक झपटा, मुझ पर आ टूटा ।
मैं सँभल नही पाया
खरोच स चेहरा बिगड गया
हर-एक देश मे आलोचन के अश
चमकने लगे । बहुत
गुस्से म आ
उसने किस्सा यह शुरू किया ।

बेचैन वेदना को
ऋण एक राशि के वर्गमूल म डलवा-गलवाकर
उसको शून्यों से शून्यो ही मे विभाजिता करवा
चलवा डाला है स्याह स्टीमरोलर
इस जीवन पर !!
वह कौन ?
अरे वह लाभ लोभ की अर्थवादिनी सत्ता का
विकराल राष्ट्रपति है !!
जिसके बँगले की छाया म तुम बैठे हो ।
हाँ, यहाँ, यहाँ !!

[सम्भावित रचनाकाल 1962-63 । राजनांदगांव । एक अश 'वह कहता था' शीर्षक से धर्मयुग, 1 नवम्बर 1964, म प्रकाशित । अप्रकाशित]

छापाखाना,
हर बार खयाल-मशीनों के
उलझे-उलझे पुर्ज़ों का लगातार चलना,
रफ्तारों के तांत, तांतों की रफ्तारें
उन सबको अपने कब्ज़े में
रखने के छुपे-छुपे रास्ते
उस बँगले के भीतर से चलते हैं।

उसके दासों के अनुदासों के उपदासों ने ही
अपने दासों को उपदासों को अनुदासों को भी
देश-देश में इस स्वदेश में, आसमान में भी
मानव-मस्तक की राहों में छाँहों के ज़रिये
मनानुशासन, जीवन-शोषण, समय-निरोधन के
सब कार्यों में लगा दिया है सभी अनुचरों को।

इस बँगले के पिछवाड़े जहाँ घास-गुच्छे
पीपल के नरम-नरम बच्चे
हाँ वहाँ श्याम पाषाण-मूर्ति
यक्ष की ! !
उस श्याम यक्ष के मुख पर तो
इतिहास तुम्हारा ही चरित्र-पक्ष है
अंकित ! !
वह एक मूर्त प्रतीक तुम्हारे-जैसे लोगों का ! !
मेरे प्रिय हो,
इसलिए कह रहा हूँ
ये सब जो यहाँ दिखायी देते हैं
उनकी व्याख्या
यह जो हुई एक हत्या इस बँगले में
वह नित्य अनाख्या है उसका सारा
है ज्ञान निषिद्ध
वर्जित तत्सूचक अभिव्यक्ति
प्रतिषिद्ध तत्सदृश अन्य भाव।
तुम स्वयं यहाँ,
अपने अनजाने में,
मूर्ति बन विराजित हो।

है बहुत-बहुत बेकार बोझ-सी एक चीज़

जो रोज खटकती रहती है
जो पिछडेपन की एक असुविधा-सी
वह भीतर की आत्मा
जो फटे-हाल बेकार भटकती रहती ह
आवाज़ दे रही-सी···
उसको पहले
औचित्य-प्रदर्शक घोर दार्शनिक की
बौद्धिक अधीनता मे रक्खा
पर, वह पिछडेपन-सी
जब गडबड करने लगी
उसे मरवा डाला
औचित्य-प्रदर्शक घोर दार्शनिक वह
विक्षिप्त हुआ।

इतने मे परदा गिरा, उठा
घनघोर दृश्य चेहरे पर छाने लगा,
विक्षिप्त दार्शनिक झपटा, मुझ पर आ टूटा।
मैं सँभल नही पाया
खरोंच से चेहरा बिगड गया
हर-एक देश मे आलोचन के अश
चमकने लगे। बहुत
गुस्से मे आ
उसने किस्सा यह शुरू किया।

बेचैन वेदना को
ऋण-एक राशि के वर्गमूल म डलवा-गलवाकर
उसको शून्यों से शून्यो ही म विभाजिता करवा
चलवा डाला है स्याह स्टीमरालर
इस जीवन पर !!
वह कौन ?
अरे वह लाभ-लोभ की अर्थवादिनी सत्ता का
विकराल राष्ट्रपति है !!
जिसके बँगले की छाया मे तुम बैठे हो।
हाँ, यहाँ, यहाँ !!

[सम्भावित रचनाकाल 1962-63। राजनांदगांव। एक अश 'वह कहता था' शीर्षक से **धर्मयुग**, 1 नवम्बर 1964, मे प्रकाशित। अप्रकाशित]

लकड़ी का रावण

दीखता
त्रिकोण इस पर्वत-शिखर से
अनाम अरूप और अनाकार
असीम एक कुहरा,
भस्मीला अन्धकार
फैला है कटे-पिटे पहाड़ी प्रसारों पर,
लटकती है मटमैली
ऊँची-ऊँची लहरें
मैदानों पर सभी ओर

लेकिन उस कुहरे से बहुत दूर
ऊपर उठ
पर्वतीय ऊर्ध्वमुखी नोक एक
मुक्त और समुत्तुंग !!

उस शैल-शिखर पर
खड़ा हुआ दीखता है एक द्यौः पिता भव्य
निःसंग
ध्यान-मग्न ब्रह्म
मैं ही वह विराट् पुरुष हूँ
सर्व-तन्त्र, स्वतन्त्र, सत्-चित् !
मेरे इन अनाकार कन्धों पर विराजमान
खड़ा है सुनील
शून्य
रवि-चन्द्र-तारा द्युति मण्डलों के परे तक।

दोनों हम
अर्थात्
मैं व शून्य
देख रहे दूर···दूर दूर तक
फैला हुआ
मटमैली जड़ीभूत परतों का
लहरीला कम्बल ओर-छोर-हीन
रहा ढाँक
कन्दरा-गुहाओं को, तालों को
वृक्षों के मैदानी दृश्यों के प्रसार को

अकस्मात्
दोनों हम
मैं व शून्य
देखते कि कम्बल की कुहरीली लहरें
हिल रहीं, मुड़ रहीं !!
क्या यह सच,
कम्बल के भीतर है कोई जो
करवट बदलता-सा लग रहा ?
आन्दोलन ?
नहीं, नहीं मेरी ही आँखों का भ्रम है
फिर भी उस आर-पार फैले हुए
कुहरे में लहरीला असंयम !!
हाय ! हाय !

क्या है यह !! मेरी ही गहरी उसास में
कौन-सा है नया भाव ?
क्रमश.
कुहरे की लहरीली सलवटें
मुड़ रहीं, जुड़ रहीं,
आपस में गुँथ रहीं !!
क्या है यह !!
यह क्या मज़ाक है,
अरूप अनाम इस
कुहरे की लहरों से अगनित
कई आकृति-रूप
बन रहे, बनते-से दीखते !!
कुहरीले भाफ-भरे चेहरे
अशक, असख्य व उग्र ·
अजीब है,
अजीबोग़रीब है
घटना का मोड़ यह ।

अचानक
भीतर के अपने से गिरा कुछ,
खसा कुछ,
नसें ढीली पड़ रहीं
कमज़ोरी बढ़ रही, सहसा
आतंकित हम सब
अभी तक
समुत्तुंग शिखरों पर रहकर

सुरक्षित हम थे
जीवन की प्रकाशित कीर्ति के क्रम थे,
अह-द्कृति के ही'''यम-नियम थे,
अब क्या हुआ यह
दु सह !!
सामने हमारे
घनीभूत कुहरे के लक्ष-मुख
लक्ष वक्ष, शत-लक्ष-बाहु ये रूप, अरे
लगते हैं घोरतर।

जी नही,
वे सिर्फ कुहरा ही नही है,
काले-काले पत्थर
व काले-काले लोहे के लगते है वे लोग।
हाय, हाय, कुहरे की घनीभूत प्रतिमा या
भरमाया मेरा मन,
उनके वे स्थूल हाथ
मनमाने बलशाली
लगते हैं खतरनाक;
जाने-पहचाने-से लगते हैं मुख वे।

डरता हूँ,
उनमे से कोई, हाय
सहसा न चढ जाय
उत्तुग शिखर की सर्वोच्च स्थिति पर,
पत्थर व लोहे के रग का यह कुहरा !

बढ न जायँ
छा न जायँ
मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरो पर स्वर्णाभ,
हमला न कर बैठे खतरनाक
कुहरे के जनतन्त्री
वानर ये, नर ये !!
समुदाय, भीड
डार्क मासेज ये मॉब हैं
श्यामवर्ण मूढ़ो के दिमाग़ खराब है,
हलचलें गडबड,
नीचे थे जब तक
फ़ासलो मे खोये हुए कही दूर, पार थे;

कुहरे के घन-घने श्याम प्रसार थे।
अब ये लगूर हैं
हाय हाय
शिखरस्थ मुझको ये छू न जायें ।।

आसमानी शमशीरो, बिजलियो,
मेरी इन भुजाओं म बन जाओ
ब्रह्म-शक्ति !
पुच्छल ताराओ,
टूट पडो बरसो
कुहरे के रगवाले वानरों के चेहरे
विकृत, असभ्य और भ्रष्ट हैं
प्रहार करो उन पर,
कर डालो सहार ।।

अरे, अरे !
नभचुम्बी शिखरो पर हमारे
बढते ही जा रहे
जा रहे चढ़ते
हाय, हाय,
सब ओर घिरा हूँ।

सब तरफ अकेला,
शिखर पर खडा हूँ
लक्ष-मुख दानव-सा, लक्ष हस्त देव सा।
परन्तु, यह क्या
आत्म-प्रतीति भी धोखा ही दे रही ।।
स्वय को ही लगता हूँ
बाँस के व कागज़ के पुट्ठे के बने हुए
महाकाय रावण-सा हास्यास्पद
भयकर ।।

हाय, हाय,
उग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
और कि भाग नही पाता मैं
हिल नही पाता हूँ

इस टीले पर" और
हवा के झोर
स्पर्श के पाप-गुच्छ से
झूम, लटक, छू रहे जगत्
(आदमी—सिर्फ अफवाह,
प्राण दयनीय तुच्छ-से)

8

इसी अहाते के अन्दर
हैं, वहाँ मध्य मे
उलटे-तिरछे खडे पुराने पेड
ऊँचाई पर व खड्ड मे
उन पेडो की डालो मे से, एक
झाँक रही कत्थई रुखाई जो कि
वह बँगला है, लाल भवन है, क्योंकि
कोई रक्तिम केन्द्र
उसी केन्द्र की तलाश मे चुपचाप
घूम रहा हूँ आप।
सुना है कि उस केन्द्र-सत्य म, खाट
डालकर सोता है विभ्राट्
कोई मर गया किसी से गुप्त युद्ध मे
उसी अहाते के अन्दर,
तरु-घिरे मध्य मे।

9

भटक पडा मन उस बँगले की ओर··
···(कँपकँपी)
जाने किस जाग्रत मूर्छा मे चलकर, दे दी
किसी बन्द दरवाजे पर उद्दण्ड थपथपी ।।
एक अचानक थरथर जहरी
ठण्डी गाँठ दर्द की गहरी
हाय, हाय, अब मैं भागूँगा
कोई पशु उस झाडी से भागता गया है
मेरे हाथों मे फिरकी है, मेरे पैरो म पहिया है।
छोडो भारत, चलो अन्दमन, भगो मालदिव,
उस बँगले मे छिपा हुआ है एक डिटेक्टिव ।।

10

देखो मत पीछे···
आँखे दो चमक रही है,

पीली सूरत !!
वरामदे मे मोटी वेलें,
उनका सर्द अँधेरा गहरा,
उलझी रस्सी-सी डालो की सूखी जाली,
जिसकी छाँहो म यह क्या है, क्या है ?
पत्थर का बुत
अपना जडीभूत सिर तान खडा हुआ है !!
—वह मैं, वह मैं,
जाने कव से
मेरे हाथ हुए पत्थर के
मेरे पैर मृत्तिका-स्तर के
मेरी सूरत माटी की सी
दिल के भीतर गरम ईंट है, गरम ईंट है
जले हुए ठूँठ के तने-सी स्याह पीठ है !!

11
अकस्मात्, फट पडे वीच से सिर, औं ताजा
खून बहे त्यों सहसा ही खुल पडा
धड्ड से
वह दरवाजा
और, एक आवाज वह उठी—
(सावधान, पर नरम किन्तु नाराज)
शब्द, तत्पर !!
अजनवी ज़ोर उन पर
दिल धँसा कि धँसता गया कि मानो जान गयी !!
उन हरे-हरे पेडो पर उडती हुई दिखी
मुझको सफेद चादर लहराती हुई
कि मानो कफन
जीवन मे अपनी कठिन मृत्यु देख ली ।

12
बहुत खूबसूरत चमकीला वह चेहरा है !!
मुझको सदमा
इतना आकर्षक तो भयप्रद दानव-सा क्यो,
दानव है तो देवो सा क्यो
क्यो वह ब्रह्मा का शखब्मा
ढीला-ढाला कोट-पैण्ट पहने गन्धर्व सुनहरा,
यूरोपीय यक्ष या हिन्दुस्तानी जिन्न !!
नया अनुभव है,
उसके सावधान हाथो अब जान क्या मेरा सम्भव है ।

13

क्षण का गहरा-गहरा कुआँ
मैं मुंडेर से गिरा अतल-पाताल अँधेरे मे कि
तले तक ज्यो ही पहुँचा था कि
वहाँ अज्ञात हाथ ने फिर से फेंका
बहुत ज़ोर से यों कि तुरत
वापस मुंडेर पर मैं आ बैठा !
कुआँ नही यह नही कही कुछ ऐसा-वैसा
मैं जिन्दा हूँ,
मैं हूँ
'आइ एग्ज़िस्ट'
साबित सही सलामत।
साबित,
सूना बड़ा रूम है, हवा सुनहली-भूरी निर्जन
मेरे सम्मुख वही पुरुष, उसका अवलोकन !!

14

किसी भव्य मन्दिर-गुम्बज के भीतर
ज्यों गम्भीर ध्वनन-क्रम
गूँज उठे त्यो सावधान वे शब्द
"कौन तुम ?"
मेरे दिल पर धीमी थापें हलकी-हलकी
आयी यादें—उपनिषदिक ऋषि *याज्ञवल्क्य* की
मैंने सस्मित होना चाहा
चेहरे पर मीठी-मीठी सलवटें पहन
मुसकाना चाहा।
"बुनियादी सवाल अपना पहचान न पाया"
मैंने कहा—"बताया है आपने उसे
मैं कौन, मुझे उसका उत्तर आपसे चाहिए,
क्या हूँ, क्यों हूँ, कैसे हूँ, यह सब बताइए।"

15

मानो कि कनपटी पर अनपेक्षित अकस्मात् आघात
कि थप्पड़ है
विश्वात्मक भन्न-भन्न व्यापी
अत्यन्त दूर नैब्यूला तक
क्या उस सवाल में कही झूठ की झालर थी ?
भावना एक कृत्रिम थी या
भीतर-भीतर की तहों-दबी
कोई कुछ बात छिपाने के लिए

बहाने सा मेरा यह प्रश्न गूँजता था ?
या क्या ?
या क्या ?

महसूस हुआ अजनबी एक जगली काला कौवा
अनजान, सिर पर आ बैठा !!
भीतर के गहरे धक्के से
मस्तक का छत फूटन लगा
अपनी छाती पीटता हुआ नाद अनहद
सिर म भरमा
तितलियाँ लाल
तैरन लगी
कि पल भर म ही
उस कमरे की वह हवा
रक्त वेदना विन्दुओ म विघटित !!
उनको सहसा लीलती हुई
आडी-तिरछी सफद-सी रेखाएँ
मुझको दीखी
उन रेखाओ पर वाक्य अदृश्य लहरते थे
उलटे सीधे वे चारो ओर उभरते थे
सामने दीखता सा आशय,
उडता था और फहरता था,
मेरा सवाल चक्कर खाकर
सहसा कानो के आस पास उलटा होकर
आडे तिरछ प्रति-प्रश्न पूछता हुआ
घहरने लगा गूंजने लगा।
उभरने लगा स्वय मैं ही
उलटा होकर, पलटा खाकर !!

16

इतने म उसने कहा—
इन्तजार था मुझे तुम्हारा हरेक पल
इसी खास मौके पर तुमसे
मुलाकात करना भी अशद जरूरी था।
मैं दक्खिन से
तुम पश्चिम से
दोनो इस बँगले आ पहुँचे
मैं हाजिर हूँ,
तुम दबे पाव आओगे यहाँ चोरी-चोरी
बिलकुल तै था

वह भीतर की मजबूरी है—
कुछ खास बातें करनी हैं तुमसे अब।"
उसके शब्दो मे धरती का दबाव-सा था,
या भीतर तह चीरता हुआ
चमचमा रहे नश्तर का
तीखा गहरा
पेचीदा घुमाव-सा था।

17

इतने मे सहसा दीख पडा—
घिरते आये
इस गोरे चेहरे पर खयाल
शाम के सुनहले रगो पर ज्यो बिछ जायें
काली लहरें,
बिछते-बिछते
सूरज की कुछ चिनगियाँ बचे,
और तेज चमकने लगें
त्यो आँखो मे चालाक सूझ की एक अजब रोशनी
देखने लगी मुझे।
मैं उसी चमक की थाह नापने लगा
कि यो महसूस हुआ
अँधियारे वीराने मे दूर कही
अनगिनत तरह से नाच रही
कोई ऊँची जादुई आग
है लाल-लाल
जाने किस मानी मे।
उसकी निगाह दूरियाँ पार कर मुझे देखती है
गोरे माथे पर हैं अजीब
खुरदुरे तजुर्बों की बेढब
बारीक लकीरें, जिन्हे देख
मैं सोच रहा—
उस सिर के भीतर क्या?
क्या चलता है?
कौन-से कारखाने?
लोहे के चक्के घूम रहे किस ताकत से
प्रच्छन्न विचार-मशीनो की गति के ताँते
क्या हैं? क्या हैं बातें?
क्या चाहता है?
हतबुद्धि यहाँ मैं प्रस्तुत हूँ,
क्या उत्तर दूँ?

18

वह कहता था—
मत बनो दार्शनिक बनावटी
तुम क्या हो, कैसे हो, क्यों हो
इसका उत्तर
टीन के कनस्तर ही देंगे
जिनकी उपमा, उधार लेकर,
तुम अकसर देते रहते हो
उन लोगों को
जो सदा तुम्हारी तरह बेजा ही करते है
भीतर के उन आवेगों से
जो भीतर गिरफ्तार रहकर
टीन के कनस्तर-से दिल मे
हडबडी मचाया करते हैं।
वे अटके हुए,
शिश्नोदर-लक्ष्य-पूर्ति मे गहरे भटके हुए
क्षुब्ध आवेग-रूप चूहे।।
उनकी गडबड
गूंजती कांपती है पवित्र से पवित्र
सुन्दर क्षण पल म।
शिश्नोदर-लक्ष्य पूर्ति का बल अब एक मात्र बल है
जो वेश बदलता रहता है
वह कुत्ते-सा घूमता शहर के रास्तो पर
तब बहुत युद्ध होता है भरे मुहल्लो मे
पूरा-का पूरा शहर चीख-चिल्लाहट सुनता रहता है
हाँ, वही शक्ति वेखौफ रीछ बनकर शिकार पर जाती है
मानो समाज सभ्यता घना जगल ही हो।

19

मैं उसकी बातें सुनता था—
वह मुझसे क्यों कहता है यह ?
इसका मुझसे सम्बन्ध और सन्दर्भ कहाँ ?
वह कहता गया—
"आइए भीतर, अब
है तितर-बितर इस वक्त आप
भीतर आकर
तरतीब पायेंगे अपने मे··"
सुनकर दहशत
लोहे के दाँतदार चक्के
दिल मे यो घूम उठे

मेरा सब-कुछ भीतर-भीतर
पीसा-सा जाने लगा···
फँसा उलझा
घनघोर मशीनी चक्को के बीच मे
मेरा जा-बेजा
जो भी था।

वह कहता गया—
"बिल्लियो के नाखून
और भी ज्यादा धारदार हो गये···
अजीब तरह से हुआ खून
मूर्च्छित कर वश मे किया गया।
तुम भागो तिरवाकुर या डिब्रूगढ या देहरादून
कही भी जाओ
बे-रोक-टोक उसकी शिकार
अप्रतिबद्धा उसकी मृगया"
उसने यह सब इस तरह कहा—
मानो मुझ पर शक
काला-सा सन्देह
पर्वत उतार पर तेज लुढकता हुआ अरे
मैं गिरा किसी गहरे गड्ढ मे अँधियारे
कि इतने मे उन वाक्यो का आशय पूरा
उभरा, चमका !!
धडधड धडाम धडधड धडाम
कर, गूँज उठा फूटा डका दिल का।
अगले खतरो से सावधान,
हाँ, सावधान !!
मुझको अब रहना है।

20
देखता हुआ कमरे की सूनी दीवारें
वीरान हवा सूँघता हुआ
मानो मैं दर्दभरे सपन म घूम रहा,
वह लौट-लौट आनेवाला-सा सपना है।
शायद पहले भी आया था,
मैंने यह कमरा देखा है।

21
हम दोनो अगले कमरे मे अब आ पहुँचे
कॉर्निस पर, पख फडफडाकर, बूढे पक्षी

तिनकों को बिखरा-गिरा
चमकती सावधान आँखों से देख रहे—
तिरछी किरनें तिपहर की फैली जो
चौडे पलँग पर खोयी-सी
वे किरनें सूनी आँखो से सब देख रहीं।
लम्बी-चौडी सफेद शय्या।
हैं केश खुले
ठण्डे नक्षत्रों-सी आँखें,
दूरियोभरी द्युतिमयता मे,
हैं चमक रही !!
वह देह सुनहला बादल है,
जिसका मुख है चम्पई, कलाई पर नीली
चूडियाँ मनोहर चमक रही,
पर, छायी है मृत्यु की पीतिमा सभी तरफ !

22

मन के भीतर अजीब हलचल
मानो घबराकर तितर-बितर
चींटियाँ बिखर वल्मीक गुहा मे से भागें,
यादें सारी दौडने लगीं
खोजती हुईं—
"यह कौन यहाँ जो लेटी है
मृत आवृति पीली जडीभूत !!"

मेरे सम्मुख, नाचने लगा कोई आशय
मानो अथाह पानी के निचले तल मे से
नीली-नीली अणु-किरणों की प्रदीप्त गुत्थी
यों भभक उठे,
उठकर नील-लहर-सतह पर
लहराकर नाचने लगे
वह यूरेनियम-ज्वाला
पास मे खड़ा वैज्ञानिक क
भयभीत भागते हुए देह को लपक लपेट बाँहो मे
अपनी जलती छाती मे
उसको यों समेटने लगे कि वह
चीखकर गिरे बेहोश
और मर जाय
भयानक आकस्मिकता से,
प्रकाश से, ऊष्मा से, भय से,
त्यों अपनी महिमा से,

मेरा सब-कुछ भीतर-भीतर
पीसा-सा जाने लगा···
फँसा उलझा
घनघोर मशीनी चक्को के बीच मे
मेरा जा-बेजा
जो भी था।

वह कहता गया—
"बिल्लियो के नाखून
और भी ज्यादा धारदार हो गये···
अजीब तरह से हुआ खून

कही भी जाओ
बे-रोक-टोक उसकी शिकार
अप्रतिबद्धा उसकी मृगया"
उसने यह सब इस तरह कहा—
मानो मुझ पर शक
काला-सा सन्देह
पर्वत उतार पर तेज लुढकता हुआ अरे
मैं गिरा किसी गहरे गड्ढे मे अँधियारे
कि इतने मे उन वाक्यो का आशय पूरा
उभरा, चमका!!
धडधड धडाम धडधड धडाम
कर, गूँज उठा फूटा डका दिल का।
अगले खतरो से सावधान,
हाँ, सावधान!!
मुझको अब रहना है।

20
देखता हुआ कमरे की सूनी दीवारें
वीरान हवा सूँघता हुआ
मानो मैं दर्दभरे सपन मे घूम रहा,
वह लौट-लौट आनेवाला-सा सपना है।
शायद पहले भी आया था,
मैंने यह कमरा देखा है।

21
हम दोनो अगले कमरे मे अब आ पहुँचे
कॉर्निस पर, पख फड़फड़ाकर, बूढ़े पक्षी

तिनको को बिखरा-गिरा
चमकती सावधान आँखो से देख रहे—
तिरछी किरने तिपहर की फैली जो
चौडे पलँग पर छायी सी
वे किरनें सूनी आँखा से सब देख रही।
लम्बी-चौडी सफेद शय्या।
है केश खुले
ठण्डे नक्षत्रो-सी आँखे,
दूरियोभरी द्युतिमयता म,
हैं चमक रही!!
वह देह सुनहला बादल है,
जिसका मुख है चम्पई, कलाई पर नीली
चूडियाँ मनोहर चमक रही,
पर, छायी है मृत्यु की पीतिमा सभी तरफ!

22

मन के भीतर अजीब हलचल
मानो घबराकर तितर बितर
चीटियाँ बिखर वल्मीक गुहा मे से भागें,
यादें सारी दौडने लगी
खोजती हुई—
"यह कौन यहाँ जो लेटी है
मृत आवृति पीली जडीभूत!!"

मेरे सम्मुख, नाचने लगा कोई आशय
मानो अथाह पानी के निचले तल मे से
नीली-नीली अणु-किरणो की प्रदीप्त गुत्थी
यो भभक उठे,
उठकर नील लहर-सतह पर
लहराकर नाचने लगे
वह यूरेनियम-ज्वाला
पास म खडा वैज्ञानिक के
भयभीत भागते हुए देह को लपक लपेट बाँहो म
अपनी जलती छाती म
उसको यो समेटन लगे कि वह
चीखकर गिरे बेहोश
और मर जाय
भयानक आकस्मिकता स,
प्रकाश से, ऊष्मा स, भय स,
त्यों अपनी महिमा स,

लपेटन लगा मुझे
वह आशय
सूर्याकाश-पाश की क्षमता से।

23

वह जो लेटी है शक्तिहृता
विगता स्वर्णाभा विद्युत् की
वह कौन?
हमारी आत्मा ही तो नही कही!!
जीवन की दीर्घ यात्रा म
हमने असावधानी स जिसको कही खो दिया है
देदीप्यमान वह एक अग्नि-मणि है
जिसको अब तक सँभाल रक्खा था वह विवेक
जाने किस तरह बिखर गिर पडा किसी अनजान जगह
सच, जरा ध्यान चूका कि गिरा
ज्ञान-धन यूँ ही!!
रह गयी रिक्तता की कठोर भर्त्सनामयी
वेदना एक!!
मुझको शका—
सम्मुख जो आकृति दीख रही!!
वह आत्मा ही तो नही कही
उसकी मुख महिमा
अब तक कैसी तप्तारुण,
पील कपोल पर श्यामल पीडाएँ दारुण,
उसने भयकर वचना व्यथाएँ बहुत सही।
मर गयी हाय, वह, द्युति-रेखा
निष्कलुष युवा स्वप्नो म निर्मल अवतरिता
स्मितमुखी हृदय मे सचरिता
वह कहाँ गयी।
दिन-राते जिसकी तीव्र दृष्टि से विवेचिता
पल-क्षण—जिसके भाष्यो से
जीवन के स्रष्टा
जीवन—जिसकी प्रेरणा व्यथा का वाहक था
उसकी महिमा सब बिला गयी,
किसने उसकी हत्या कर दी?

24

ज्यो कोई चीटी शिला-लेख पर चढ़ती है
अक्षर-अक्षर रेंगती—
नही कुछ पढ़ती है,

त्या मन
भीतर के लेखो को छू लेता है
बेचैन भटकता है, बेकार ठिठकता है
पर, पकड नही पाता है उसके अक्षर स्वर !!

एकदम हो गयी भीतर की मंजिल खाली
अवसन्न शिथिलता उदास सूनापन जाली
अज्ञात जाल म उलझ फँसा मैं बेमानी
मैंने तब अपने साथी का देखा चेहरा
वह होता जाता था दुहरा
ब्रह्माण्ड ज्ञान कहने को मानो उद्यत हो।

25

गम्भीर श्याम तूफानी बादल टूट पडे
फट पडें,
और बारिश के धुँधले-से सफेद
अनगिनत सूत, अनगिनत तार
तन जायें और झूलने लगे
तब गिरें पेड, घर टूट जायें
उड जायें टीन-टप्पर
व तार-खम्भे उखडें
उस ज़ोर शोर का गरबीला
श्यामल भस्मीला ध्वस दृश्य
देखती हुई
ये डरी हुई
आँखें ठिठकें फिर भटक जायें,
मन अटक जाय फिर कही-कही
त्यो भीतिपूर्ण पर अद्वितीय उस ध्वस-दृश्य
पर मन्त्र-मुग्ध
हाँ, मन्त्र-मुग्ध
मन चण्ड दृश्य पर लगा रहे
यो जगा रहे—
त्यो उस सहचारी मित्र-प्रवर
के बुद्धि विवर म से उभरे सौ भव्य तर्क
तीख विचार, जिनके बल के फलस्वरूप, सच,
मेरे प्रमाण मेरे प्रमेय
सब ज्ञात ज्ञेय उद्ध्वस्त दिखे
सब ओर भग्न
ध्वसावशिष्ट निष्कर्ष और
है छिन्न-भिन्न उपपत्ति-युक्ति—

सब खँडहर है
मैं देख रहा निरपेक्ष भाव से ढूहों को
अपने विचार के छिन्न-भिन्न उन व्यूहों को
है खण्ड-खण्ड मेरा जीवन
जिसका विपन्न स्वर है
गीले उदास ईंटिया रंग
खँडहर में
अति भीम भयानक पेड़
दानवी जड़ें
भूमि की आँतों में फैला करके
जो खड़ा बड़ा उद्दण्ड दीखता है
त्यों मैं भी तो
पकड़े हूँ भूलों की ज़मीन मज़बूती से
यों तना खड़ा
अपनी छाँहों में पत्थर कई डाल रक्खे
देवता बना !!
गेरुए !!

26

कमरे के भीतर कमरे हैं,
परदों के भीतर परदे हैं,
जो सबके अन्दर ठीक केन्द्र में बैठा है,
वह एक बड़ा अफसर है, उसकी सत्ता है।
आतंक बहुत
उसके दिमाग में गुपचुप जो कुछ चलता है
वह सरकारी गुप्तता-नियम के अन्तर्गत
अनकहा रहेगा आखिर तक, हाँ आखिर तक।

27

वह दुष्ट मित्र अब आग है।
भुतही ज़ंजीरों बँधा, बेसधा,
पीछे-पीछे हूँ।
मैं घनी भाफ के गरमीले
फव्वारों में ही ढँका मुँदा
जल रहा, चल रहा हूँ !!
या आसमान में घन बादलों की घुँघराली लहरीली
थाहों में से निकला उभरा
उड़ रहा, भटकता हूँ
नीचे-ऊपर होता व टूटता जुड़ता हूँ।
माथे के भीतर ज़हरीले कुछ उठे फफोले-से

वे दर्दीले उभरे कोने अनबोले-से
इतने मे उसने हाथ पकड मुझको झकझोरा
आ गया ठिकाने मन सन्नाते तारो पर
सशय न रहा—
मैं जीवित हूँ
ये हाथ-पैर सब ठीक-ठिकान साबित हैं।

28

इतने म एक दृश्य तैरा
....

काठ के पैर
ठूँठ-सा तना
गाँठ-सा कठिन गोल चेहरा,
लम्बी उदास लक्कडी डाल-से हाथ क्षीण
वह हाथ फैल लम्बायमान,
दूरस्थ हथेली पर अजीब
घोसला
पेड मे एक मानवी रूप,
मानवी रूप मे एक ठूँठ
सच या कि झूठ ?

घोसला उलझकर बदहवास
बेबस उदास
क्यो लटक रहा झूलकर ?

मैं काँप उठा वह दृश्य देख
यह असन्दिग्ध, वह मैं ही हूँ
मैं वही ठूँठ, यह निर्विवाद !!
यदि यह सच तो
उद्दण्ड अह
यानी कि पेड ने तोड दिया
वह नीड स्वय !!
घोसला तोडने का अपराधी कौन ?
पेड ही खुद !!
तूफानो का न उसमे दोष
क्योकि वे अवचेतन, अन्ध, प्रजड।
वह उग्र प्रभजन मात्र निमित्त-हेतु-कारण
अपराधी मैं स्वय असाधारण।

सूखता न मैं

वनता न ठूंठ
यदि पत्राच्छद-आश्रित रखता सबको समस्त
निज शाखाओ के सबल सहारे समाश्वस्त
अत्यन्त सुरक्षित रखता यदि घोसला
तो तोड-ताड का यह अजीब सिलसिला
टूटता खुद ! !

किन्तु इन मूलो ने
पृथ्वी से रस न सही खीचा
रवि किरणो स पूरी न शक्ति खीची
अर्थात् ठूंठ बन गया
तब गिरे नीड
विध्वस हुआ
क्या करूँ ! !

पर मेरे सम्मुख प्रश्न नाच उठता
यदि मूलो ने पानी न पहुँच पाये
यदि शाखाएँ पूरी न शक्ति खीचे
तो मुझ-जैस निर्बल का
जितना भी दायित्व
कहाँ तक अनन्त है ! !
मैं खुद मर-मरकर जिया।
अँधेरे कोने मे एकान्त
न जाने किस मास्टर की डाँट पड रही है
जितना भी किया गया
उससे ज्यादा कर सकते थे।
ज्यादा मर सकते थे।"
अब काँट-छाँट की बाट हर घडी है।

[सम्भावित रचनाकाल 1959 से 1963 तक। अन्तिम सशोधन 1963 म। राजनादगाव। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** म सकलित]

उस दिन

1
जिन्दगी की कोख म जन्मा
नया इस्पात

दिल के खून मे रँगकर,
उपेक्षित काल-पीडित सत्य के घर मे।
सुना तुमने ! !
अँधेरी, कोयले की खान की काली
बहुत ही तग, नीची-छत व पेचीदा
गली की भीत पर, तीखी कुदाली मार
खिसकाकर बडे-से स्याह पत्थर
देवकी
ज्योही बढी आगे
अचानक पेट के भीतर,
नुकीली चीरती-सी छटपटाहट और···
पुत्रोत्पत्ति !!
शिशु की देह माँ के खून मे लथपथ।
भयानक स्याह भीतो से घिरे
उस शून्य मे पीला
अकेला काँच का दीपक,
उदासी से भरा गुमसुम उजाला
और, माँ का एक नगा दृश्य पाताली।

2

तुम्हारे शब्द, मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर,
भटककर, घूमफिरकर, सब तजुर्बे ले
उसी बरामदे मे आ पहुँचते हैं,
उपेक्षित काल-पीडित सत्य के घर मे।
अपेक्षापूर्ण स्पन्दनशील नीरवता
सघन है, किन्तु
अनदीखे अँधेरे एक कमरे से
तरगित स्वर-लहर मीठी अनल-पखी,
हृदय-खोले गहन अनुरोध करती-सी।
अचानक, फिर उसी तम-श्याम कमरे से
उठी आवाज—
इस्पात ! !
निज के तडिन्मय परमाणुओ के वायलिन-स्वर पर
अनेको स्वप्न-छवियो को जगाता है,
यही क्यो···खुद-ब-खुद,
पूरा भरा पिस्तौल भी बनता
तुम्हे क्या चाहिए पिस्तौल या वायलिन ! !

भयकर प्रश्न ! !

इसका कौन उत्तर दे ! !
(सहमकर, बुदबुदाते हम···
'हमें क्या चाहिए पिस्तौल या वायलिन।')

इतने में
अँधेरे भीतरी घर से
निकलकर काल-पीडित सत्य (ऊँचा कद,
जमाकर नाक पर टूटा हुआ चश्मा,
दिखा अखबार) कहता है
सुना तुमने ! !
धधकती जा रही है ग्रन्थशाला भी
हमारे पर्सिपोलिस की ! !
कहाँ फ़ामरोज़ (पण्डितराज)
केटायून (कवयित्री)
कहाँ बहराम (सम्पादक)
कहाँ रुस्तम
उन्होंने सिर्फ नालिश की
अरे रे, सिर्फ नालिश की
अँधेरी उस अदालत में
जहाँ मुंशी व मुंसिफ पी रहे थे
लुटेरे के अर्दली के साथ
रम, शैम्पेन, ह्विस्की—जब
उँडेले जा रहा थे खूब कैरोसीन के पीपे
लगायी जा रही थी सीक माचिस की
कहाँ थे वे
कहाँ थे तुम
कि जब दस मंजिलो, दस गुम्बदोंवाली
सुलगती जा रही थी लायब्रेरी पर्सिपोलिस की
हमारे गहन जीवन-ज्ञान
मानव-मूल्य के उस एक्रोपोलिस की !!
क्षितिज पर पोत डामर जब,
गुलाबों, सूर्यमुखियों, पारिजातों पर
छिड़ककर स्याह गाढा कोलतारी द्रव
हमी में से विदेशी-सा
हमारे बीच का ही एक
नव साम्राज्यवादी···
लोभ के आवेश में आकर
उजाड़े जा रहा है जिन्दगी की बस्तियाँ
पददलित मानव-मूल्य
हैं आक्रान्त आत्माएँ

तुम्हे क्या चाहिए
पिस्तौल या वायलिन !!
(हम क्या चाहिए, पिस्तौल या वायलिन··
सहमकर, बुदबुदाते हम)
ठठाकर हँस पडा ठठरीनुमा वह काल-पीडित सत्य
उसके गाल की ऊँची उठी हड्डी
नुकीली नाक का ऊँचा कगारी पुल
अनोखी, तेज, चमकीली निगाहो म भरी खूबी
भयानक थी, भयानक थी,
कि इतने मे, वही तो कह पडा—
"मूर्खो, तुम्हारे हाथ मे दुर्भाग्य या सौभाग्य से
पिस्तौल या वायलिन ·
अथवा अन्य कोई अस्त्र आ भी जाय,
वह छूंछा खिलौना ही रहेगा, क्योकि
तुममे है कहाँ जनगुण··
सजग व्यक्तित्व ही का वह
समर्पणशील भोला-भाव
जो इस जिन्दगी की धमन-भट्टी मे परीक्षित हो
बने इस्पात !!
कही भी जाओ, उत्तर, पूर्व या पश्चिम
भले ही पत्र पुस्तक आदि मे
अपने मनोहर चित्र छपवा लो
तुम्हारा मूल्य
शून्याकार !!
अजब थी डाँट,
पर, वह सुन
मैं यह सोचने मे खो गया-सा था कि
कोई कर रहा होगा
ऐसा अस्त्र आविष्कार नि सन्देह
जिसके तडिन्मय परमाणुओ मे स
मधुर आत्मीय कोई वॉयलिन-स्वर और
उसकी हर लहर मे से
उभरता एक ज्ञानावेश-दीपित स्वप्न
उस स्वप्नांकिता छवि की
मनोहर रश्मि का आघात अप्रतिरुद्ध
ऐसा कुछ कि
निर्मित है
तडित् का चुम्बकीय क्षेत्र
जो भी आयेगा उसके सपाटे मे
चिपकता जायगा अनिवार

ऐसा अस्त्र-आविष्कृत
कही पर हो रहा है सच।

[रचनाकाल 20 जनवरी 1963। राजनांदगांव। अभिव्यक्ति-1, 1963 64, म प्रकाशित]

भूल-ग़लती

भूल-ग़लती
आज बैठी है जिरहबख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के,
चमकते है खडे हथियार उसके दूर तक,
आँखे चिलकती हैं नुकीले तेज़ पत्थर-सी,
खडी है सिर झुकाये
सब कतारें
बेज़ुबाँ बेबस सलाम मे,
अनगिनत खम्भो व मेहराबो थमे।
दरबारे-आम म।

सामने
बेचैन घावो की अजब तिरछी लकीरो स कटा
चेहरा
कि जिस पर काँप
दिल की भाफ उठती है
पहने हथकडी वह एक ऊँचा कद,
समूचे जिस्म पर लत्तर,
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के।
वह कैद कर लाया गया ईमान
सुलतानी निगाहो मे निगाहे डालता,
बेखौफ नीली बिजलियो को फेंकता
खामोश!!
सब खामोश
मनसबदार,
शायर और सूफी
अलगज़ाली, इब्न सिन्ना, अलबरूनी,

आलिमो फाज़िल सिपहसालार, सब सरदार
हैं खामोश !!

नामञ्जूर,
उसकी ज़िन्दगी की शर्म की-सी शर्त
नामञ्जूर
हठ इनकार का सिर तान   खुद-मुख़तार।
कोई सोचता उस वक्त—
छाये जा रहे हैं सल्तनत पर घने साये स्याह,
सुलतानी ज़िरहबख्तर बना है सिर्फ मिट्टी का,
वो—रेत का-सा ढेर—शाहंशाह
शाही धाक का अब सिर्फ सन्नाटा !!
(लेकिन, ना
ज़माना सांप का काटा)
भूल (आलमगीर)
मेरी आपकी कमज़ोरियों के स्याह
लोहे का ज़िरहबख्तर पहन, खूंख्वार
हाँ, खूंख्वार आलीजाह,
वो आँखें सचाई की निकाले डालता,
सब बस्तियाँ दिल की उजाड़े डालता,
करता, हमें वह घेर,
बेबुनियाद, बेसिर-पैर
हम सब क़ैद हैं उसके चमकते ताम-झाम में,
शाही मुकाम में !!

इतने में, हमीं में से
अजीब कराह-सा कोई निकल भागा,
भरे दरबारे-आम में मैं भी
सँभल जागा !!
कतारों में खड़े खुदग़र्ज़ बा-हथियार
बख्तरबन्द समझौते
सहमकर, रह गये,
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिये,
दुमुँहेपन के सौ तजुर्बों की बुज़ुर्गी से भरे,
दढ़ियल सिपहसालार संजीदा
सहमकर रह गये !!

लेकिन, उधर उस ओर,
कोई बुर्ज़ के उस तरफ़ जा पहुँचा,
अँधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में

कही पर खो गया,
महसूस होता है कि वह बेनाम
बेमालूम दर्रों के इलाके मे
(सचाई के सुनहले तेज अक्सो के धुंधलके मे)
मुहैया कर रहा लश्कर;
हमारी हार का बदला चुकाने आयगा
सकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायगा ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1963 । राजनांदगांव । कल्पना, अप्रैल 1964, मे प्रकाशित । चांद का मुंह टेढ़ा है मे सकलित]

एक आत्म-वक्तव्य

·· और, जब
मेरा सिर दुखने लगता है,
धुंधले-धुंधले अंधेरे में, आलोचनाशील
अपने मे उठे धुएँ की ही चक्करदार
सीढियो पर चढने लगता हूँ ।

उनके शवो, अर्ध-शवो पर ही रखकर
निज सर्व-स्पृश पैर,
मेरे साथ चलने लगता भावी-कर-बद्ध
मेरा वर्तमान !

किन्तु, पुन -पुन ,
उन्ही सीढियो पर नये-नये आलोचक-नेत्र,
(तेज नाकवाले तमतमाये-से मित्र)
खूबसूरत काट छाँट और गहरी छील-छाल,
रन्दो और वसूलो से मेरी देखभाल,

मेरा अभिनव सशोधन अविरत
क्रमागत ।
अभी तक
सिर मे जो तडफडाता रहा ब्रह्माण्ड,
लडखडाती दुनिया का भूरा मानचित्र
चमकता है दर्दभरे अँधेरे मे वह
क्रमागत काण्ड ।
उसमे नये-नये सवालो की झखमार,
थके हुए, गिरते-पडते, बढने का दौर;
मार-काट करती हुई सदियो की चीख,
मुठभेड करते हुए स्वार्थो के बीच
भोले-भाले लोगो के माथो पर घाव ।
कुचले गये इरादो के बाक़ी बचे धड
अधकटे पैरो ही से लात मारकर
अपने जैसे दूसरे के लिए
सब करते है दरवाज़े बन्द—
उलटे दिल-दिमाग़ो म ग़ुस्से की धुन्ध ।
अँधियाली गलियो मे घूमता है,
तडके ही, रोज
कोई मौत का पठान
माँगता है ज़िन्दगी जीने का ब्याज,
अनजाना क़र्ज़
माँगता है चुकारे मे, प्राणो का मास ।
हताहत स्वय को ही दर्दीली रात—
जोड-तोड करती हुई गहरी काट-छाँट,
रोज़ नयी आफ़त, कोई नयी वारदात ।
पूरे नही हो सके हैं मानवीय योग,
हर-एक के पास अपन-अपने व गुप्त रोग ।
(परेशान चिन्तको की दार्शनिक झीख)
उजली-उजली सफ़ेदी मे
कोखो की शर्म,
(अधबने समाधानो)
भ्रूणो का, अँधेरे म, क्रमागत जन्म,
सृजन—मात्र उद्गार-धर्म ।
सत्ताग्रही, अर्थाकांक्षी
शक्ति के कृत्य,
और मेरे प्राणो मे
सत्यो के भयानक
केवल व्यग्य-नृत्य,
व्यग्य-नृत्य !!

उसी विश्व-यात्रा म चट्टाना बीच
किसी झुकी सँवलायी साँझ
मुझे मिला
(हृदय प्रकाश सा) अकल म
विजली स जगमगाता घर,
जिसके इद गिद
कुछ अँधियाल पेड
मानो मग्न हुए घने
वहुत घने वड वड दद।
अचानक घर म से निकल आया एक
चौड माथवाला भोला प्रतिभा का पुत्र
दुवना वान मुख!
पहचाना मुझ और हँस चुपचाप
मेरे खाली हाथो म रख गया
दीप्तिमान रत्न—
भयानक वीरानो म घूमकर
खोजा था जो सार सत्य
आत्म धन
छटपटाती किरणो का पारदर्शी क्वाट ज
किरनें कि आलोचनाशील धारदार
उपादान
जिनकी तेज नोको से अकस्मात्
मेरी काट छाँट छील छाल
लगातार।
इसीलिए मेरी मूर्ति
अनबनी अधबनी अभी तक

जिसे लिये कहाँ जाऊँ सदा ही का प्रश्न।
अपने इस अधबने पने का गरीब
यह दृश्य
पा न जाय सभाओ म कही तिरस्कार
अथहीन समर्थों क द्वारा कही वह
निकाला न जाय।
इसीलिए मुझ प्रिय अपना अन्धकार
गठरी म छिपा रखा निजी रेडियम
सिर पर टोकरी म
छिपाया है मैंने कोई यीशु,
अपना कोई शिशु!

परन्तु मैं किसी पेड-पीछे-से झाँक

लाख-लाख आँखों से देखता हूँ दृश्य
पूरे बने हुओं ही के ठाठदार अक्स,
ऐसा कुछ ठाठ—
मुझे गहरी उचाट,
लगता है वे मेरे राष्ट्र के नहीं हैं।
उचटता ही रहता है दिल,
नहीं ठहरता कहीं,
ज़रा भी।
यही मेरी बुनियादी खराबी।

और, अब नये-नये मेरे मित्रगण
मेरे पीछे आये हुए युवा-बाल जन,
धरित्री के धन,
खोजता हूँ उनमें ही
छटपटाती हुई मेरी छाँह,
क्या कहीं वह मेरा रूपक-उपमान,
छिपी हुई कहीं कोई गहरी पहचान,
समशील, समधर्मा कहीं कोई है?

अच्छा है कि अटाले में फेंका गया मैं
एक प्रेमपत्र—
किताबों में डाल, बन्द कर दी गयी अक्ल,
काली-काली गलियों में
फिरती हुई आदमी की शक्ल,
अच्छा है कि अँधेरे में इलाका-बदर
मैं हूँ जवाबी गदर,
जिससे कि और ज़्यादा तैयारियाँ कर
आज नहीं कल फूट पड़ूँगा ज़रूर,
ज़रूर।
असंख्यक इत्यादि-जनों का मैं भाग
इसीलिए, अनदिखे,
सुलगाता धीरे-से आग,
जिसके प्रकाश में, तँबियाये चेहरों पर आप
संवेदित ज्ञान की काँपती ही
उठती है भाफ चुपचाप…
सच्चा है जहाँ असन्तोष,
मेरा वहाँ परिपोष।
वहाँ दिवालों पर टँगते हैं भिन्न मानचित्र,
चिनगियाँ बरसाते
लगातार विचारों के सत्र,

मेरे पात्र-चरित्रों की
आँखों की अंगारी ज्योति
ललककर पढ़ती है मेरा प्रेम-पत्र।
काँपता है वर्ग-मूल-अर्थ-भरा
त्रैराशिकी कोई स्मित स्निग्ध।
यथार्थों से चला हुआ
स्वर्गों तक पहुँचता है,
गणितों का किरणीला सेतु
पृथ्वी के हेतु।
लेकिन, हाँ उसी के लिए दिन-रात
नये-नये रन्दों और बसूलों से
लगातार-लगातार
मेरी काँट-छाँट
उनकी छील-छाल अनिवार।
ऐसी उन भयानक क्रियाओं में रम
कटे-पिटे चेहरों के दाग़दार हम
बनाते हैं अपना कोई अलग दिक्-काल,
पृथक् आत्म-देश—
दृष्टि, आवेश।
क्षमा करें, अन्य-मति
अन्य-मुख मेरे परिजन।।

[सम्भावित रचनाकाल 1963। राजनाँदगाँव। तारसप्तक के दूसरे संस्करण (1966) में संकलित]

ये आये, वो आये

1

ये आये, वो आये, ये चले आये
नोचते चले गये
चिन्दी खींच चरें से फाड़ते चले गये
मेरा बुशकोट अब लत्तर है
उनके मैल-पसीने के हाथों से
लगातार बद से बदतर है
वे साहब हैं
मेरे इस बुशकोट की आस्तीनें ग़ायब हैं।।

2

मैने उसे खूँटी से उतार
दूर फेंक दिया
फिंका कि दूरियाँ पारकर तिरकर वह
घूरे के पास एक
सूखी हुई तुलसी से चिपककर बैठ गया
पत्ती-विन शाखो की तीलियो पर जा लटका
उझककर फैल गया
उलटी रखी हुई झाड़ू-सी तुलसी पर
बुशकोट इज्जत का
काँटो से खेल गया
मुझको फजीहत मे
अजीव ढकेल गया !!

3

किताबें पढता हूँ लगातार
सूने मे देखता रहता हूँ
कि मेरे ग़रीब उस कपडे को क्या हुआ
कि मुझसे आज़ाद हो
घूरे पर खड़ी हुई तुलसी से किया प्यार
लगातार !!

4

इतने मे दसवी मजिल की सफ़ेद छत पर से
शिम्पैंज़ी
आता है सामने
हाथ मे एक बडा पपीता है
दूसरे मे पुस्तक है, गीता है।
पढता है ज़ोर से
सब लोग तमाशा देखते हैं, शोर
सुनते हैं, जगत् थरथराता है !!

5

और मैं बिजली के खम्भे पर सहसा चढ जाता हूँ
ऊँचे बढ जाता हूँ !!
कहता हूँ मेरा बुशकोट मुझे ला दो तो
मैं जो सोया हुआ हूँ मुझको जगा दो तो '
उगा दो तो !!

मेरे पात्र-चरित्रों की
आँखों की अगारी ज्योति
ललककर पढ़ती है मेरा प्रेम-पत्र !
काँपता है वर्ग-मूल-अर्थ-भरा
त्रैराशिकी कोई स्मित स्निग्ध !
यथार्थों से चला हुआ
स्वर्गों तक पहुँचता है,
गणितों का किरणीला सेतु
पृथ्वी के हेतु !
लेकिन, हाँ, उसी के लिए दिन-रात
नये-नये रन्दों और बसूलों से
लगातार-लगातार
मेरी काँट-छाँट
उनकी छील-छाल अनिवार !
ऐसी उन भयानक क्रियाओं म रम
कटे-पिटे चेहरों के दाग़दार हम
बनाते हैं अपना कोई अलग दिक्-काल,
पृथक् आत्म-देश—
दृष्टि, आवेश !
क्षमा करें, अन्य-मति
अन्य-मुख मेरे परिजन !!

[सम्भावित रचनाकाल 1963। राजनांदगांव। **तारसप्तक** के दूसरे सस्करण (1966) म सकलित]

ये आये, वो आये

1

ये आये, वो आये, ये चले आये
नोचते चले गये
चिन्दी खीच चर्र से फाड़ते चले गये
मेरा बुशकोट अब लत्तर है
उनके मैल-पसीने के हाथों से
लगातार बद से बदतर है
वे साहब हैं
मेरे इस बुशकोट की आस्तीनें ग़ायब हैं !!

2

मैंने उस खूंटी से उतार
दूर फेंक दिया
फिंका कि दूरियाँ पारकर तिरकर वह
घूरे के पास एक
सूखी हुई तुलसी से चिपककर बैठ गया
पत्ती-बिन शाखों की तीलियों पर जा लटका
उझककर फैल गया
उलटी रखी हुई झाड़ू-सी तुलसी पर
बुशकोट इज्जत का
काँटों से खेल गया
मुझको फजीहत में
अजीब ढकेल गया !!

3

किताबें पढ़ता हूँ लगातार
सूने में देखता रहता हूँ
कि मेरे ग़रीब उस कपड़े को क्या हुआ
कि मुझसे आजाद हो
घूरे पर खड़ी हुई तुलसी से किया प्यार
लगातार !!

4

इतने में दसवीं मंजिल की सफेद छत पर से
शिम्पैंजी
आता है सामने
हाथ में एक बड़ा पपीता है
दूसरे में पुस्तक है, गीता है।
पढ़ता है जोर से
सब लोग तमाशा देखते हैं, शोर
सुनते हैं, जगत् थरथराता है !!

5

और मैं बिजली के खम्भे पर सहसा चढ़ जाता हूँ
ऊँचे बढ़ जाता हूँ !!
कहता हूँ मेरा बुशकोट मुझे ला दो तो
मैं जो सोया हुआ हूँ मुझको जगा दो तो
जगा दो तो !!

6

शिम्फ़ैज़ी-गीता के जितने भी शब्द है
उनका मैं अर्थ जब उलटाकर सोचता
तब वाक्य बन जाते हैं
मेरे तन-मन के इलेक्ट्रॉन
नाचने लगते हैं,
उन वाक्यो को पढने और वांचने लगते है !!

7

अजीब तमाशा है,
कहता वह कीश मुझे
मैं अनस्तित्व हूँ
तुम्हारे अस्तित्व का एक खण्ड-तत्त्व हूँ
तुम मुझे बाँटते रहते हो
और मैं बँटता चला जाता हूँ
एक से दूसरे के पास
दूसरे स तीसरे के पास
बँटता और बढता चला जाता हूँ
मैं हूँ आत्म-सहार की शक्ति
पुरानी विरक्ति और भक्ति हूँ !!

8

इसलिए तुमने बुशकोट जो पहना था
सिर्फ एक गहना था
उसको तुम्हारे ही लोगो ने तोड दिया
और वह इज्जत का प्रतीक अब तुमस आजाद हुआ
अब घूरे पर तुलसी पर बैठ गया
वह तुलसी जो उलटी रखी हुई
झाड़ू सी घूरे के पास खडी हुई है
क्योकि अध्यात्म के चोग़े सब
अकादमी-कुर्सी पर शोभित हैं
इसीलिए तुलसी वह निन्दित है !!
ऐसा एक चोगा अब तुम भी खुद सिलवा लो !

9

बिजली के खम्भे के सिरे पर चढ करके
ऊँचा बैठा हुआ
वह जो मैं खुद हूँ
धक्के स नीचे गिर पडता हूँ
एक आग धरती के भीतर से

अकस्मात् उभर-उभर ऊपर उठ आती है
मैं फैल जाता हूँ
जलकर मैं सिर्फ एक गर्मी-सा लहराता
लहराता रहता हूँ ! ।

10

हवा मे थोडा-सा काँप उठा मुसकाया ।
छा गया ! !
उलटी रखी झाडू-सी झाडी-सी तुलसी को
शायद वह भा गया ! !
लेकिन मैं पूछता हूँ, ओ तुलसी
तू क्योंकर मूर्ख हुई
आज जहाँ ढेर-ढेर घूरा है वहाँ कभी आँगन था
बच्चो का जन-मन था
तू क्योंकर सूख गयी ! !
आज तेरे इस जमाने मे तेरे न होने का
दु ख मुझे अब भी है
इसीलिए, मेरा उत्क्षिप्त अब धारण कर
मेरे इस होने का पूरा निवारण कर । ✓

[संभावित रचनाकाल 1963 । राजनांदगाँव । भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

महाकाव्य के पन्ने

मेरे महाकाव्य के पन्ने
जिसमे इन सबका वर्णन है
उसके अलग-अलग पर्वो-काण्डो-सर्गो-
अध्यायो मे से
(अलग-अलग देशो म विखरे)
पन्नो का ही यह निज गुण है
उनमे लिखे वाक्यो के
भागते रास्तो पर प्रभावत.
घटनाएँ, नाटकीय विभ्राटकीय
या नृत्यात्मक
सगीतात्मक
अथवा चिन्तन-ज्योतित गम्भीर रूप लेकर

6
शिम्पैंजी-गीता के जितने भी शब्द हैं
उनका मैं अर्थ जब उलटाकर सोचता
तब वाक्य बन जाते हैं
मेरे तन-मन के इलेक्ट्रॉन
नाचने लगते हैं,
उन वाक्यों को पढ़ने और बाँचने लगते हैं !!

7
अजीब तमाशा है,
कहता वह कीश मुझे
मैं अनस्तित्व हूँ
तुम्हारे अस्तित्व का एक खण्ड-तत्त्व हूँ
तुम मुझे बाँटते रहते हो
और मैं बँटता चला जाता हूँ
एक से दूसरे के पास
दूसरे से तीसरे के पास
बँटता और बढ़ता चला जाता हूँ
मैं हूँ आत्म-संहार की शक्ति
पुरानी विरक्ति और भक्ति हूँ !!

8
इसलिए तुमने बुशकोट जो पहना था
सिर्फ एक गहना था
उसको तुम्हारे ही लोगों ने तोड़ दिया
और वह इज्जत का प्रतीक अब तुमसे आजाद हुआ
अब घूरे पर तुलसी पर बैठ गया
वह तुलसी जो उलटी रखी हुई
झाड़ू-सी घूरे के पास खड़ी हुई है
क्योंकि अध्यात्म के चोगे सब
अकादमी-कुर्सी पर शोभित हैं
इसीलिए तुलसी वह निन्दित है !!
ऐसा एक चोगा अब तुम भी खुद सिलवा लो।

9
बिजली के खम्भे के सिरे पर चढ़ करके
ऊँचा बैठा हुआ
वह जो मैं खुद हूँ
धक्के से नीचे गिर पड़ता हूँ
एक आग धरती के भीतर से

अकस्मात् उभर-उभर ऊपर उठ आती है
मैं फैल जाता हूँ
जलकर मैं सिर्फ एक गर्मी-सा लहराता
लहराता रहता हूँ । ।

10

हवा म थोडा-सा काँप उठा मुसकाया ।
छा गया । ।
उलटी रखी झाड़ू सी झाडी-सी तुलसी को
शायद वह भा गया । ।
लेकिन मैं पूछता हूँ, ओ तुलसी
तू क्योकर मूर्ख हुई
आज जहाँ ढर-ढेर घूरा है वहाँ कभी आँगन था
बच्चो का जन मन था
तू क्योकर सूख गयी । ।
आज तेरे इस जमाने म तेरे न होने का
दु ख मुझे अब भी है
इसीलिए, मेरा उत्क्षिप्त अब धारण कर
मेरे इस होने का पूरा निवारण कर । ✓

[सम्भावित रचनाकाल 1963 । राजनाँदगाँव । भूरी-भूरी खाक-धूल मे सकलित]

मेरे महाकाव्य के पन्ने

मेरे महाकाव्य के पन्ने
जिसम इन सबका वर्णन है
उसके अलग-अलग पर्वो काण्डो सर्गो-
अध्यायो म स
(अलग-अलग देशो म बिखरे)
पन्नो का ही यह निज गुण है
उनमे लिखे वाक्यो के
भागते रास्तो पर प्रभावत
घटनाएँ, नाटकीय विभ्राटकीय
या नृत्यात्मक
सगीतात्मक
अथवा चिन्तन ज्योतित गम्भीर रूप लेकर

चलती जाती हैं स्वभावतः !!
उन-उन देशों के कविजन
जब जिस सहज काव्य के द्वार तले।
भिन्न-भिन्न देशों में मेरे
महाकाव्य के पन्ने बिखरे हैं !!
नहीं जानते हैं मुझको जन
नहीं देख पाते पन्नों को
फिर भी, उनके मन में उसके
स्वर्णाक्षर कितने निखरे हैं !!
सभी जानते हैं कि परिस्थिति यों बिगड़ी है
एक ओर है उदासीनता
घोर उपेक्षा,
निज के प्रेतों पर चलती है
कवि की रोती-सी तन-छाया
तथा दूसरी ओर लालसा की आक्रामक चिर-नवीनता
लोभ-लाभ दृष्टि से विश्व की नयी समीक्षा !!
किन्तु, उसी के विरुद्ध, क्रोधित जन-जीवन का नव बल आया
सभी जानते दहक रही दुनिया की लाल-लाल आँख
तब उनकी वाणी सुनकर
सहसा आपस में कोई गले मिले
ऊष्मापूरित चुम्बन जाने किसने पा लिया
खुशी-खुशी बालक को कपड़े सिले मिले—
मिल गयी किसी को सहसा ज्योतिभरी पुस्तक
किसी ने नया दोस्त अनजाने आज़मा लिया
सबके घर में आ गये सभी उनके
वे लगे देखने भविष्य की सीढ़ियाँ
अगारों के दरवाज़े देखे उनने
ज्वालाओं की खिड़कियाँ···
घुस गये, धँस गये,
जलते घर में बस गये
सभी लड़के जवान लड़कियाँ !!
ऐसे मर्म-वेध के वे कवि-स्वर
उन अदृश्य बिखरे-बिखरे
पन्नों-पन्नों में भास्वर
मेरी खोयी और भुलायी गयी अनगिनत
नोटबुकों के वे भीतर
उनको सँभालकर तू रख रे !
वे आत्मा के भाव, गुप्तचर हैं !!

[सम्भावित रचनाकाल 1963 । राजनांदगांव । अप्रकाशित]

चम्बल की घाटी में

1

चिन्ता हो गयी, कविता को पढते ही,
उसमें से अँधेरे का भभकारा उमडा,
तिलमिला, आत्मा
प्रतिक्रिया करती हुई
चित्रमयी अजन्ता की गुहा-जैसी होती गयी।
और, फिर पीडाएँ वे इतनी बढी,
मेरी हर बुद्धाकृति
बेचैनी मे
दीवारो से नीचे आ
घूमने-भटकने लगी
चक्कर लगाने लगी
प्रागणो-दालानो मे
चिन्तामग्न।
इतने में उसको ही काटता-सा
उपहास करता हुआ,
दूर किसी जगल में, जबर्दस्त
गूँज उठा ठहाका।

2

कटे-उठे पठारो का, दर्रों का
धँसानो का वियाबान इलाका।
गुजान रात,
अजनबी हवाओ की तेज मार-धाड,
बरगदो बबूलो को तोड-ताड फाड,
क्षितिज पर अडे हुए पहाडो से छेड-छाड,
नही कोई आड।
मद्धिम चाँदनी मे, हवाओ के हमलो मे, मैं
अधखुले रहस्यो मे, टीलो के बीच
जाने किस फिक्र मे घूम रहा हूँ
कौन-सा है जिक्र?
इतने म लगता है हवाएँ ये तेज
सितारो के बीच-बीच अँधियारे स्याह
फासलो से चल,
अजीबोग़रीब किसी टोह मे रह,
यहाँ की जमीनो को
सूँघने टटोलने को

पहुँची।
अचानक जाने किस चेतना मे डूब
उर मे समाये हुए अपने तलातल
टटोलता हूँ
क्या कही मेरा अपराध ?
मेरा अपराध ?

इस-उस जमाने के धँसानो मे से
उमडते हैं अँधेरे के मेघ,
मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग,
रुका हुआ एक जबर्दस्त कार्यक्रम,
मै एक स्थगित हुआ अगला अध्याय
अनिवार्य,
आगे ढकेले गयी प्रतीक्षित
महत्त्वपूर्ण तिथि,
मैं एक शून्य म छटपटाता हुआ उद्देश्य
मुझे अफसोस है गहरा,
बर्फ है दिल, और स्याह है चेहरा,
सदियो की खून-रँगी भूलो के
किस्सो का किस्सा,
मेरी अन्तरात्मा का अश,
मेरी जिन्दगी का हिस्सा !!

लगता है लगातार चला आया इतिहास
मेरे सिर चढकर
घुमाता है मुझे आज
टीलो के मुल्क मे आगे बढ़-बढकर।
बियाबान रात,
जरूर कही कोई होगी आज वारदात,
भयानक बात !!

अचानक' दिमाग
उलट-पुलट होता है अँधेरा खयाल
भभकता है
लगता है—मेरे इस पठार
पर ये जो गोल
टीले व पत्थरी उभार
उनम विचित्र
कटी-पिटी निजत्व रेखाएँ
व्यक्तित्व-रेखाएँ !!

ज़िन्दा हैं सच,
जीवित अभी तक।
हो न हो,
बीते हुए ज़माने म ये
मनुष्य थे सब।
सम्भव है, ज्ञानी और त्यागी रहे हों···
और किसी पुराचीन कथा अनुसार
कोई यातुधान
(कोई जादू-दाँ)
इन्हें खींचकर
प्रलोभन-सूत्रों में इन्हें बद्ध कर
सहस्र आकर्षण-जालों मे इन्हें रुद्ध कर
शिला-रूप दे गया,
कर गया क़ैद
और ये भी ख़ुशी-ख़ुशी चट्टान हो गये
तिकोने या गोल
चपटे व पिद्दी तो कइयों की गरबीली नाक
अभी तक उठी हुई निकली है खूब !!

हाय हाय, शायद है, स्याह जादू-दाँ
(यातुधान) जिन्न,
यहीं कहीं घूमता हो अब भी।
छुपे-छुपे करता है पार
नदियों की धार
अँधियारे दर्रे।
चला जा रहा है वह कोई स्याहपोश। छाया-रूप

भयानक बेकली
उस जादूगर का छिपा घर खोजने
अजीब उतावला
इतना कि ख़ुद को ही लिये-लिये
चला जा रहा हूँ ··
पठारों पर, धँसानों म, दर्रों मे।
(अँधियारे सूने मे
तसवीरें भयानक
झलमलाती रहती)
चला जा रहा हूँ
सूखे हुए झरने की पथरीली गली मे।
भयानक गुहाओं म घुसता हूँ काँपकर,
मन मार
उतरता हूँ गड्ढों मे, खोहों के तले मे।

और यह सोचता हूँ
गुहाओं म जान के वियाबान
रास्ते पर कही पर
शायद है, मुझे मिल जायेगे
गड्ढो म (पत्थरो स ढँके हुए) रत्नकोष,
उस जादूगर ने जो उडाय थे
खतरनाक समझकर चुपचाप छुपा दिय
कि किसी चेतना-दीप्ति मे सचमुच खतरा है उसको
नही सामने उसके चल पाता अँधियारा जादू।
हाँ, कुछ चेतना-दीप्तियाँ
ऐसी भी होती हैं जिनस
खतरा है उसको।

कगारो कटानो पर सावधान सरककर
झरबेरी झुरमुट के पास थक बैठता कि
देखता हूँ
झुरमुट म हलचल काँपती,
कोई साँप पहाडी
निकलकर भागता है लहरीली गति म
मानो मेरी कविता की कोई पाँत
मुझसे ही भयभीत
भाग जाना चाहती
मैं उसे देखता हूँ बहुत बहुत ध्यान स
अब उसके पीछे पीछे चल रहा सावधान।
उस त्वरा-लहर का पीछा कर रहा हूँ।
और तब और तब
पहुँचता हूँ
चौडी एक पथरीली घाटी म चुपचाप।

अँधेरे म धुंधला, चट्टान विखराव
कटा पिटा, कटा पिटा
फैला है सभी ओर
पानी नही कही भी,
कही भी पानी नही।
और तब अचानक
कोई चीख कहता—
अब तक अथाह जो भरी पुरी नदी थी
वही आज
अपनी ही घाटी म डूब मरी!
चम्बल के (यहाँ आ) पैर ही उखड गय,

तुमने बहुत देर की,
तुमने बहुत देर की,
पानी की खोहें और थाहें सब सूख गयी,
तले सब फट गये,
दरारो मे प्यास भर गयी है,
भूखभरी गहराई खुली पडी कब से
जाने कब स ।"

थकी हुई परेशान निगाहे मैं
फेंकता हूँ सब ओर,
दूर कहीं आसमान-कोने मे धुंधले
तारों के कुहरीले फैलाव
और, बीच-बीच मे अँधियारी जगहें
जिनके असीमों मे घूमती
ज्योति की कोई कटी उँगली ।

एकाएक भान—
असम्भव, इस पूरे क्षेत्र म सब लोग
मारे जायें, मर जायें, असम्भव !!
चाहे जितनी उजाड
उचाट-सी लगे भूमि,
कुशल व चाहे जितना बलवान्
वह यातुधान हो,
लोग अभी जिन्दा है, जिन्दा !!
यहीं कहीं, वे भी ।

लेकिन, यह सच है कि
छलनाएँ असफल होते हुए देखकर
इन्द्रजाल त्याग, वह
खुलकर काम करे,
कभी-कभी सामने भी आ जाय,
दस्यु ही बन जाय,
हथियार-कारखाने चुपचाप
कायम करे, गिरोह बनाये और
आतक फैलाये !!

अपने ही भावों की भयानक
प्रतिध्वनि सुनकर
रेंगती है बर्फीली थरथर,
झुरझुरी दौडती है मेरी रग-रग मे।

अरे यह चम्बलघाटी है जिसम
पहाडो के बियाबान
अजीब उठान और धँसान निचाइयाँ
पठार व दर्रे
छोटी छोटी दून
कँटीले कगार और
सूखे हुए झरनो की
बहुत-बहुत तग
और गहरी है पथरीली गलिया
गोल गोल टील व खँडहर गढियाँ
बन्दूक कारतूस छर्रे !!

कोई मुझसे कहता है—
शान्त हा धीर धरो
और उलटे पैर ही निकल जाओ यहाँ से
जमाना खराब है
हवा बदमस्त है
बात साफ-साफ है
सब यहाँ त्रस्त हैं
दर्रों मे भयानक चोरो की गश्त है।

3

इतने म सहसा
पथरील झरने के पहाडी उतार पर
(साँय साँय हाय के सूने मे धडाके)
फूट पडी नारगी कत्थई गेरुई ज्वाला !!
लाल-लाल चादरें
सिन्दूरी झण्डियाँ
सुनहली पताकाएँ फरफरा रही हैं।
और आसमान म
कत्थई गेरुए धुएँ की बडी बडी लहरें
तैरती हैं हवा मे।
चिनगियो भरा झार
दूर-दूर चला तैर
दूर-दूर जा रहा।
हाँ वहाँ
एक गाँव धधक रहा
ग़रीबो का गाव एक
बिना ठाँव !!
खतरनाक लूट-पाट आग डकतियाँ

चम्बल की घाटियाँ !!

वही कहीं मैं भी
हाय-हाय करते हुए, भाग चले लोगों में भागता,
गठरी है सिर पर,
कन्धे पर बालक,
फटे हुए अँगोछे से बँधी हुई
बच्ची है कसी हुई पीठ पर,
बोझ है कई मन
यों मेरी कविता है बिना-घर
बिना-छत गिरस्तिन,
जिसमें कि मेरा भाव
ज्वलन्त जागता
जिसे लिये हुए मैं
देख रहा जमाने की गयी परिपाटियाँ,
चम्बल की घाटियाँ !!

4

अजीब है !!
सामने ही, तिकोनी पहाड़ी के सिर पर
गोल स्याह खुरदुरा
बहुत बड़ा सिफर एक
लेटा है खामोश,
मानो वह स्वयं कोई बहुत बड़ा शीश हो
कोई शिला-पुरुष हो,
विलक्षण स्वत्व वह,
गहन निजत्व वह,
टूटकर गिरे हुए तारे का बुझा हुआ हिस्सा,
मानो कोई बहुत पुराना-सा भूला हुआ क़िस्सा,
उसमें से निकलते हैं काँपते-से स्वर कुछ
सचमुच—
सुनता हूँ !!
भयानक निस्वय जड़ित हूँ कि उसमें से मानवीय
शब्दों का सुकुमार उदास-सा झरना ही
निकलता है !!
आश्चर्य !!
शिला वह कहती है—
"प्रस्तरीभूत मैं गतियों का हिम हूँ,
बीच ही में टूट गया कोई पराक्रम हूँ,
चट्टानी-टीलों की जमी हुई तह से

दुनिया की पाषाणीभूत सतह से
सामंजस्यों के कठघरे में खुद
संगति-बद्ध ही रहने की है ज़िद
परन्तु, सन्तुलनात्मक स्थितियाँ
जैसी कि वे हैं
छि है, थू है, हैं है।
खयालों की, सोच-विचारों की जाँत
अँधेरे में चलती
अज्ञात हाथ ही घुमाता है उसको
किसी मशीन का पुरज़ा है वह भी
आदत, आदत, आदत,
दिल व दिमाग की, रूह की आदत !
खुद के बनाये ये सभी शिकंजे
उनके पंजों से छुटकारा हो अब।
प्रकाण्ड अनबन,
निज से ही संघर्ष,
चाहिए मुझको दीप्त अनवस्था
इतनी कि स्वयं ही टूटकर
शून्य गगन में
ब्रह्माण्ड-धूल के परदे-सा बन जाऊँ,
फैल जाऊँ, तन जाऊँ !!
उरस्पटल पर
सहज झलमलायें
सुदूर-आकाश-यात्री की किरनें
और मैं उनका गुरुत्व-आकर्ष,
चुम्बक शक्ति,
ब्रह्माण्ड-अनुभव हृदय में पा सकूँ
सीख सकूँ विराट् गतियाँ !!"

मैं उस वाचाल टीले के आस पास
उगी हुई ऊँची ऊँची
घास में छुपा हतश्वास
पाता हूँ—पत्थरनुमा वह कोई मन
पाषाणी नेत्रों में व्रण हैं व्रण
खून बहाते-से आँखों के घाव,
घावों में सचाई की किरकिरी
कसकती !!
कसकते हैं खूनभरी आँखों में सत्यों के अणु-रेणु
दुखते ही रहते,
दिख नहीं पाते हैं,

दिख नही पाते
पर, कुछ उनकी ही पीडाओ की बुनियाद पर ही
खडा किया गया एक ढाँचा,
एक फिलॉसफी,
अथवा अपनी ही आखो म चढने का गोल-गोल ज़ीना,
दिल सहलाने की तरकीब,
पापाणत्व अलकृत करने की विधियाँ !!
(क्या वह कोई नया मसीहा ?)
फिर भी, यह सच है
आँय-बाँय शाँय के सिवाय भी उसमे,
खुदगर्ज़ हाय के सिवाय भी उसमे,
कुछ तेजस्क्रिय
सत्यो के अणु है,
पापाणी ढाँचे के पत्थरी पुरज़ो मे जकडे
रत्नो के कण हैं ।

ऐसी जो अँधेरे म पडी हुई
किरनो की भीतरी गुत्थी
चिलकती-लौकती,
कहती है—
"हमने तो पहले भी कह' था ।
पर, तुम
अनसुनी करते हो आदतन !"
किन्तु, वे जडता के पजे
अपनी ही स्थितियो का औचित्य
करते हैं स्थापित,
विशेप दृष्टि से चरित्र-विश्लेप
निज इतिहासिक-विवरण
प्रस्तुत करते हैं,
न्यायोचित वे बताते हैं निज को,
(अनसुनी करते हैं आत्मा की आवाज़)

परन्तु, भीतर भास्वर
फँसे हुए मणि-गण
सवेदनाओ की धाराओ द्वारा
करते हैं आघात,
पल-भर चैन न देते हैं
मिट्टी के कणो को ।

मिथ्या का (उर मे) परम्परा-क्रम,

भूलें करने की मशीन वह जो
चोट खा जाती तो हकलाने लगती,
इतने मे तथ्यो को और-और
उघार रखती हैं रत्नो की किरनें
झोल पड जाता है पत्थरी दिल मे।
परन्तु, सहसा, विचित्र परिणाम,
दृश्य बदलता !!
तारा-च्युतियो के आकाश नीचे ही,
बियाबान अँधेरे के गुंजान तल मे
प्रचण्ड पाषाण
मेरा यह टीला
अस्तर-विवरो के केन्द्रों मे भीषण
भभककर··
अग्निमान !
अचानक अग्निमान !!
अन्तर-ब्रह्माण्ड
स्याह लकीरो से कटा-पिटा, लेकिन
देदीप्यमान है पूरा का पूरा !!

(परन्तु, यह भी तो सच है कि ऐसी
समस्त अग्नियाँ, अकेले मे जलती हुई
करती हैं अपनी ही
ऐसी की तैसी !!
क्या यह सच नही !!)

5

पहाडी इलाका,
सामजस्य है सूखा शिलीभूत,
भूख है दिल मे,
दिमाग को फाका।
झूठी है सगति
झूठी हैं बुद्धियाँ,
सब आत्मशुद्धियाँ झूठी,
साझे हैं खतरनाक,
समझौते भयानक, बदरग खाका।
पहाडी इलाका !!
इतने मे अँधियारा आसान फाडता-सा
कोई कही चीखा,
कोई कही चीखा !!

अघट है घटना···
अँधेरे मे अनदिखे रास्ते मे कोई आ
टीले के दुख-भरे
कमजोर सीने पर सहसा
पहाड के बोझे-सा बैठता।
टूटती जा रही पसलियाँ क्रमश,
सुई की नोकों-सी बारीक
थरथरी गहरी।

इतने मे, भीतरी हिस्सो से उठकर
वेदना कहती—
"ओ मेरे भयानक पत्थरी
शिकजो,
उनमे फँसे हुए रत्नो,
मूर्ख हो दोनो
तुम्हारे जो सीने पर सहसा आ बैठा
वह एक भयानक डाकू है · समझे !!
डाकू है डाकू !!"

सुनते ही, *टीले की छाती मे खड्ढा-सा पड गया*,
खुद की ही हड्डियाँ
जलने की क्षार-सी आ गयी,
खून टपकता है भीतरी घर मे।
हाय···
महाकाय दस्यु
नाटा है, काला है, मोटा है, जगली
बिखरी है दाढ़ी,
कन्धे से लटका
सीने पर कारतूस पट्टा !!
हाथ मे रायफल !
क्रोधी है बन्दूक,
देख रही वह तो
दूर वहाँ, दूर वहाँ
सिन्दूरी, गेरुए, ज्वालाभरे गाँव के
दहक रहे हिस्से,
देख रही बन्दूक
भीतो पर चढ रही लपटें,
अनाज के बडे-बडे
ढेरो पर नाचते हैं सुनहले भूत, और
घास-गजियों पर

केसरी जिन्न के लाल-लाल तुर्रे
फरफरा रहे हैं।
खपरैलो-चढी हुई
सिन्दूरी जीभों की लहरे
आसमान चाटने को बढ रही प्रतिपल।
यहाँ वहाँ, यहाँ वहाँ
चीज़ो मे लगी हुई
ज्वाला की झालरें रगीन
किसी काले खम्भे ने पहनी है अगारी पगडी।
दबक कर, पीछे हट,
और-और पीछे जा,
गोल क़तार मे खडा हुआ अँधेरा
धुंधला-सा, फीका-सा, पड रहा हर बार।
लाल-लाल उजाले मे
खून-सने पेड
अँधेरे म खडे हुए साँवले पेडो को देखते हैं भयभीत।
डाकू के हाथो म अँधियारी बन्दूक
देख रही वारदात
अपनी ही करामात।

एकाएक टीले के सामने,
उठ खडे होते हैं सवालो के बडे-बडे ढूह;
ढूहो पर खडे हुए
अँधियारे इरादो के धड
इशारो से करते हैं
किन्ही स्याह सतहो की बात,
उदार चेतनाध्यक्ष का खून
राष्ट्राध्यक्ष का खून
आत्माध्यक्ष का खून,
पृथ्वी पर कही पर
कोई वारदात,
ऐसी कि जल उठे
दुनिया का सिर, पैर, हाथ
इतने मे, टीले के सामने
सिर-कटे प्रश्नो के ठूँठ !!
ठूँठो के सूखे हुए
हाथो पर किसी बदनीयती के गिद्ध
जिन्हे देख
याद आती खुर्राट निगाहे
दावँ-पेच, झगडे व युद्ध !!

टीले के सीने में भभककर अड़ता है
ज़िदभरा कोई मज़मून
सन्नाकर मारता है तेज-तेज़
व्यंग्यों की ईंट।
भीतर का दूसरा हिस्सा भी
चुप नहीं है
भीतर का दूसरा पक्ष भी
चुप नहीं है,
फैलाता आगभरे हमलों की धूम,
तड़ातड़ टकराने लगती है
विचारों की लाठियाँ
हवाओं में घूम।
खून-रँगे माथों को चूम
खयालों की मुँडेरों से ज़ोरदार
पत्थरी खूब बौछार।
भयानक
दंगा है भीतरी हिस्सों में तेज,
फेंककर मारी जाती कुरसियाँ
माथों को तोड़ती है मेज,
विधानों की अन्त सभाओं में
वारदातें सनसनीखेज़ ! !
सवालात, सवालात, सवालात
अपने ही गोरे-गोरे चम्पई चेहरे को
खूब मार बैठते हैं
अपने ही काले-काले हाथ।
सूझ-बूझ
जूझ-जूझ पड़ती है
खुद के हाथ और खुद का ही चेहरा भी
लगता है ग़ैर,
इसीलिए भाग खड़े होते हैं धीरज के पैर,
अपने ही पाले हुए खयालों की
बड़ी-बड़ी मंज़िलें खड़ी-खड़ी जलतीं,
ज़हरीली गैस, उगलती है ग़लती,
भयानक हो गयी ज़िन्दगी की सड़कें

टूट फूट, टूट-फूट, सब अस्तव्यस्त,
टीले के वक्ष में सब कुछ ध्वस्त,
पर यह स्पष्ट
प्रचण्ड है तथ्य,
अखण्ड है ढाँचा,

पाषाणी कारा
दृढ, जबर्दस्त !!

परन्तु, घबराये भीतरी अणु-रेणु
पूछते हैं अपने अखण्ड से सहसा—
"ओ मेरे पाषाण,
ओ मेरे टीले
आखिर तू डाकू की कुरसी ही क्यों हुआ !!
क्यों उसने तुझको ही छाँटा और चुन लिया ?
तुझ पर ही आखिर
बैठ गया क्यों वह ?"

सारे ही भीतरी अणुओं में तत्पर
बहस है, दिन में से निकल आयी रात पर
झगडा है ठीक इसी बात पर
क्या कहें, किसे कहें !!

ठीक, इसी बीच
दौड़े चले आते हैं
ताज़ी-ताज़ी हवाओं के हज़ारों बहाव
ज़ोरदार,
लाख-लाख आँखों से दुनिया को देखता
व थाहता स्वभाव एक अनिवार !!
उसकी हर लहर में बारीकियाँ,
और, हर बारीकी का एकाएक
निर्णायक हस्तक्षेप,
उसकी हर तरंग में सुनहली
आग जगी वन-तरु-फूलभरी
बारीकियाँ
और हर बारीकी का निर्णायक
अहक हस्तक्षेप
ऐसा हस्तक्षेप कि मानवानुभव सब
अकस्मात् प्रबुद्ध अंगारों को लिये नयी
विशद विशाल किसी
भूमिका में बँध जायें,
अपार प्रकाशमय व्याख्या में सध जायें,
और हर नजर में नया पहलू निकल आये,
और मन बदल जाय।
ऐसी है वह हवा, जिसकी हर
लहर में आत्मा की सहल

धाराओं का वेगवान् स्पर्श,
और, उस स्पर्श में
मानवेतिहासों के घूमते-भटकते हुए,
अगार-वर्ष
दूर देश देशों का दहत् जीवनानुभव !!
विवेकों के प्रतिनिधि
किसी स्पष्ट लक्ष्य
का छवि-उत्कर्ष

एकाएक वह हवा झूमकर
जाने किस प्रीति से भर
टीले के कपोलों को चूमती है रह-रह
पत्थरी ढाँचे में थरथरी
अश्रु सी आर्द्र—
भीगा हुआ मन
चला जाता है किसी दूर देश
खामोश सिसकियाँ भरने।

स्वप्न
अँधेरा है
नीली काली सतह है पानी की सभी ओर,
और, जल सतह पर सर्वत्र
नक्षत्र तैरते हैं
लौ लौ लौ
दीप
तिर रहे, जा रहे दूर-दूर !!

टीले ने स्वप्न से जाग
कहा हवा से—
' ओ, नभ-यात्री,
अगिनत प्रकाश वर्षों की यात्राएँ दो तुम।
तडित् प्रहार-सा प्राप्त हो ऐसा कि
ज्ञान का आघात
पाषाण-अणु रेणु
भभकें व उड जायें,
जा बसें नक्षत्रों में ही सहसा।
ज्वलन्त अनुभव
ऐसे कि अभिनव विद्युत् धाराएँ झकझोर
ज्ञान का वेदना-रूप में लहरायें
ज्ञान की पीडा

पाषाणी कारा
दृढ, ज़बर्दस्त !!

परन्तु, घबराये भीतरी अणु-रेणु
पूछते हैं अपने अखण्ड से सहसा—
"ओ मेरे पाषाण,
ओ मेरे टीले
आखिर तू डाकू की कुरसी ही क्यो हुआ !!
क्यो उसने तुझको ही छाँटा और चुन लिया ?
तुझ पर ही आखिर
बैठ गया क्यो वह ?"

सारे ही भीतरी अणुओ मे तत्पर
बहस है, दिन मे स निकल आयी रात पर
झगडा है ठीक इसी बात पर
क्या कहे, किसे कहे !!

ठीक, इसी बीच
दौडे चले आते है
ताज़ी-ताज़ी हवाओ के हज़ारो बहाव
ज़ोरदार,
लाख-लाख आँखो से दुनिया को देखता
व थाहता स्वभाव एक अनिवार !!
उसकी हर लहर म बारीकियाँ,
और, हर बारीकी का एकाएक
निर्णायक हस्तक्षेप,
उसकी हर तरग मे सुनहली
आग जगी वन-तरु-फूलभरी
बारीकियाँ
और हर बारीकी का निर्णायक
अहक हस्तक्षेप
ऐसा हस्तक्षेप कि मानवानुभव सब
अकस्मात् प्रबुद्ध अगारो को लिये नयी
विशद विशाल किसी
भूमिका मे बँध जायँ,
अपार प्रकाशमय व्याख्या मे सध आयें,
और हर नजर मे नया पहलू निकल आय,
और मन बदल जाय।
ऐसी है वह हवा, जिसकी हर
लहर मे आत्मा की सहस्र

धाराओं का वेगवान् स्पर्श,
और, उस स्पर्श में
मानवेतिहासों के घूमते-भटकते हुए,
अगार-वर्ष
दूर देश-देशों का दहत् जीवनानुभव ।।
विवेकों के प्रतिनिधि
किसी स्पष्ट लक्ष्य
का छवि-उत्कर्ष

एकाएक वह हवा झूमकर
जाने किस प्रीति से भर
टीले के कपोलों को चूमती है रह-रह
पत्थरी ढाँचे में थरथरी
अश्रु-सी आर्द्र—
भीगा हुआ मन
चला जाता है किसी दूर देश
खामोश सिसकियाँ भरने।

स्वप्न···
अँधेरा है
नीली काली सतह है पानी की सभी ओर,
और, जल सतह पर सर्वत्र
नक्षत्र तैरते हैं
लौ · लौ···लौ
दीप
तिर रहे, जा रहे दूर-दूर ।।

टीले ने स्वप्न से जाग
कहा हवा से—
"ओ, नभ-यात्री,
अगिनत प्रकाश वर्षों की यात्राएँ दो तुम।
तडित्-प्रहार सा प्राप्त हो ऐसा कि
ज्ञान का आघात
पाषाण-अणु-रेणु
भभकें व उड़ जायें,
जा बसें नक्षत्रों में ही सहसा।
ज्वलन्त अनुभव
ऐसे कि अभिनव विद्युत्-धाराएँ झकझोर
ज्ञान का वेदना-रूप में लहरायें
ज्ञान की पीड़ा

रुधिर-प्रवाह की गतियो मे
परिणत होकर
अन्त करण को व्याकुल कर दे !!
ऊँचे से ऊँचे सशोधनो की
अग्नियाँ दहके,
आत्यन्तिक शत अनवस्थाएँ,
गतिमय सामजस्यो का व्यापक
क्रमश विकसन,
पुन सगठन पुन परीक्षा, पुन प्रवर्तन,
पुनरपि परिणति
ऐसी गतिमय सगतियो की पीडाएँ दीजिए
परन्तु, पहले
पत्थरी ढाँचे से छुटकारा मिल जाय।"

अपनी ही धारा मे बहता चला गया
वह दृपद्-आत्मा—
'पत्थरी ढाँचे म कैदी है हम सब,
लेकिन
अपने समाज मे अकेला हूँ बिलकुल,
मुझम जो भयानक छटपटाहट है
नही वह किसी मे,
इसलिए, अपना ही श्रेणीगत
साम्य है जिनसे,
उनसे ही गहरा है विद्वेष—
विरोध, विरोध, विरोध
किन्तु जो दूर है,
अलग, पृथक् है
जो अति भिन्न है
वे प्रियदर्शन सहचर मित्र हैं मेरे
परन्तु, शत गुण-धर्म जो उनके
ले नही पाता हूँ चाहने पर भी।

विचित्र स्थिति है
दु खान्तक यह प्रभीम नाटक
हर एक पल, नव उद्घाटनो को
नवीन दृश्यो को प्रस्तुत करके
काटता भीतर
अब यह नयी एक आफत
सीने पर जम गयी।
दस्यु के देह की चट्टान

बैठी है उर पर।
फुप्फुस टूट रहे
क्या करूँ, क्या करूँ!!

थम गयी टीले की काँपती आवाज़।
क्षितिज पर भूरे व काले-से बादल
घने-घने, बिखरे
रजाई के चिथरे!!
दर्द हैं खामोश
मानो वह कोई गुप्त रोग है अनकहा
व्यक्तित्व ही का।

खड़ी-खड़ी सुनती ही जाती थी यह सब
पवन की लहरें,
क्या कहे, कैसे कहे!!
समझाने पर भी
क्या मानेगा टीला!!
नहीं, नहीं!!
परन्तु, कहना ही होगा,
कहना ही चाहिए!!

पवन ने फैलायी बाँहें,
सहलाया दृषद् के घबराये उर को
परन्तु, उसकी वाणी में हिम था,
कठिन, नुकीली चोटों का क्रम था।
कहा—
"छाती पर तुम्हारे···
अकड़कर ठाठ से
बैठी जो डाकू की चट्टानी मूरत,
तुम्हारी ही फैल-मुटाई हुई सूरत
तुम्हारी ही आकृति।
अँधेरे में रहता था अब तक छिपा हुआ
जो निज-सन्दर्भ,
जो निज-सम्बन्ध,
जो गुप्त प्रक्रिया गहन निजात्मक
वह देह धरकर
दस्यु-रूप
बैठ गयी उर पर।

भीतरी दरों के अँधेरे में चलते हैं पैर

इस तरह ओझल
कि जान नहीं पाते है हाथ,
इतने कुछ गुप्त
कि जान नही पाता है मुख,
वहाँ किसी पाताली थाह मे
समझौते ''और
साझे हैं चुप,
ठीक उन्ही से कि
जिनसे है विरक्ति
जिनके प्रति रहा आया
भीतरी विरोधो का ज़ोर
हाँ, ये साझे और समझौते किसी के मार्फत।

आदतन,
हाँ, हाँ इरादतन,
बुराई की उपेक्षा
अपने ही कारण,
जिसको कि अनदेखा।
करते ही रहने का धन्धा है तुम्हारा,
उसको बढाने मे तुम्हारा भी योग है।
पाताली समझौता उसी से है गहरा।
ऐसी उन भयानक गतियो का कारक
अस्तित्व
स्वय है
तुम्हारे निजत्व का
बृहत्तर स्मारक।

शिलीभूत भूमि से
सामजस्यो का घनीभूत जितना
यत्न है तुम्हारा,
उतनी ही बजर बनती है दुनिया,
उतनी ही ज़िन्दगी उजाड बनती
उतनी ही दृढ है पाषाणी कारा
ऐसे ही सामजस्यो की वह जो,
दुष्ट व्यवस्था की वह जो
प्रतिनिधि-मूर्ति,
तुम्हारे ही उर पर
दस्यु की चट्टानी आकृति बनकर
दबग रौबील ठाठ से बैठी,
छाती पर चढी हुई स्याह पहाडी

मात्र बृहत्कृत बिम्ब है तुम्हारे ही निज का
तुम्हारे स्वरूप का मूर्त महत्कृत
रूप है वह तो।

दस्यु-पराक्रम
शोषण पाप का परम्परा-क्रम
वक्षासीन है,
जिसके कि होने में गहन अंशदान
स्वयं तुम्हारा !!
इसीलिए जब तक उसकी स्थिति है,
मुक्ति न तुमको।
याद रखो,
कभी अकेले में मुक्ति न मिलती,
यदि वह है तो सबके ही साथ है।

मेरी सलाह है—
लुढको (मैं तुम्हें देता हूँ धक्का,
गति और वेग)
वक्षासीन उस दस्यु को लेकर
लुढकते चले जाओ
पहाडी उतार पर,
(वह पिस जायगा)
गोल-गोल वेग के पथ पर
बाधा से टकरा उछलोगे सहसा,
टूटकर बिखरोगे खाई में अँधेरी।
और, उस गहन तलभूमि में अपना
मूल्यों का विस्तार
मैंगनीज, फैल्स्पार,
नायट्रेट, फ्लुओरिन
क्वार्ट्ज
खोलकर रख दो,
क्योंकि वहाँ भी
लोग चले आयेंगे
बीनकर, सब उठा ले जायेंगे।
अवश्य ही उपयोग करेंगे तुम्हारा।
अपने ही दरों के
लुटेरे इलाकों में जोरदार
आज जो गिरोह हैं,
छुपे हुए, खुले हुए, उनके
भयानक हमलों से पीडित

जन-साधारण को उनकी ही टोह है।
पूर्ण-विनाश और अनस्तित्व उनका
तुम्हारे निजत्व का चरम विकास है
इसलिए, ओ दृपद-आत्मन्
कट जाओ, टूट जाओ।
टूटन से विस्फोट-शब्द जो होगा
गूँजेगा जग-भर।
किन्तु, अकेली की, तुम्हारी ही वह सिर्फ
नहीं होगी कहानी ।।

[सम्भावित रचनाकाल 1964। राजनांदगाँव। *कल्पना*, अगस्त 1964, में प्रकाशित। **चाँद का मुँह टेढ़ा है** में संकलित]

कुछ कवितांश

1

क्रोध के अगार की उस तीक्ष्णता स
हो गयी ज्वाला सफेद
अब न कोई बच सकेगा गिर, जलाकर
हो गया जलता अभेद
क्रोध जो जलता रहा ऊषा-कपोलो—
पर हुआ दिन का प्रकाश
व्योम की उस उष्णता मे निखर आया
नीलिमा का हास।

सूर्य नभ तपता हुआ भी दे रहा है
फूल को उन्माद
शीत निशि, जलती अँगीठी लाल, देती
गीत को आल्हाद।
सूर्य-जल खेतीहरो का है सखा वह
खेत का आनन्द
और घर भर की सखी जलती अँगीठी
शीत का आनन्द
मैं रहा जलता हुआ भी यदि तुम्हारे,
प्राण का सम्बन्ध
तो हुआ सम्बन्ध भी जलकर क्षितिज-सा
तो सफल आ-क्षितिज मेरी ज्योति के
फैलाव का आनन्द

[सम्भावित रचनाकाल 1940-41। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

2

पृथ्वी को प्रात. सविता का नमस्कार
जनगण को मेरी कविता का नमस्कार
मैदानो के वन-पथ भोले, आज तुम्हे—
मुसकान अमिय का इस पूनो का नमस्कार

इन झरनो को कोमल किरनो का नमस्कार !

जग गण है तुम हो वन-फूलो-से भोले
स्वाभाविक हो झरनो स, अन्तर को खोले,
तुम मुग्ध सरल उन्मुक्त हँसी ऊष्मा-वर्षी
तुम शारदीय हो धूप कपूरी-स फैल ।

तुम रहो टीन की गुमटी म या राहो पर
पर महत् सृष्टि के शिशु हो तुम निज पर निर्भर
आधे सड टाट की दीवारो पीछे—
तुम आज भल ही लगो कदर्थक नगरो को
तुम आज अपरिष्कृत लगो भले ही सस्कृति की
आत्मा क खण्डहर की विदुषी कबरो को ।

इतिहास तुम्हारी छाती म घुमडन बनकर
मरी आँखो म दृश्य बना नूतन दिन का
हे उत्तराधिकारी, तुम ब्रह्माण्डो के
भावी शासक तुमम सौरभ है चन्दन का ।

[सम्भावित रचनाकाल 1948 49 । **रचनावली** के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

3

एक जो विक्षाभ सा मेरे हृदय म
रात-दिन करता जला
वह आँसुओ की धार मे बहता नही
आता न भर मेरा गला ।
किन्तु काली रात बाजू म यहाँ
वह तडपती रोती सदा
चुपचाप मेरे हृदय के मैदान म
जो भी सजग मन भूलता
अन्तर्निहित गहराइयो की आपदा
अत्यन्त सूखी हँसी हँसती जिन्दगी
वह व्यग्य मे ही बोलती
जलते हुए भूकम्प का धक्का लगा
गहराइया मुँह खोलती
वे प्राण की गहराइयाँ काली भयद
क्या व्यक्ति की सम्पत्ति है ?
उनम तिमिर की विश्व छायाएँ बसी
वे विश्व की आपत्ति है !

निरन्तर जिस पर चला अब तक दिमाग
उखड़ती वे पटरियाँ
मैं देखता हूँ रोज़ अपने सामने
इन्सानियत की ठठरियाँ
क्यो जरूरी हो कि मै ज़िन्दा रहूँ
ज़िन्दा रहे सज-धज यहाँ
जीवित रहे सौन्दर्य इतराता हुआ
जब देश ने इतना सहा ?
जीवित रहे अध्यात्म के वे महल क्यो
जब ज़िन्दगी गुल हो गयी
ज़िन्दा रहे क्यो शगल जीने का इधर
जब अहमियत कुल खो गयी
इन्सानियत ही हो गयी है जब फना
जब जिस्म खाली ही रहा
वह हँस रहा, वह खा रहा, वह जा रहा
वह वासना ही पी रहा

[सम्भावित रचनाकाल 1948-50। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

4

सहसा एक दिन
ये फिर गये थे पाँव सीधे उस तरफ ही
हो गयी है बात अब बिलकुल पुरानी
कुछी रेखाएँ बची बनकर कहानी

याद आता,
दूर से प्रासाद दिखता था कि जैसे स्वप्न हो वह
स्वप्न के गृह-सा अजब धुँधला
अजब दूरी लिये वह स्थिर खडा था
यो कि मानव से अपर मधुलोक की चितवन अपरिचित
अपरिचित सौन्दर्य सचित।
जब घुसा मैं
तभी धडकन बढ गयी थी
किन्तु अन्वेषण-रुचिरता, और मै आश्चर्य का
गुरुतर पुजारी
बढ गया था।
मुझे आती याद बातें सिर्फ दो ही
एक तो जब मैं कला-सौन्दर्य-भवनो मे विहरता

इन झरनो को कोमल किरनो का नमस्कार !

जग गण है तुम ही वन फूलो-स भोन
स्वाभाविक हो झरनो स अन्तर को खोल
तुम मुग्ध सरन उन्मुक्त हँसी ऊष्मा वर्षी
तुम शारदीय हो धूप कपूरी-स फल।

तुम रहो टीन की गुमटी म या राहो पर
पर महत सृष्टि के शिशु हो तुम निज पर निभर
आध सड टाट की दीवारा पीछे—
तुम आज भल ही लगो कदथक नगरो को
तुम आज अपरिष्कृत लगो भने ही सस्कृति की
आत्मा क खण्डहर की विदुषी कब्रो को।

•

भावी शासक तुममॅ सौरभ है चन्दन का।

[सम्भावित रचनाकाल 1948 49। रचनावली के दूसरे सस्करण म पहली बार प्रकाशित]

3

एक जो विक्षाभ सा मेरे हृदय म
रात दिन करता जला
वह आँसुओ की धार म बहता नही
आता न भर मेरा गना।
किन्तु काली रात बाजू मे यहाँ
वह तडपती रोती सदा
चुपचाप मेरे हृदय के मैदान मे
जो भी सजग मन भूलता
अन्तर्निहित गहराइयो की आपदा
अत्यन्त सूखी हँसी हसती ज़िन्दगी
वह व्यग्य म ही बोलती
जलते हुए भूकम्प का धक्का लगा
गहराइयाँ मुह खोलती
वे प्राण की गहराइयाँ काली भयद
क्या व्यक्ति की सम्पत्ति है ?
उनम तिमिर की विश्व छायाएँ बसी
वे विश्व की आपत्ति हैं !

निरन्तर जिस पर चला अब तक दिमाग
उखडती वे पटरियाँ
मैं देखता हूँ रोज़ अपने सामने
इन्सानियत की ठठरियाँ
क्यो जरूरी हो कि मै ज़िन्दा रहूँ
ज़िन्दा रहे सज-धज यहाँ
जीवित रहे सौन्दर्य इतराता हुआ
जब देश ने इतना सहा ?
जीवित रहे अध्यात्म के वे महल क्यो
जब ज़िन्दगी गुल हो गयी
ज़िन्दा रहे क्यो शगल जीने का इधर
जब अहमियत कुल खो गयी
इन्सानियत ही हो गयी है जब फना
जब जिस्म खाली ही रहा
वह हँस रहा, वह खा रहा, वह जा रहा
वह वासना ही पी रहा

[सम्भावित रचनाकाल 1948-50। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

4

सहसा एक दिन
ये फिर गये थे पाव सीधे उस तरफ ही
हो गयी है बात अब बिलकुल पुरानी
कुछी रेखाएँ बची बनकर कहानी

याद आता,
दूर से प्रासाद दिखता था कि जैसे स्वप्न हो वह
स्वप्न के गृह-सा अजब धुँधला
अजब दूरी लिये वह स्थिर खडा था
यो कि मानव से अपर मधुलोक की चितवन अपरिचित
अपरिचित सौन्दर्य सचित।
जब घुसा मैं
तभी धडकन बढ गयी थी
किन्तु अन्वेषण-रुचिरता, और मैं आश्चर्य का
गुरुतर पुजारी
बढ गया था।
मुझे आती याद बातें सिर्फ दो ही
एक तो जब मैं कला-सौन्दर्य-भवनो म विहरता

कला-स्वप्नों के सृजक
उन चित्रकारों के मनों में था विचरता
उल्लसित हो
विश्व के आश्चर्य से मैं समुत्सुक हो
तभी कुम्हलाए रुचिरतम फूल सचय की
मधुर, कुछ उग्र सौरभ आ रही थी
यों लगा जैसे अमानव काम-मधुता
और कुछ निर्मानवी-सी रसोत्कटता
उग्र होकर
भर रही थी।
उल्लसित था किन्तु विचलित सुविस्मित था।
गीत, नूपुर, और रमणी
का सबल वातास
जीने से गया नीचे
कि मैं भी चढ़ गया ऊपर।

कुछ नहीं!
कुछ रसिक जन थ, गीत था, सगीत का था साज
जन सिर हिलाते थे मस्त थे
सौन्दर्य चुम्बन मे खिंचा, आलिंगनों में बद्ध होकर
हृदय के मैदान श्यामल बादलों से झूमता था।
पर यहाँ भी एक था आश्चर्य!
सब सगीत-साधन मधुरतम पर यन्त्रचालित-सा··

[सम्भावित रचनाकाल 1950-51। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

5

विद्युत् की गहरी तीव्र नील
उड़ती चिनगी के आभा-कण
जीवन के अन्धकार पथ पर
चिन्तन के क्षण!

इनके गहरे आलोक वलय—
मे साक्षात्कारी विध्वसक
वह क्षुद्र धूल-धूसरित प्रलय
जो चूम रहा उत्तापाकुल
सूखे होठों से गौर चरण
भर आलिंगन जो चूम रहा
सद्योजन्मा उत्कलित सत्य के अरुणाधर

उत्फलित भावमय, मृदु कपोल गम्भीराशय !!

मैं पुराचीन-आत्मत्व विदारक, जडी भूत
परतो के उर-सभारो का
आलोचक अन्तक विध्वसक
वह महाप्रलय !! स्वप्न के नयन
चिन्तन के क्षण !!

[सम्भावित रचनाकाल 1950-51। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

6

तुम पास रहा या रहो दूर,
तुम मेरे लिय रहो नित कोमल
या कि हमेशा रहो क्रूर

अपमानो के क्षुब्ध स्रोत,
या स्नेहवान हो चलो मोम
तुम हो निदाघ की जलती लू
या रहो मधुर सौन्दर्य-सोम

तुम चाहे जो हो लो भाई
हो लो पहाड या बनो धूल
तुम हो लो बरगद की छाया
या उस पर अम्बर-बेल अमूल

व्यक्तिश नही कुछ भी कहना
करना तुझको ओ बुद्धिमान
यदि हो, धडकन मे सत्य एक
बस काफी मुझको विधान।

[सम्भावित रचनाकाल 1950 51। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

7

साँझ बेसुरी, काले छितरे जर्जर बादलभरी अधूरी,
उठते बरसाती कुहरे स रुँधी, थकी मजबूरी,
गीली अध-नीली ठण्डक म घिरी उदासी पूरी-पूरी।

तुमने हमे बिदा दी ऐसी ऐन साँझ जब गाडी चल दी

बँधी हिचकियो की गहराई तुमने भोगी। मैंने जल्दी—
रोका जिसको, बौद्धिकता की समीर ढाल दी।

आज विदा की बातें कह-कह तुम न अघाती
मेरी स्वीकारी आत्मा म नयी व्यथाओ को जनमाती
उठी हिचकियो की गहराई भोग रही हो जाती-जाती

[सम्भावित रचनाकाल 1951-52। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

8

आज तक जीवन-पटल पर जो लिखा था काव्य
उसको पोछता जो चला आया
अदय दुर्दम वासना से,
मनुज मन की वीथियो मे रग विरगे
कुसुम जो बिखर मधुर
उनको हटाता क्रूर-सा जो चला आया है,
भयानक वायु के ताण्डव भ्रमित-सा अन्ध।
ठहर जाये, वह हमारी श्वास-आहट पा
बिखर जाये, वह हमारी रोषमय गति की प्रतिध्वनि से
कि जो नित गूँज उठती रे, चतुर्दिग्

समय जो रसमय हुआ वासन्तिका का पा कुसुम-चुम्बन, मधुरतम
हो उठा जिससे कि वन म गीतमय कलि के अली
मुग्ध जीवन
द न सकता आज वह मानव उरो को मधुर आलिगन,
मिल न पाता उसे निर्मल अधर-स्पर्शन
शैल पर वह व्यर्थ,
सन्ध्या देखती ही रह गयी है राह
(जान वह पायी नही, नीरव अँधेरे एक कोने म
समायी इक कराह)
स्निग्ध, उर का इस बिखेरे शैल प्रान्तर पर अशान्त
विभोर थी सन्ध्या, मलिन था हो रहा क्षितिजान्त

पूर्णिमा भी देखती ही रह गयी
विपिन-तल मे मोगरे की मधुर कलियाँ खिल रही थी मुँह उठाये
रश्मियो म पिघल उर का प्यार झुक आया धरा पर चाँदनी का

स्वप्न की प्रत्यक्ष प्रतिभा-सी, मृदुल औ' उन्मुक्त-वक्षा
देखती ही रह गयी।

[सम्भावित रचनाकाल 1951-52। रचनावली के दूसरे सस्करण म पहली बार प्रकाशित]

9

प्रकृति के एकान्त प्रान्तर से निसरते मनुज-नयनो से
बहुत ही दूर,
ऐस निर्झरो के गान ।।
शैल स्कन्धो पर अधर चुपचाप रखकर चूमनेवाली
सलज सुकुमार सन्ध्या का गभीर प्रयाण
मोगरे की फुल्ल सस्मित नवल कलिका के नयन म पैठकर
चुपचाप तनमन वारनेवाली शरद पूनम अजान,
हैं अकेली आज वे सब, सोचती हैं—
कौन जाने कब समय वह आयेगा जब
मुग्ध मानव स्वस्थ होकर आयगा सौरभ-अधीर
रगनिर्मित, कुसुम प्रान्तर म मधुर परिरम्भ
ललचायगा पाकर सुनहली तीर।

ओ वासना की भक्तियो
ओ नाश की गोपन भयकर शक्तियो
मनुज के तुम पाप स उत्पन्न काली विकल व्याली के भयानक दश
किन्तु ऐसा भी रहा है प्राण जो सारा कलुप विप
घोल करके पी गया है
और उसके ताप स तप स्वर्ण होकर नाच उट्ठा
हर्ष के उन्माद सा
इस विश्व के आल्हाद सा
आरक्त दिशि के चूम नारगी कपाल
डोलता है कवि जगत् म रात को जबरन बनाने प्रात
ऐस घोर उसके गीत जिसके तीव्र है आघात।

[सम्भावित रचनाकाल 1951 52। रचनावली के दूसरे सस्करण म पहली बार प्रकाशित]

10

अगर कही पारस पत्थर मिलता होता
तो मैं उसको लाकर तुमको झट दे देता
तुम लोहे को सोना करती लेकिन अब भी
लोहे के अणु के केन्द्र भग की खटपट मे

उसके अन्दर विद्युत्तरग की खटपट मे
तुम रोज रात को दिन, दिन को दिनकर करने—
मे इस प्रकार हो व्यस्त कि शिला-भग के प्रति
जैसे हो हिमालयी झरने की विद्युत गति
पृथ्वी के अन्दर ज्वाला के झरनो की गति।

युग-युग के अन्धकार की दीवारें तोडी
उसकी लम्बी चौडी दरार मे से मोडी
अपने किरनो की लम्बी-चौडी सेनाएँ
जिस साहस मय सेनाध्यक्ष ने उसके मन—
के भाव हैं कि सेनाओ के हैं सैनिक जन
वे है मनुष्य-आकार लिये जागे मन मे
वे हैं विचार जो मूर्त हो गये जन-जन मे
हर एक हृदय मे एक हृदय कोई जागा।

उद्भट मनुष्य के अन्दर नव मनुष्य बैठा
अपनी प्रतिभा-आलोक लिये कि विश्व बैठा
जिसको कवि सूरज कहते हैं मैं कहता हूँ वह तुम्ही हो
मुझको जिसमे जिस दम पाओ
तुम दौडो उसकी तरफ कि जैसे हँसी दौडती होठो पर
ज्यो प्रसन्नता की लहर दौडती सरिताओ की छाती पर।

[सम्भावित रचनाकाल 1951-52। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

11

जीवन-सुख अन्यो को अपनो को देने मे
मैकाग को कष्ट हुआ भीषणतम
वही कष्ट थर्राता सरिता के तन-मन मे।।
मैकाग के प्राणो मे लहराता
वही कष्ट पी-पीकर
विएतनाम सैनिक ने
पिएन-बिएन-फू का गढ़ फतह किया
विश्वख्यात कर डाला अपना देशभक्त रुधिर
जगल मे, पर्वत के अचल मे
रक्तस्नात मिट्टी पर लेटा है, लेटी है—
मैकाग के प्राणो के बेटे हैं, बेटी है।
कोखो मे माँओ के दु खो की लाल
अगारी झीलें हैं
प्राणो के वृक्षो को तरुण फूल जल गये

पत्र-कपोल पीले है।
फिर भी वह रक्तिम रवि
मैकाग के दिल म जो गहरा जा पैठा है
कविता की लहरो के अक्षर म
करता है अलजिब्रा
भावी की निर्मिति का
रातो मे नीला चन्द्र,
सृजनशील मोहाकुल
मैकाग के कूलो पर
करता है जीवन की ज्यामिति का सवाल हल
छाया-प्रकाश-रेखायुत वर्णो म ।।
अलजिब्रा ज्यामिति की नयी शास्त्र पद्धति को
सीख रहा भविष्य
अब ।।

[सम्भावित रचनाकाल 1955-57]

12

हृदय तुम्हारा काम
प्रश्न व समस्याएँ सवालात
पैदा करना रहा है ।।
· ये घाव
दुखते तो हैं ही पर साथ-साथ
करते हैं जिरह हाय दिन-रात
इन्हे क्या जवाब दूं ।।
—मामूली
सवेदनशीलता से
खराखरा होता है।

जरा-सी सुगन्ध कही
यदि आयी मुझ तक,
मुसकराता कोई पास आता है,
प्यार से है रखता वह
हाथ मेरे कन्धे पर ।।
कोई वहुत दूर ही से खडा हुआ
मेरी ओर
गम्भीर
देखता ही रहता है।
मेरी उस आशा है······
उपेक्षा प्रतीक्षा है

तुम्हारा जो श्वास है,
गलत है !!

[सम्भावित रचनाकाल 1957]

15

एक चीटी चढ गयी
गिरि का शिखर
जब,
एक चीटे ने कहा
बस क्रान्ति का क्षण आ गया !!
(और सचमुच
क्रान्ति का क्षण आ गया ही था)
किन्तु, गिरि का शिखर
बोला—
क्रान्ति का अनुभव
न होने से तुम्हे, कोई
जरा-सा क्षुब्ध परिवर्तन दिखा,
हुल्लड मचा दी
किन्तु, क्या
तुम भी बदल सचमुच गये ?
क्रान्ति, पूरी एक परिणति का
पुराना नाम है !!
इस पर जरा सोचो !!
किन्तु चीटी चिढ गयी
औ' उत्तरोत्तर त्वरित गति मे और आगे बढ गयी
तब शिखर बोला पुन —
चीटी, बुरा मत मानना
मैं हूँ जमाने की जरा-सी टेकडी
तुमने फतह मुझको किया
तुम कल अनेको उच्च-तर-तम गन्धमादन मेरु-पर्वत पर चढ़ोगी
और यो चीटी नही तब तुम रहोगी
जाओगी बन देवता
दिक्काल विजयी !!
इस समय न मनुष्य हो तुम
किन्तु, इतना पूर्णत: निश्चित कि जल्दी ही
तुम्ही सम्पूर्ण परिणति के चरम स्तर पर पहुँच
बन जाओगी मानव

[सम्भावित रचनाकाल 1957-58]

16

तुमन आलोचना खूब की
अगर कडी होती वह
उचित सही होन पर,
कोई बात न थी।
परदे पर जो चित्र किया प्रक्षेपित
तुमने जिन प्रकाश-किरनो से
वे किरनें भी थीं उधार ली गयीं !!
और चित्र वह
बना तुम्हारे ही अज्ञान अस्थिपजर का
अजब एक्सरे-बिम्ब !!
अति गम्भीर रग लेकर
तुम तुरन्त बनाने चले एक तसवीर दूसरे की…
कि अरे रे !
च् च् च् च्
घनीभूत गम्भीर रग-छायाओ मे से
हलके-हलके धीरे-धीरे
उभरा चेहरा
स्वय तुम्हारा—वह अपना विद्रूप !!
माना बहुत सिद्ध हो,
तुम प्रसिद्ध, जग मात्र तुम्हारी बात
ख्यात कर देगा,
मैं दुनिया के किसी अँधेरे कोने म
हूँ भूतपूर्व यन्त्र का निरर्थक
एक अनावश्यक जग-खाया टूटा पुर्जा
अनदेखा अनजाना पडा रहूँगा
लकिन वह जो अन्धकार के कोने म
मेरी सुलगाई किरासीन की लौ
उसक नीचे छोटा पीला ज्योतिवलय बन गया
विजय तुम्हारी है
दिग्विजयी तुम हो
फिर भी नहीं तुम्ह सुख
मुझ दुःख यह तुमको
अपने आईने मे दिखता सपना
अपनी ही सूरत का कैसा-कैसा
बुरा-बुरा-सा रूप
सामने प्रस्तुत होता !!
यह है तेज तुम्हारा

जो तुमको ही
राख बना देगा बस यही दु ख है !!

[सम्भावित रचनाकाल 1957-59]

17

काट दो यदि तना
तो फिर प्राण-रस
किस राह स पहुँचे भला
उस डाल तक
जिस पर विकसती पत्तियाँ
शायद खिले जिस पर सुनहला फूल !!

फूल के सौन्दर्य के शोधक
कभी यदि देख पायें भूमिवासी मूल
तो मृदु पखुरियो की सूक्ष्म कोमल शिराओ म पायेगे
उन खुरदुरी रद्दड जडो का रक्त
जो दृढ तने मे स बढ व आगे घूम
बनता है सुकोमल पत्तियो की श्री
व पुष्पो का नया लावण्य !!
ओ खुरदुरी रद्दड जडो
पकडे रहो तुम धरनी की भीतरी गुरुतर तहे

[सम्भावित रचनाकाल 1959 60]

18

ओ सूर्य, तुझ तक पहुँचने की
मूर्खता करना नही मैं चाहता (मर जाऊँगा)
बस, इसलिए
उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया
के रूप म
मैं क्यो न चिमगादड बनूँ
व धरित्री की ओर मुँह कर
पैर तेरे ओर करता लटकता ही रहूँ
चूँकि हे मार्तण्ड तुझ तक पहुँचना बिलकुल असम्भव है
इसलिए अपमान करना सहज है वह आत्मसम्भव

[सम्भावित रचनाकाल 1959-60]

19

पीला चेहरा और नुकीली नाक
व खाली-खाली आँख
व मुख पर कोरा-कोरापन

कि दिन की कैसी यह शुरुआत
कि मन म चीटी की-सी पाँत
रेंगता चेहरे पर चिन्तन

कि वही पुराना साथ ज्ञात-अज्ञात
चली आ रही धूल-धूम-सी बात
वही पुराना वही पुराना रण।

भुला दिये अब वही उठे है भूत
कात रहे उठ रहे धुएँ का सूत
अम्बर-चरखे-सी मन म भन भन
क्या है इसम अरे हमारा दोष
खाली हो गये रूपक-उपमाकोष
जाली है यह काव्य अभिव्यजन।।

अब अन्तर म डुग्गी का सा गान
व साइरेन का-सा रोता स्वर-सन्धान
फूटे ढोलो की भडभड का स्वन।।

अधसूखे घाव-तरफ बढ़ती है चीटी की-सी पाँत
पाँते चपल अनेक, एक है बात
हलचलाभरा वल्मीक हुआ है अन्तर्मन।।

[सम्भावित रचनाकाल 1959-61]

20

भूमिका

अगर मेरी कविताएँ पसन्द नही
उन्हे जला दो,
अगर उसका लोहा पसन्द नही,
उसे गला दो,
अगर उसकी आग बुरी लगती है
दबा डालो,

इस तरह बला टालो !!

लेकिन याद रखो
वह लोहा खेतो म तीखा तलवारो का जगल बन सकेगा
मेरे नाम स नही, किसी और नाम से सही,
और वह आग बार-बार चूल्हे में सपनो-सी जागेगी
सिगडी मे खयालो-सी भडकेगी, दिल म दमकेगी
मेरे नाम स नही किसी और नाम से सही।
लेकिन मैं वहाँ रहूँगा,
तुम्हारे सपनो म आऊँगा,
सताऊँगा
खिलखिलाऊँगा
खडा रहूँगा
तुम्हारी छाती पर अडा रहूँगा।

यह भी एक पेशा रहा है
जिसका ज़ोर हमेशा रहा है।

लेकिन, तुम जो उनम खप नही पात
अपने को इतना अललटप नही पात
भरोस-लायक गप नही बनते खुद,
तो इसका कारण है
तुम्हे अहाता के बीच उस घर की आवश्यकता है
उस घर म खेलती हवा की ज़रूरत है
उन कमरो म फैलती किरनो स निस्बत है।
तुम्हे वहा की हर ईंट-पत्थर की आवश्यकता है
यही तुम्हारा मरण है।
इसलिए, भले ही,
इसीलिए, भले ही इसे बुरा माना जाय
आराम को आसरा माना जाय
इत्मीनान को सचाई माना जाय
मुसकराते व्यग्य को बुद्धिमानी और भलाई माना जाय
बार-बार की तलाश म गिरने को नादानी माना जाय

इन्ही सब कारणो से
मेरी कविताएँ यदि बिगडती हैं बिगड जायँ
उनमे प्राणवायु मिश्रित खनिजो का समुदाय
मिट्टी मे मिल हुए

अपने इस कटे-पिटे चेहरे को लिये हुए
कहाँ जायें कहाँ जाये ··

[सम्भावित रचनाकाल 1960-61]

21

बाजार मे विकते हुए

बाजार म बिकते हुए इस सूट म
इस पैण्ट मे इस कोट मे
कैसे फँसाऊँ जिस्म !!
या मैं किस तरह काटूँ-तराशूँ देह
जिससे वह जमे उसमे बिना सन्देह
जीने की अदा हो रस्म !!
चाहे मैं छिपूँ छिपता रहूँ अपनी स्वय की ओट मे

बेशक कि जोकर दीखता हूँ और
लगता हूँ खुद ही को चोर
पिटता हूँ अकेले चुप छिपे
निज की निहाई पर स्वय के हथौडो की चोट म

फिर भी एक सज-बज एक धज भई वाह !!
मुझको नित बताती जिन्दगी की राह

[सम्भावित रचनाकाल 1960-61]

22

खुले हुए ग्रन्थो पर जब तक
किरनें फैले नहीं
हमारे ग्रहणशील सवेदित मन की
तब तक वे सब ग्रन्थ-पोटलियाँ
मात्र ग्रन्थियाँ हैं
इसीलिए तुम रचनाकार
महामूर्तियो से न प्रभावित
आतकित हो
उनकी महानता की चाहे

जितनी गाथाएँ रच दी हो
आलोचक आत्माओं ने, तुम स्तम्भित मत हो।

[सम्भावित रचनाकाल 1960 61]

23

मनुष्यो क जगल म
दण्डकारण्य म
परस्पर लडती हुई हवाओ क साथ साथ
मैं घूमा।
टीलो पर प्राकृतिक गनियो म छाया कान्तार की—
हरी घनी-अजीब उलझी हुई!!
उलझे डगालो स वृक्षो क कटि-प्रदेश!!
मानो चूमत हुए 'किल' करना चाहते हो परस्पर को
धूप लन नही दत है
वृक्ष एक दूसरे को।
किन्तु वे साथ-साथ आलिंगित गुथ बिंध
विश्लपित अडचने
महसूस करत थ बडबडाते बहस खूब करत थ।
कई वृक्ष दिख जिन्ह हाथ पाँव थे चहरे थे
धड थे मुण्ड थ
निजत्व या घनत्व का छायाचित्र
बहुत वृक्ष एस थे कि जिनके धडो पर कइ
(गठानें नही) सख्त पेट बाहर निकलते थे।
उन्ह नही चेहरे थ।
इन्ही सख्त पेटो पर बार-बार
जगली बिलार
बैठ गिलहरी खाती थी
वृक्षो का फल खाया मैंने तो
मूर्छित हो मर गया।
हम आदिवासी जन बहुत-बहुत अनुभवी
अनेकविध फल चखकर बार बार
हमने ही दुनिया म प्रथम बार
खाद्य-अखाद्य सब ठहराया
मनुष्य का भोजन निश्चित किया
हम आदि वैज्ञानिक!!
किन्तु है हमम भी दोष एक
कई बार जहरीली नालियाँ
दिमाग़ी रगो मे बह उठती है
किन्तु, हम दु ख है कि उनमे का पोटैश सब

और गन्धक निकाल नही पाते हम
बस उन्हे द्रव्यो को महसूस ही करते रह जाते है !!
पीले पोटैश और पीले उस गन्धक से
ज्वाल रूप दुलहिन की साडियाँ बनती है !!
ओ आदिवासियो, बनाओ ये साडियाँ
मनुष्य के जगल का
दण्डकारण्य का दहन करो
एक कृष्ण ने दाह किया खाण्डव का
वही कृष्ण तुम मे भी पैदा हो
ध्यान रखो
मनुष्यो के जगल मे
तुम्हारी कुमारियाँ और नारियाँ भ्रष्ट हुई
कौन नही जानता कि कई रोग हमारे ये
उनके ही देन है।
स्याह आदिवासी हम
कुली हम खलासी हम
हम हबशी, हम मेहतर, हम गरीब शिक्षक है
कि जिन्हे पिछले महीनो से
अवेतन ही रहना पडा है और
मनुष्यो के जगल मे पडा है खूब घूमना
नि सहाय !!
किरासीन-बू-लदी भभक और दाब
हम नित्य कहना पडा है—' सा'ब !!"
ओ आदिवासियो, पृथ्वी के पहचानो अपने को

[सम्भावित रचनाकाल 1960 61]

24

अनाशा की इन अँधेरी खाइयो मे
अब वनस्पति उग रही है !!
लाल किंशुक, पीत चम्पा
आम्र तरुवर !!
अब मनस्पति सिर उठाता जा रहा है
अब गगन मे फिर गरजती स्वर्ण शम्पा
मुग्ध अन्तर !!

अनाशा की इन अँधेरी खाइयो मे
चमचमाती है खदानें
थोरियम की
हो गया व्यक्तित्व का परिहार पूरा

खो गयी सत्ता हमारे इस अह की।
गमकता है सत् परछाइयो मे।

अनाशा की इन अँधेरी खाइयो मे
अब वनस्पति उग रही है
अब मनस्पति सिर उठाता जा रहा है!!

स्वार्थ गलकर सर्व-सामान्यीकरण की
सजल मिट्टी म मिला है,
अब अह के कवच फाडे जा चुके है!!
प्राण बिलकुल अब लचीले हो गये हैं।
है नही व्यक्तित्व की सत्ता सकोणक
चाहिये बस शान्ति, जीवन म अनर्जित
अनाशा की इन अँधेरी खाइयो म
सब निराशा दूर होकर

[सम्भावित रचनाकाल 1960 62]

25

पेट भर भोजन के बाद
रवीन्द्र पढना
मुश्किल है,
फिर भी,
कुछ ऐसे है
जो डकार लेकर
देशभक्ति से पूर्ण
लिखते है कविताएँ!!
कालिदास रवीन्द्र का नाम लेकर
सीख देते हैं हम सब।

[सम्भावित रचनाकाल 1960-62]

26

बेचैन चील!!
उस-जैसा मैं पर्यटनशील
प्यासा-प्यासा,
देखता रहूँगा एक दमकती हुई झील
या पानी का कोरा झाँसा

जिसकी सफ़ेद चिलचिलाहटों में है अजीब
इनकार एक सूना !!

[सम्भावित रचनाकाल 1960-62]

27

आ कि मैं तुझको अब भीतर समेट लूँ,
जो कुछ भी मैं हूँ, उस सबसे लपेट लूँ,
धूल का बिस्तर है, बरगद के साये में
ईंट के सिरहाने जाने या अनजाने
सो कि तुझसे मैं छातीभर भेट लूँ !!

छोड़ दे बँगले और चमकीला साथ सब,
लुढ़का दे लात मार टेबल-दावात सब,
जो कुछ भी फर्ज़ी है जो कुछ भी झूठा है
आजकल उसका दाँव गहरा अनूठा है
झूठा है रामायण,
झूठा आत्मविश्लेषण।

चल कि तू मेरे साथ धूप की गरमी में,
दिल के उजाले की जवान बेशरमी में,
मन यह कहता है कि तेज सुनहले पल
धोखा नहीं देते हैं, झूठ नहीं बोलते
खोलते गहरे तक
खयालों से तर-बतर खुद की सरगरमी में

अजीब है, लेकिन यह सही है कि
लाखों के खून-दाग़ वाली पोशाक वह
सफ़ेद बेदाग़ है
उसकी वह आबदार चमक चालाक है।
हज़ारों गुलाबों की राख बेशक़ीमती
चेहरे पर पोत, ज्योंकि शहराती श्रीमती
रंगों में झलमला सड़कों पर घूमती
वैसी ही खून-रँगी फिर भी सफ़ेद-साफ़
दिलफ़रेब रोशनी
तिरती है ऊबस फेंक दिल दिमाग़-गुम्बद में
शब्दों के बेहद में।
भावों में तर्कों में किताबी वर्कों में
स्वर्गों में नरकों में
रंगीन धुँधलके-सी फैलती रहती है

फरेब लचीला है
इसीलिए खुमारी क लुढकत उतार म
खयालो का चेहरा भी सपनीला पीला है
इसके अहाते के कैदी । तू भाग जा
चाहे जिस हालत म मेरे तू पास आ !!

ऊँचाई की गन्दभरी गन्दगी जीने से
खयालो की धुंधभरी जिन्दगी जीने से
बेहतर है, गरम धूपवाल मैदान के
सीने पर अपना पसीना बहाया जाय !!
गरम ऊँचाई की पहाडी मेंढेर के
टीले पर घूमती चील के समान ही
बेमकान जान-सा आया जाय जाया जाय
पहाडो की रीढ पर चढा जाय बेझिझक
चाहे फटा कुरता ही शरीर पर क्यो न हो
अँधेरी धँसानो क अकेले रहस्य मे
छाती छिल जान का अनुभव भी क्यो न लो
चाहे फटी चड्डी हो तन पर तो क्या हुआ
चिनगियाँ पीती है इन्द्रिय सवेदना
लाल फूल, ओठो को सुनहले किरनो के
जिस तरह चूमते
अध्ययन करती है उस तरह अन्तर उत्प्रेरणा
गहन मनन करती है ।

उस पल मे सारे दरमियानी ये फास्ल
मनुष्यो मनुष्यो म जो अजीब बीच के
भयानक ये भेदभाव खडे ऊँच-नीच के
स्वार्थों के कचरे से बने हुए घोसले,
उस पल उनस घिन होती है
उनको गिराने की हिम्मत आ जाती है
दुनिया से लड-झगड जमाने स जिरह कर
मनुष्य बने रहने की ताकत आ जाती है
भक से उड जात है भभककर अपने आप
गलत खयाल, मिथ्या स्वप्न,

बुनियादी ज़मीन को सूँघें तो एकदम
उठ जाते हम स्वय आसमान-छोरो तक ।
बन जाते साफ

बुनियादी ज़मीन को सूँघे तो एकदम

उठ पड़ते हम स्वय,
एकाएक घेरो के चक्कर को छोडकर
तारो की, घूमते तेजस्वी भूमि पर
न जाने क्या चीन्हते पहचानते रहते हैं ।
साफ, खुलाखुलापन लहरा रहा-सा हैं
अपार पारदर्शी और पारदृश्यदर्शी हो
मन अपारदर्शी ने
अपने ही अस्त-व्यस्त कणो से न जाने क्या
गहरा कहा-सा है कि
हे कण-कण
इस तरह मोहित हो पारदृश्य देखने कि
ढीले पडे हुए फैले विखरे हुए
वेतरतीव पत्ते सव
बुनियादी ज़मीन के गरमीले इशारे की
आँच से उड-उडकर
अपना ही सही-सही जगह पर लग जाते
डाली मे सही-सही अपने ही डण्ठल पर वाक़ई
रस-भरी तरतीव म बँध जाते
लोग विश्वास नही करते हैं
घटना को मानते बिलकुल अप्राकृतिक
किन्तु पूर्ण रूप प्राप्त
यशस्वी मनोज्ञ वृक्ष
हरा-भरा ऐसा विचार वन जाता है घन छाय
पुष्पित सवेदना उसम यो लहराती कि
खँडहर के ईंटिया सूने मे रहकर भी
उसके हम पुष्प-द्युति
फलित रग देख-देख
अगला मैदान सर करन का इरादा करते हैं।
इस भाँति वार-वार
हम पुनर्जीवित हो
दुनिया से, फिर जी उठने का तग़ादा करते हैं
दिल की तव चमकीली होती है तेज धार
जिसके किनारे पर बेकिनार होते हैं
हमारे जवान दिल ।
क्योकि वह तेज धार फेंकती रहती है
तिरछे-से भाले तेज किरनो के ! !
बिलकुल यह सही है कि
ऐसी प्रवृत्तियाँ
ऐसा खयाल और
ऐसे ये तथ्य जगली घोडे के ख़याल से

प्रतिबन्धित निषिद्ध और वर्जित है
क्योंकि उनका खून तेज सुनहला है
मास है फूलभरी लाल-लाल फूलभरी कदली का।
हड्डिया लोहे की।
इसीलिए, मेरे मित्र,
सभ्यो की दुनिया स बहुत दूर,
वेदना के स्पन्द मे जीते हैं,
फटे हुए प्राणो के लोहे के तारो से सीते हैं !!
और, यह सही है कि
सूरज चिलचिलाता है काले उन चेहरो पर,
झलकती रहती है ज़मीन का भूरापन
गालो पर माथो पर
पहाडी चट्टानें चिलकती हाथो म
गाल मसलती हैं तूफ़ानी हथेलियाँ !!
और उन आंखो की सुदूर गहराई से
दूर बहुत दूर के तारे आँख मारते।
लेकिन जो देख नही सकते है
वे उसके अभाव मे विश्वास रखते हैं
ऐसो को क्या करो
ऐसो म कौन रहे !!

इसीलिए, मेरे ऐ दोस्त तू भाग जा
जहाँ पहुँच वहाँ अब अन्दरूनी आग लगा
जिससे कि दुनिया के खौलते समुन्दर सब
भभककर भक् से यो इस तरह उड जायें
उनकी तले मे छुपी सादी दुर्घटनाएँ
सामने आये
और ज़माने की मारी हुई
गर्दन जुड जाये, हाँ धड पर सही-सही
सिर मे फिर जगल लहराये
बहुत उत्साह से !!

[सम्भावित रचनाकाल 1960-62। राजनांदगाँव। अप्रकाशित]

28

तुम्हारे गालो पर गुस्से के अगारे
अभी भी महकते हैं
और मेरे लिए तुम्हारे चेहरे से एक
किरनीली गोरी सुबह हो जाती है।
बहन लगती है दिल ही दिल मे एक

सुनहली शराब
जिसमे खिलने लगते है
गुलाब आनेवाली तमाम उम्र के···

[सम्भावित रचनाकाल 1960-62]

29

विचार आते हैं—
लिखते समय नही,
बोझ ढोते वक्त पीठ पर
सिर पर उठाते समय भार
परिश्रम करते समय
चाँद उगता है व
पानी में झलमलाने लगता है
हृदय के पानी मे।

विचार आते हैं
लिखते समय नही,
·· पत्थर ढोते वक्त
पीठ पर उठाते वक्त बोझ
साँप मारते समय पिछवाडे
बच्चो की नेकर फचीटते वक्त !!
पत्थर पहाड बन जाते हैं
नक्शे बनते हैं भौगोलिक
पीठ कच्छप बन जाते हैं
समय पृथ्वी बन जाता है··

[सम्भावित रचनाकाल 1961-62]

30

तुम चाहे जो हो
नारी, या देश या विश्व
बालक या युवा अश्व
सर्वोत्तम जो भी है—
पुष्प, या चुम्बन या लक्ष्य
श्रेष्ठतम स्वप्नो के कक्ष
वह तुम हो !!
और जो भी है मेरे पास
मन-भीतर
आग या रस

बेबस हृदय का वस
सब तुम्हे देने को
उमडता है जी ! !
और ये, सब देकर
जो कुछ शेष
जैसे दु ख क दारिद्रय के लत्तर
कमजोरी क बुरे-बुरे रूप स्वरूप बुरे-बुरे वेश
उन सबस
अबने को छिन्न भिन्न करने का लक्ष्य
अभिन्न होना है
यानी तुम्हे पाना है
अपने अकेले मे न जाने कब स
लडते रहने का कार्य
यह सब स्वीकार्य
बशर्ते कि तुम रहो पास
सहास !!

[सम्भावित रचनाकाल 1962-63]

31

वर्षों से बन रहा रास्ता किन्तु हाय
वह एक जगह भी बना नही
वह एक कदम भी बढ़ा नही
गहरी-गहरी खाइयाँ अभी तक नि सहाय
है ठीक वही की वही,
निरर्थ गहराइया भरी भी नही
घुप अँधेरा और रास्ता बन्द
लाल वह लालटेन
ठण्डी स्याह हवा, तुम, मैं वह
सबके साथ शून्य की गूँज
कि जो रह रह
दिल भीतर उकसाती असग बुलबुले
किसी आवाज़ भास के
या कि एक दाहक शब्दावलि।
यद्यपि ओठ बन्द हैं,
चेहरा स्तब्ध कि ठण्ड हाथ-पाँव
पर साथ शून्य की गूँज
हृदय म शून्य गाँव
व मन म शून्य भाव की भयसाध्य वचनावलि
रात क तिमिर मन स ममर का अर्चन

घुप्प अँधेरा, और रास्ता बन्द
लाल वह लालटेन ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1962-63]

32

जो मेरे बहुत-बहुत प्यारे है
अपने हैं, सगे है
जिनके तन्तुओं से
न मालूम कितने ही
सनसनाते हुए मेरे तन्तु लगे है,
वे जब झूठ बोलते हैं
उपेक्षा की पथरीली आँखो से
जगत् देखते हुए
उचित समझते हैं अपनी दृष्टि
वे जो कि स्वय देवोपजीवी हैं
बडबडाते हुए,
मन्त्रो के यन्त्र-उच्चारण मे गडगडाते हुए
सचाई का धन्धा करते हैं
और तालाब गन्दा करते है
वे जो कि व्यवसायात्मक
रग-बिरगे डेसूवाले हाथो मे थमा
बैण्डबाजा हैं ऐसा कि
सरोद-सारगी-गिटार के कोमल स्वरो को डुबोते हुए
खुद किसी सचाई का जनाज़ा है ।

समीक्षक है, पण्डित हैं, कवि हैं
स्वय प्रधान धारा से हटकर
उससे कटकर
तट पर
सिद्धान्तो के हस्तिदन्ती स्वप्नो पर
स्वय शिल्प-मूर्ति
रूप मे स्थित हो
स्वर्गचुम्बी बनते है
वे दम्भी है ।
स्वय एक शख हैं, तूर्य हैं
किन्तु, सरोद और सारगी के
स्वरो की निन्दा करते हुए
यह कहकर कि वह एकान्त
व्यक्ति-सुख है

यह कहकर कि उदास गम्भीर वह स्वर
सरासर गलत रुख है,
इसलिए कि अगर किसी को सच होना हो
तो हम-सरीखे गडगडाओ
नही तो रेलगाडी-सरीखे धडधडाओ
अगर ऐसा नही करते
तो गलत है !!
ऐसे जो मेरे हैं अपन हैं, सगे है,
देवोपजीवी हैं,
समीक्षक है पण्डित है, कवि हैं
उनके प्रति मेरे क्रोध
शत्रु के प्रति आत्मक्षोभ से भी
अधिक भयकर होना है
क्योकि मुझे अपने ही घर का
कूडा प्यारा नही है
अपने ही कमरे की गन्दगी बुरी लगती है
और उसके कारण अपनी जिन्दगी
अनमॅवरी लगती है ! !

[सम्भावित रचनाकाल 1962-63]

33

मेरी छाँह सागर-तरगो पर भागती जाती
दिशाओ पार हलके पाँव
नाना देश-दृश्यो म
अजाने प्रियतरो का मौन चरण-स्पर्श
करती मुग्ध वक्ष-स्पर्श
घर मे घूमती उनके,
लगाती लैम्प, उनकी लौ वडी करती
व अपने प्रियतरो के उजलते मुख को
मधुर एकान्त म पाकर
किन्ही सवेदनात्मक ज्ञान-अनुभव के
म्वय के फूल ताजे पारिजात प्रदान करती है
अचानक मुग्ध आलिंगन,
मनोहर वात, चर्चा, वाद और विवाद।
उनका अनुभवात्मक ज्ञान-सवेदन
समूची चेतना की आग
पीती वह
कि लगता है
खडी दो नील-लहरिल चन्द्र-धाराएँ

स्वय की चेतनाओ को मिलाती है
व उनसे भभककर निष्कर्ष-रूपी आग
कुछ ऐसी निकलती है
कि वे दोनो चमत्कृत हैं।
अँधेरे औ' उजाले के भयानक द्वन्द्व
की सारी व्यथा जीकर
भयकर बात मुँह से निकल जाती है,
भयकर बात स्वय प्रसूत होती है।
तिमिर मे समय झरता है,
व उसके गिर रहे एक-एक कण
से चिनगियो का दल निकलता है हृदय-स्पर्शी।

मेरी छाँह, उनको पार कर,
भूरे पहाडों पर
अचानक खडी होती है,
व उसके व्यग्र चिन्तनशील नेत्रो मे
विदारक क्षोभमय सन्तप्त जीवन-दृश्य
प्राकृत दृश्य के विस्तार-तल पर तिर रहे
जहाँ भी डालती वह दृष्टि
सवेदन-रुधिर-रेखा-रँगे
बनते-उभरते चित्र
नभ मे भूमि पर सर्वत्र तिरते हैं—
तडक मरते हुए प्रतिबिम्ब
जग उठते हुए द्युति-बिम्ब
दोनो की परस्पर गुँथन
या उलझाव लहरीला
वह उस उलझाव मे गहरे
बदलते जगत् का चेहरा।
अनेको गिद्ध उडते आ रहे दल बाँध
पृथ्वी पर झपटते हैं।
निकालेंगे नुकीली चोंच से आँखें
हमारी दृष्टियो को नोच खायेंगे।।
···मन म ग्लानि
गहन विरक्ति,
मितली के बुरे चक्कर,
भयानक क्षोभ,
पीली धूल के बेदम बगूले और
गन्दे कागजों का मुन्सिपल कचरा···
अँधेरे वृक्ष के तल मे
सुगन्धें भभक उठती,

वस्तुस्पर्शी भान-सी चमक उठती है
निराली फैलती अगार-धारा
देह म मन
सुनहली उस क्सकती ज्वाल-ऊष्मा स
लिपटती चन्द्र की लपटे।
कि मेरी छाँह अपनी बाँह फैलाती
उदार अपार
अपने प्रियजनो क ऊष्म-श्वस् व्यक्तित्व
की दुर्दान्त
उन्मद विजलियो म वह
अनेको बिजलियो स खल जाती है
व उनके सामन ही,
नेत्रो को दीखत परिदृश्य म
वह मुग्ध होकर फैल जाती है
कि उनके स्वप्न
उनके विचारो की वदना जीकर
व्यथित अगार वनती है।
हिलगकर सौ लगावो स भरी
मृदु झाँइयो की थरथरी
वह और अगल स्वप्न का विस्तार बनती है।

वह तो भटकती रहती
उतरती है खदानो के अँधेरे म
व ज्यादा स्याह होती है।
हृदय म वह किसी क सुलगती रहती।
उलझकर प्यार स वह
मुक्तिकामी श्याम गहरी भीड मे चलती।
उतरकर, आत्मा के स्याह घेरे म
अचानक दृप्त हस्तक्षेप करती है
सिखाती सीखती रहती
निरखती, बहस करती और ढोती बोझ
मेहनत से
जमीनें साफ करती है
दरारे छावती भरती,
व सीती फटे कपडे दिल रफू करती
किन्ही प्राणाचलो पर वह कसीदा काढ़ती
निज आत्मा की फूलपत्ती के नमून का।

मेरी छाँह यूँ ही भटकती रहती
अजाने रास्तो पर वह

किसी श्यामल उदासी के कपोलो पर
अटकती है।
अँधेरे मे, उजाले मे
कि कुहरे और पाले मे
व खड्ढो खाइयो मे, पहाडो पर—
बाँह मे भरकर किसी को, चूमकर, लिपटा
हृदय मे विश्व-चेतस् अग्नि देती है
कि जिससे जाग उठती है
समूची आत्म-सविद्, ऊष्म-श्वत् गहराइयाँ '
गहराइयो से आग उठती है।

मै देखता क्या हूँ
कि पृथ्वी के प्रसारो पर
जहाँ भी स्नेह या सगर
वहाँ पर एक मेरी छटपटाहट है ।।
वहाँ है एक गहरा जार मेरा भी
गहन मेरी उपस्थिति, आत्म-प्रस्तुत
नित्य सन्निधि एक
मेरा वहाँ तत्पर प्राण-प्रतिनिधि एक
अनुज, अग्रज, मित्र
कोई आत्म-छाया-चित्र।
धरती के विकासी द्वन्द्व-क्रम मे
एक मेरा वक्ष
स्नेहाश्लेष या सगर कही भी हो
धरती के विकासी द्वन्द्व क्रम म एक मेरा पक्ष
मेरा पक्ष, नि सन्देह ।।

[सम्भवत. अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1962-63। राजनांदगाँव। अप्रकाशित]

34

देखता रहूँगा
दूर···वहाँ उस ओर
दमकती हुई झील
या पानी का कोरा झाँसा
जिसकी अजीब चमचमाहटो म रहा काँप
इनकार साफ़ ।।

मैं किसी पहाडी टीले पर नि सग एक
श्यामल विहग

देखता रहूँगा निर्निमेष
धूप की दहकती सूनी छाती में, जी में
प्रतिनिमिष रेंगता हुआ काल धीमे धीमे ।।
देखता रहूँगा आसमान
के तन में जलता हुआ भाल
काल का,
भूरी पहाड़ियों के टूटे से कन्धों पर
ऊँची सियाह चट्टानों पर
टीलों पर
नीरव पत्रहीन वृक्षों पर
ढीली पड़ी हुई है मुरझायी
वह पल क्षण की मालिका
मैं जिधर दृष्टि डालूँगा पाऊँगा सफ़ेद
भूरे, सफ़ेद
साँवले आर-पारों में वे तैरते हुए
झिलमिल झिलमिल सौन्दर्य बिम्ब ।।
अपलक मुझको देखते हुए
प्रियमुख आभा
वह मनामन्थिनी मरीचिका
देखती रहेगी मुझे घेरते हुए
मैं सँभल न पाऊँगा
डालूँगा दृष्टि जिधर
वह सहज उधर अपना आँचल फैलायेगी
मेरा पीछा करने में आगे-आगे चल
अन्तर के रस से स्निग्ध दीप्तिमय नेत्रों से
देखती रहेगी छवि कोमल ।।
दूर से दिखायी देगी तब वह बाँकदार समशीर
(नदी)
भूरे मैदानों क्षितिज चीरती आर-पार
उसके इस्पाती रंगों में दमक रही
शीशे की लहरीली किरणें हैं नोकदार
चमचमा रहे इनकार,
तेज इनकार
साफ़ इनकार !!

वफ़नी मिट्टी की बास लिये
यह गरम साँस काँपती
साँवली दरारों में से उठती है उसाँस
?पिनी
लेकिन, उरते मैदानों का सब आँच लिये

सैकडो मील से आता है चचल समीर
मेरा हितचिन्तक वह अधीर मित्र है

इस समय वही
पर्यटनशील मेरे प्राणो का
प्रातिनिधिक चित्र है
सहज गम्भीर गन्ध वह !!
मै किसी पहाडी टीले पर नि सग एक
श्यामल विहग
उसके कन्धो पर बैठ, साथ रह,
यात्रा कर, देखता जाऊँगा
नये-नये जीवन प्रदेश
सूने उजाड मैदानों के सन्तप्त क्लेश।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

35

कमरे के अकेले कोने म रखी हुई
नीरव सितार
आप ही आप
तनतनाने-गूँजने-गाने लगती है।
(किसी भी उँगली का स्पर्श नही)
दिवाल से सटा हुआ तबला खुद
भीतर स आप ही आप गूँज· ·बोल···
त्रिक त्रिकधा
ताल देता हुआ सम
गूँजता हुआ गान ले उडता है
(लेकिन, किसी हथेली का स्पर्श नही)
मधुर आलाप एक सान्द्र-मन्द
गहरी ऊँचाइयो मे उडानें भरता हुआ
फूलदार बेलें जगमगाता है
सुनहले झरने उछालता है
नये-नये किनारे बनाता है
नयी-नयी किरने निकालता है
(लेकिन, उस अकेले कमरे मे कोई
मनुष्य नही)
और मैं खोया-खोया-सा देखता हूँ इन्द्रजाल
इस सूने मकान का !!
किन्तु, मैं चमत्कृत नही,
आश्चर्यान्वित नही।

ऐसा होता ही है,
आजकल तो बहुत होता है···
क्योकि मैं जानता हूँ कि
अछोर ब्रह्माण्ड म
मृग-शिरा-नक्षत्र के तारा समूहो की
हृत्कम्पन लहरें
आज इस मकान मे रखी हुई सूनी सितार
के तारो पर किलोल
कर रही है, करेगी ही।
चौडाई बेमाप
दिलो म
ठहरेगी, उसे भरेगी ही।।
इसीलिए अछोर शून्यो के
अनदेखे कोनो स चले हुए सन्देश
यदि आत्म-यन्त्रो के बजा जायँ
तबलो से आप ही आप बोल उठें
तो मुझे आश्चर्य नही होता।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

36

अवश्यम्भावी देह विद्रोह
यदि यही हालत रही
मेरी इन सूख हुए हाथो की
हड्डियो म से भी निकलेगी
किरनें
जो सेक्रेटरिएटो, बैंको और
तिजोरियो के भीतर
और अखबारो के
और दफ्तरो के भीतर
घुस पडेगी
स्वप्नो का सा
प्रसार बनाती हुईं
और मिल उनमे
बुलबुलो से फूटकर
घुल जायेगी
तुम नही जानते
कि बालक क्या सीख रहे हैं
माँएँ क्या सिखा रही हैं
अपन बीमार पिता

सूखी डबल रोटी का
टुकड़ा हड़ियल नन्हा
क्या बता रही है
और मैं क्या सुन रहा हूँ
और गुन रहा हूँ
तुम नहीं जानते।
तुम नहीं जानते कि मेरे
महाकाव्यों के पन्ने उड़ते हैं
जिन्हें
पढ़ा जा रहा है,
खूब पढ़ा जा रहा है
वे और भी पढ़े जायेंगे
और मेरी हड्डियों की
निकलती हुई किरनों में वे
और भी पढ़े जायेंगे
और तुम्हारे सुख
देंगे, दुआ करेंगे।

[सम्भावित रचनाकाल फरवरी 1964]

37

[वह अंश जो 'जब प्रश्नचिह्न बौखला उठे' कविता के साथ गलती से जुड़ा हुआ था।—सं०]

कोई स्वर ऊँचा उठता हुआ बींधता चला गया।
उस स्वर की एक चमचमाती-सी तेज़ नोक
जिसने मेरे भीतर की चट्टानी ज़मीन
अपनी विद्युत से यों खोदी, इतनी रन्ध्रिल कर दी कि, अरे
उस अन्धकार भूमि से अजब
सौ लाल-लाल जाज्वल्यमान
मणिगण निकले
केवल पल में
देदीप्यमान अंगार हृदय में सँभालता हुआ
उठता हूँ
इतने में ही जाने किस गहराई में से मैंने देखा
गलियों के श्यामल सूने में
कोई दुबली बालक छाया
असहाय ! रोती चली गयी !!
दुनिया के खड़े ढूह दीखे
वीरान चिलचिलाहट में फटे चीथ चमके
थे छोर ग़रीब साड़ियों के

नन्हे बुरकों की बांहें भीतर फँसी झाडि
उन्हें देखता रहा कि इतने में
ढूहों में से झाड़ी में से ही उधर निकली
वीरान हवा की लहरों पर
पीली धुँधली उदास गहरी नारी-रेखा
उसकी उँगली पकड़ चल ली कोई
बालक-झाई मैंने देखी
वीरान की हवा की लहरों पर
पैरों पर मैं चंचलतर हूँ
सिर पर मँडराकर अस्थिर हूँ
जब इसी गली के नुक्कड़ पर
मैंने देखी
वह फक्कड़ भूख उदार प्यास
निःस्वार्थ तृषा
जीने-मरने की तैयारी
मैं गया भूख के घर व प्यास के आँगन में
चिन्ता की काली कुठरी में,
तब मुझे दिखे कार्य-रत वहाँ
विज्ञान ज्ञान
नित सक्रिय है
सब विश्लेषण सश्लेषण में
मुझमें बिजली कि घूम गयी थरथरी
उद्दाम ज्ञान-संवेदन की फुरफुरी
हृदय में जगी
तन मन में कोई जादू की-सी आग लगी
मस्तिष्क तन्तुओं में प्रदीप्त
वेदना यथार्थों की जागी
यद्यपि दिन है
सब ओर लगाते हुए आग विद्युत क्षण हैं
किन्तु अँधेरे में—
अपनी उठती-गिरती लौ की लीलाओं में
अपनी छायाओं की लीला देखता रहा
अन्तर आपद्-ग्रस्ता आत्मा
नमकीन धूल के गरम-गरम अनिवार बवण्डर-सी घूमी
फिर छितर गयी
या बिखर गयी
पर ग़ज़ब हुआ
कुछ मटियाले चेहरों के उसने पैर छुए
उद्विग्न मन.स्थिति में
जीवन के रज धूसर पद पर

आँख बनकर, वह बैठ गया, भीतरी परिस्थिति में :
मस्तिष्क तन्तुओं मे प्रदीप्त वेदना यथार्थों की जागी
वह सड़क बीच
हर राहगीर की छाँह तले
उसका सब कुछ जीने पी लेने की उतावली
यह सोच कि जीने कौन वेष में कहाँ व कितना सत्य मिले
वह नत होकर उन्नत होने की बेचैनी !